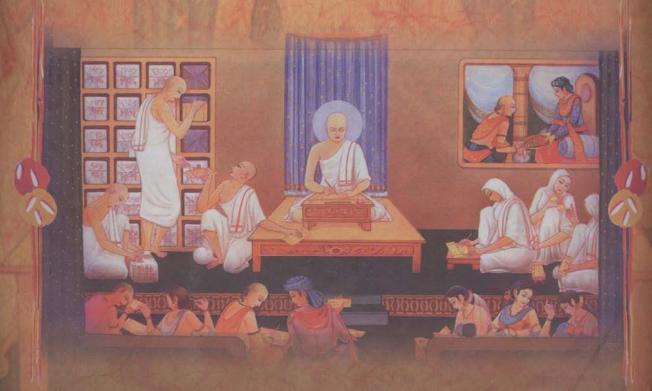
अतिश्वाणिस अवश्वासरे



-: संयो ४ :-

શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર

શા. વિમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન હીરાજૈન સોસાચટી, સાબરમતી, અમદાવાદ–૩૮૦૦૦૫. મો. ૯૪૨૬૫ ૮૫૯૦૪ (ઓ.) ૦૭૯–૨૨૧૩૨૫૪૩

"અહ્યે શ્રુતજ્ઞાનમ્" ગ્રંથ જીર્ણોધ્ધાર

કલેક્શન ઑફ પ્રાકૃત-સંસ્કૃત ઇન્સ્ક્રીપ્શન્સ

: સંચોજક :

શાહ બાબુલાલ સરેમલ બેડાવાળા શ્રી આશાપ્રણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર શા. વીમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન હીરાજૈન સોસાયટી, સાબરમતી, અમદાવાદ-380005 (મો.) 9426585904 (ઓ.) 22132543

સંવત ૨૦૬૭ ઈ.સ. ૨૦૧૧



અફો શ્રુતજ્ઞાનમ્ ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર – સંવત ૨૦૬૫ (ઈ. ૨૦૦૯)– સેટ નં-૧

ક્રમાંક	પુસ્તકનું નામ	કર્ત્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
001	श्री नंदीसूत्र अवचूरी	पू. विक्रमसूरिजीम.सा.	238
002	श्री उत्तराध्ययन सूत्र चूर्णी	पू. जिनदासगणिचूर्णीकार	286
003	श्री अर्हद्रीता-भगवद्गीता	पू. मेघविजयजी गणिम.सा.	84
004	श्री अर्हच्चूडामणिसारसटीकः	प्. भद्रबाहुस्वामीम.सा.	18
005	श्री यूक्ति प्रकाशसूत्रं	पू. पद्मसागरजी गणिम.सा.	48
006	श्री मानतुङ्गशास्त्रम्	पू. मानतुंगविजयजीम.सा.	54
007	अपराजितपृच्छा	श्री बी. भट्टाचार्य	810
008	शिल्पस्मृति वास्तु विद्यायाम्	श्री नंदलाल चुनिलालसोमपुरा	850
009	शिल्परत्नम्भाग-१	श्रीकुमार के. सभात्सवशास्त्री	322
010	शिल्परत्नम्भाग-२	श्रीकुमार के. सभात्सवशास्त्री	280
011	प्रासादतिलक	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	162
012	काश्यशिल्पम्	श्री विनायक गणेश आपटे	302
013	प्रासादमञ्जरी	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	156
014	राजवल्लभ याने शिल्पशास्त्र	श्री नारायण भारतीगोंसाई	352
015	शिल्पदीपक	श्री गंगाधरजी प्रणीत	120
016	वास्तुसार	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	88
017	दीपार्णव उत्तरार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	110
018	જિનપ્રાસાદ માર્તણ્ડ	શ્રી નંદલાલ યુનીલાલસોમપુરા	498
019	जैन ग्रंथावली	श्री जैन श्वेताम्बरकोन्फ्रन्स	502
020	ફીરકલશ જૈનજ્યોતિષ	શ્રી ફિમ્મતરામમફાશંકર જાની	454
021	न्यायप्रवेशः भाग-१	श्री आनंदशंकर बी.ध्रुव	226
022	दीपार्णवपूर्वार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	640
023	अनेकान्त जयपताकाख्यं भागश	प्. मुनिचंद्रस्रिजीम.सा.	452
024	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग-२	श्री एच. आर. कापडीआ	500
025	प्राकृत व्याकरण भाषांतर सह	श्री बेचरदास जीवराजदोशी	454
026	तत्त्पोपप्लवसिंहः	श्री जयराशी भट्द बी. भट्टाचार्य	188
027	शक्तिवादादर्शः	श्री सुदर्शनाचार्यशास्त्री	214

028	क्षीरार्णव	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	414
029	वेधवास्तुप्रभाकर	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	192
030	शिल्परत्नाकर	श्री नर्मदाशंकरशास्त्री	824
031	प्रासाद मंडन	पं. भगवानदास जैन	288
032	श्री सिद्धहेम बृहदृति बृहन्न्यास अध्यायः	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	520
033	श्री सिद्धहेम बृहद्वृति बृहन्न्यास अध्यायर	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	578
034	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय३ (१)	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	278
035	श्री सिद्धहेम बृहद्वृति बृहन्न्यास अध्यायः (२) (३)	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	252
036	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय५	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	324
037	વાસ્તુનિધંટુ	પ્રભાશંકર ઓધડભાઈ સોમપુરા	302
038	તિલકમઞ્રરી ભાગ-૧	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	196
039	તિલકમઞ્રરી ભાગ-ર	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	190
040	તિલકમઞ્રરી ભાગ-૩	પ્. લાવણ્યસ્રિજી	202
041	સપ્તસન્ધાન મહાકાવ્યમ્	પ્. વિજયઅમૃતસૂરિશ્વરજી	480
042	સપ્તભક્રીમિમાંસા	પૂ. પં. શિવાનન્દવિજયજી	228
043	ન્યાયાવતાર	સતિષચંદ્ર વિદ્યાભૂષણ	60
044	વ્યુત્પત્તિવાદ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	218
045	સામાન્યનિર્યુક્તિ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	190
046	સપ્તભક્રીનયપ્રદીપ બાલબોધિનીવિવૃત્તિઃ	પ્. લાવણ્યસ્રિજી	138
047	વ્યુત્પત્તિવાદ શાસ્ત્રાર્થકલા ટીકા	શ્રીવેણીમાધવ શાસ્ત્રી	296
048	નયોપદેશ ભાગ-૧ તરિક્રણીતરણી	પ્. લાવણ્યસ્રિજ	210
049	નયોપદેશ ભાગ-૨ તરિક્રણીતરણી	પ્. લાવણ્યસ્રિજ	274
050	ન્યાયસમુચ્યય	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	286
051	સ્યાદ્યાર્થપ્રકાશઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	216
052	દિન શુદ્ધિ પ્રકરણ	પૂ. દર્શનવિજયજી	532
053	બૃહદ્ ધારણા યંત્ર	પ્. દર્શનવિજયજી	113
054	જ્યોતિર્મફોદય	સં. પૂ. અક્ષયવિજયજી	112

અહ્યે શ્રુતજ્ઞાનમ્ ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર – સંવત ૨૦૬૬ (ઈ. ૨૦૧૦)– સેટ નં-૨

	<u> </u>			
ક્રમ	પુસ્તકનું નામ	ભાષા	કર્ત્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
055	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति ब्हुद्न्यास अध्याय-६	सं	पू. लावण्यसूरिजीम.सा.	296
056	विविध तीर्थ कल्प	सं	पू. जिनविजयजी म.सा.	160
057	ભારતીય જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિ અને લેખનકળા	ગુજ.	पू. पूण्यविजयजी म.सा.	164
058	सिद्धान्तलक्षणगूढार्थ तत्त्वलोकः	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	202
059	व्याप्ति पञ्चक विवृत्ति टीका	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	48
060	જૈન સંગીત રાગમાળા	ગુ.	श्री मांगरोळ जैन संगीत मंडळी	306
061	चतुर्विंशतीप्रबन्ध (प्रबंध कोश)	सं	श्री रसिकलाल एच. कापडीआ	322
062	व्युत्पतिवाद आदर्श व्याख्यया संपूर्ण ६ अध्याय	सं	श्री सुदर्शनाचार्य	668
063	चन्द्रप्रभा हेमकौमुदी	सं	पू. मेघविजयजी गणि	516
064	विवेक विलास	सं/गु.	श्री दामोदर गोविंदाचार्य	268
065	पञ्चशती प्रबोध प्रबंध	सं	प्. मृगेन्द्रविजयजी म.सा.	456
066	सन्मतितत्त्वसोपानम्	सं	प्. लब्धिसूरिजी म.सा.	420
067	ઉપદેશમાલા દોઘટ્ટી ટીકા ગુર્જરાનુવાદ	ગુજ.	प्. हेमसागरस्रिजी म.सा.	638
068	मोहराजापराजयम्	सं	पू. चतुरविजयजी म.सा.	192
069	क्रियाकोश	सं/हिं	श्री मोहनलाल बांठिया	428
070	कालिकाचार्यकथासंग्रह	सं∕ગु.	श्री अंबालाल प्रेमचंद	406
071	सामान्यनिरुक्ति चंद्रकला कलाविलास टीका	सं.	श्री वामाचरण भट्टाचार्य	308
072	जन्मसमुद्रजातक	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	128
073	मेघमहोदय वर्षप्रबोध	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	532
074	જૈન સામુદ્રિકનાં પાંચ ગ્રંથો	ગુજ.	श्री हिम्मतराम महाशंकर जानी	376
075	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્ર્મ ભાગ-૧	ગુજ.	श्री साराभाई नवाब	374
_				

		ı	T	
076	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્ર્મ ભાગ-୧	ગુજ.	श्री साराभाई नवाब	238
077	સંગીત નાટ્ય રૂપાવલી	ગુજ.	श्री विद्या साराभाई नवाब	194
078	ભારતનાં જૈન તીર્થો અને તેનું શિલ્પસ્થાપત્ય	ગુજ.	श्री साराभाई नवाब	192
079	શિલ્પ ચિન્તામણિ ભાગ-૧	ગુજ.	श्री मनसुखलाल भुदरमल	254
080	બૃહ્દ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૧	ગુજ.	श्री जगन्नाथ अंबाराम	260
081	બૃહ્દ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-ર	ગુજ.	श्री जगन्नाथ अंबाराम	238
082	બૃહ્દ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-3	ગુજ.	श्री जगन्नाथ अंबाराम	260
083	આયુર્વેદના અનુભૂત પ્રયોગો ભાગ-૧	ગુજ.	पू. कान्तिसागरजी	114
084	કલ્યાણ કારક	ગુજ.	श्री वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री	910
085	विश्वलोचन कोश	सं./हिं	श्री नंदलाल शर्मा	436
086	કથા રત્ન કોશ ભાગ-1	ગુજ.	श्री बेचरदास जीवराज दोशी	336
087	કથા રત્ન કોશ ભાગ-2	ગુજ.	श्री बेचरदास जीवराज दोशी	230
088	હસ્તસ જ્ઞીવનમ્	સં.	पू. मेघविजयजीगणि	322
		સં.	पू.यशोविजयजी, पू.	
089	એન્દ્રચતુર્વિંશતિકા		पुण्यविजयजी	114
090	સમ્મતિ તર્ક મફાર્ણવાવતારિકા	સં.	आचार्य श्री विजयदर्शनसूरिजी	560

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६७ (ई. 2011) सेट नं.-३

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची ।*यह पुस्तके www.jainelibrary.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं ।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता/टीकाकार	भाषा	संपादक / प्रकाशक	ਧਥ
	•				पृष्ठ
91	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-१	वादिदेवसूरिजी	स.	मोतीलाल लाघाजी पुना	272
92	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-२	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	240
93	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-३	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	254
94	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-४	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	282
95	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-५	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	118
96	पवित्र कल्पसूत्र	पुण्यविजयजी	सं./अं	साराभाई नवाब	466
97	समराङ्गण सूत्रधार भाग-१	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	342
98	समराङ्गण सूत्रधार भाग-२	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	362
99	भुवनदीपक	पद्मप्रभसूरिजी	सं.	वेंकटेश प्रेस	134
100	गाथासहस्त्री	समयसुंदरजी	सं.	सुखलालजी	70
101	भारतीय प्राचीन लिपीमाला	गौरीशंकर ओझा	हिन्दी	मुन्शीराम मनोहरराम	316
102	शब्दरत्नाकर	साधुसुन्दरजी	सं.	हरगोविन्ददास बेचरदास	224
103	सुबोधवाणी प्रकाश	न्यायविजयजी	सं./गु	हेमचंद्राचार्य जैन सभा	612
104	लघु प्रबंध संग्रह	जयंत पी. ठाकर	सं.	ओरीएन्ट इस्टी. बरोडा	307
105	जैन स्तोत्र संचय-१-२-३	माणिक्यसागरसूरिजी	सं.	आगमोदारक सभा	250
106	सन्मतितर्क प्रकरण भाग-१,२,३	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	514
107	सन्मतितर्क प्रकरण भाग-४,५	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	454
108	न्यायसार - न्यायतात्पर्यदीपिका	सतिषचंद्र विद्याभूषण	सं.	एसियाटीक सोसायटी	354

			1	1	
109	जैन लेख संग्रह भाग-१	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	337
110	जैन लेख संग्रह भाग-२	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	354
111	जैन लेख संग्रह भाग-३	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	372
112	जैन धातु प्रतिमा लेख भाग-१	कांतिसागरजी	सं./हि	जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार	142
113	जैन प्रतिमा लेख संग्रह	दौलतसिंह लोढा	सं./हि	अरविन्द धामणिया	336
114	राधनपुर प्रतिमा लेख संदोह	विशालविजयजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	364
115	प्राचिन लेख संग्रह-१	विजयधर्मसूरिजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	218
116	बीकानेर जैन लेख संग्रह	अगरचंद नाहटा	सं./हि	नाहटा ब्रधर्स	656
117	प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग-१	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	122
118	प्राचिन जैन लेख संग्रह भाग-२	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	764
119	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-१	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
120	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-२	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
121	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-३	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	540
	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु.	पी. पीटरसन	अं.		
122	इन मुंबई सर्कल-१			रॉयल एशियाटीक जर्नल	274
	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु.	पी. पीटरसन	э і .		
123	इन मुंबई सर्कल-४			रॉयल एशियाटीक जर्नल	414
	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु.	पी. पीटरसन	अं.		
124	इन मुंबई सर्कल-५			रॉयल एशियाटीक जर्नल	400
	कलेक्शन ऑफ प्राकृत एन्ड संस्कृत	पी. पीटरसन	अं.	भावनगर आर्चीऑलॉजीकल	
125	इन्स्क्रीप्शन्स			डिपार्टमेन्ट, भावनगर	320
126	विजयदेव माहात्म्यम्	जिनविजयजी	सं.	जैन सत्य संशोधक	148

A COLLECTION

OF:

PRAKRIT AND SANSKRIT INSCRIPTIONS.

PUBLISHED BY

-<>•◇•◇•

THE BHAVNAGAR ARCHÆOLOGICAL DEPARTMENT

UNDER THE AUSPICES OF

HIS HIGHNESS RAOL SHRI TAKHTSINGJI, G.C.S.I., LL.D. (CANTAB.)

MAHARAJA OF BHAVNAGAR.

Shabnagar:
PRINTED AT THE "STATE PRINTING PRESS."

766 F 65 V



INTRODUCTION.

THE collection which follows opens, as is fitting, with the rock inscriptions of King Asoka at Junaghar, undoubtedly the most important of all Indian inscriptions and second to none in interest that have yet come to light over the expanse of the civilised world. I will speak of their discovery, their decipherment, and their contents in that order. And first of their discovery.

Of course there is a sense in which the great rock to the right as you enter the gorge in the hills which leads from Junaghar to the sacred Girnar was never lost. The strange characters with which it is covered must always have excited the wonder of the passer-by, even when for long ages that wonder had ceased to be intelligent. But the rock and its record were unknown to modern research and to Western enquirers until brought to notice by that enthusiastic antiquarian Colonel James Tod, author of the Annals of Rajasthan and Travels in Western India. It is due to him to give his account of the rock in his own words. After describing the causeway built by "the magnificent vanity of Sundarji, the horse merchant," to make smooth the pilgrim's way to the holy hill, Tod goes on as follows:—

"Leaving the bridge, let mo describe what to the antiquary will appear the noblest monument of Saurashtra, a monument speaking in an unknown tengue of other times and calling to the Frank vidyåvån, or savant, to remove the spell of ignorance in which it has been enveloped for ages. Again thanks to Sundarji, but for whose liberality it would still have remained embosomed in the pathless forest, covered with its tangled veil of the impervious babool. The memorial in question, and evidently of some great conqueror, is a huge hemispherical mass of dark granite, which, like a wart upon the body, has protruded through the crust of mother earth, without fissure or inequality, and which, by the aid of the iron pen, has been converted into a book. The measurement of its area is nearly 90 feet; its surface is divided into compartments or parallelograms, within which are inscriptions in the usual antique charact. Each letter is about two inches long, most symmetrically formed, and in perfect preservation. I may well call it a book; for the rock is covered with these characters, so uniform in execution that we may safely pronounce all those of the most ancient class, which I designate the Pandu character, to be the work of one man. But who was this man?"

Tod had found the writing on the rock; but neither he nor any one else at that time could read it, or show the interpretation thereof. That achievement was James Prinsep's; and it is extremely interesting to us in Bombay to note that the transcript of the strange characters of the Junaghar rock, on which Prinsep worked, was furnished to him by the good Dr. John Wilson of our city. Dr. Wilson was the first to take a transcript of the whole inscription, and he forwarded a copy of his transcript to Prinsep, who was known to have discovered a key to the character employed. This he had done in connection with certain pillar inscriptions of king Asoka which do not fall within the compass of our book. On them the same character is employed. Prinsep found his key to this entirely unknown character by one of those happy guesses which deserve to be called inspirations. He was dealing with a series of isolated short inscriptions in the same character from the great Buddhist tope at Sanchi. It was known that pious Buddhists were in the habit of contributing to such a work votive offerings of pillars, rails, and other architectural fittings. It struck Prinsep that a group of two syllables which constantly recurred at the end of these short inscriptions might very probably stand for danam, "the gift" (Latin donum), On this hint be worked. If he was right, the syllable before this constant group, which was itself constant, could only be ssa, the sign of the genitive, "the gift of." By similar slow steps Prinsep succeeded in deciphering the pillar inscriptions; and it was while he was thus engaged that, by Wilson's kindness, a transcript of this all-important rock inscription was put into his His sense of obligation may fitly be reproduced here in his own words: "After completing the reading of the pillar inscriptions, my attention was naturally turned to those in the same character from the west of India, but I soon found out that the copy sent was not sufficiently well done to be thoroughly made out; and I accordingly requested Mr. Wilson to favour me with the fac-simile itself, which, with the most liberal frankness, he immediately sent round under a careful hand by sea." It was one of countless acts of liberal frankness of the same kind by which the good missionary, whose other pressing and more sacred avocations alone prevented him from taking very high rank indeed as a scholar, endcared himself to three generations of learned men and left a fragrant and a lasting memory in more than one field of science. Prinsep's pioneer labours over the Girnar inscription were followed up by a host of illustrious workers, one of the most illustrious

being our own Dr. G. Bühler. Although isolated difficulties remain, some of them perhaps for ever insoluble, the meaning of these inscriptions as a whole has been by the labours of these men definitively dragged out of the gloom of centuries which had threatened to engulf it finally.

Of the contents of the inscriptions it is not here necessary to speak at any length. They lie before the student both in the Sanskrit version, which he owes, as here presented, to the veteran Guttalalji, and in the English version. The monarch from whom they issued calls himself throughout them by no other title than the "Beloved of the Gods." But by the help of Ceylon records he has been identified with that Asoka, grandson of Chandragupta (the Greek Sandracottus), whose conversion, about 244 B.C., to Buddhism did for that creed in India what the conversion of Constantine did for the cause of Christianity in the West, and whose royal son and daughter, forsaking throne and sceptre, founded the Buddhism of Ceylon and all its many offshoots. In these his edicts, which he set up in various places throughout a dominion in India as wide as the English rule, this great spirit left a memorial of himself which will now never again be lost. "Asoka"-I quote Professor Dowson, who has rendered distinguished services in connection with these inscriptions-" was a convert to Buddhism, but his edicts bear few distinctive marks of that or any formal religion, and they are entirely free from vaunts of his power and dignity. They inculcate a life of morality and temperance, a practical religion, not one of rights and ceremonies. They proscribe the slaughter of animals, and they enjoin obedience to parents; affection for children, friends, and dependants; reverence for elders, Buddhist devotees, and Brahmins; universal benevolence; and unreserved tolera-They would seem to have been set up at a time when there were few differences between Buddhists and Brahmins, and their apparent object was to unite the people in a bond of peace by a religion of morality and charity free from dogma and ritual." Prinsep notes with astonishment the loving care for animals which the good king inculeated. "The edict relates to the establishment of a system of medical administration throughout the dominions of the supreme sovereign of India, one at which we may smile in the present day, for it includes both man and beast; but this we know to be in accordance with the fastidious humanity of the Buddhist creed, and we must

therefore make due allowance for a state of society and opinions altogether different from our own." The precepts referred to would have delighted the author of the Ancient Mariner:—

"He prayeth best who loveth best All things both great and small; For the dear God who loveth us, He made and loveth all,"

Nor would the teaching of the "Beloved of the Gods" have seemed strange to that other Teacher who said "Are not two sparrows sold for a farthing? and one of them shall not fall on the ground without your Father." Asoka's teaching and our practice may indeed be widely different, but it is not the former that "makes the angels weep." Writing in the India of to-day it is impossible not to desire to call attention to the wise and earnest words in which Asoka taught the doctrine of universal toleration of the religious opinions and practices of others, not as a matter of high state policy, but as a duty man owes to man. He himself desires to honour good men of whatever religion they may be, and he warns the bigots, whose notion of religion consists in a furious attack on the religion of other people, that they will in the end only do themselves harm thereby. That is not religion. "Proper treatment of servants and subordinates, reverence for one's elders, sincere self-restraint towards all that has life and breath, sincere charity to good men, whether they be Brahmins or Buddhists, these things consecrate religion." Is the Christian guilty of irreverence who is again reminded of other similar teaching that with difficulty raises its still small voice above the clamour of his contending sects, "Pure religion and undefiled before God and the Father is this: To visit the fatherless and widows in their affliction, and to keep himself unspotted from the world."

The second series of inscriptions presented by our book refers to a dynasty which held wide sway in Western India from about 70 B.C. to about 400 A.D., and of which these writings on stone and some handfuls of coins are all that remains. They are here called the Sâhs, but it has been recently shown that that is a wrong name for them. They are better known by the title they give themselves—Kshatrapas or Mahâkshatrapas. The names of, and some scanty particulars with regard to, no less than twenty-seven sovereigns of this house have now been recovered, but the interest of the inscriptions in our book is confined

almost exclusively to the great king Rudradâmau. The second inscription gives us more information with regard to this monarch than we have for any of the other ruling members of his house. It refers to an event which happened, according to the inscription "in the 72nd year of the Mahâkshatrapa Rudradâman." It would in any case be difficult to believe that we were dealing here with a sovereign who had himself been on the throne for so long a tract of time. But it is evident from corresponding passages in other Kshatrapa inscriptions that this phrase is to be understood as equivalent to "in the year 72: the Mahâkshatrapa Rudradâman reigning." In other words the era is not an era of Rudradâman, but an era in common use in his time. It would not be convenient here to set out the reasons for or against the different theories which scholars have started as to what era is intended, and what the date of the occurrence described in this inscription accordingly There is a preponderance of authority in favour of the view which identifies the era of these inscriptions with the Saka era; and the student may therefore take it that the event referred to here occurred in A.D. 150 or 151. That event was the bursting of the great dam of the Sudars'ana Lake—the Lake Beautiful—at Junaghar.

On the fourth day of the dark half of the month Margasirsha of the year named the dam of this lake, in spite of all precautions that had been taken in view of a danger that had for some days seemed imminent, gave way, and what had been a smiling sea was in a moment converted into a desert. The rain and the wind had beaten furiously against it. The rain had turned the whole earth into a lake, and had swollen, beyond the feeble strength of the dam resist them, the rivers Suvarnasikatâ, Palâsinî and streams which from Girnar descended into the lake. The wind had been of power to uproot and harl into the lake everything that stood in its way-from the trees that crowned the summit of Girnar to the houses and villages that nestled at the foot of the hill. Through a great gap, four hundred and twenty cubits long, four hundred and twenty cubits broad, and seventy-five cubits deep, the imprisoned waters rushed headlong to the sea. The calamity was an overpowering one; and the officials on the spot, though not wanting in courage or administrative skill, saw no remedy. It was then that, by the personal interposition of the sovereign, the Pahlava minister Suvisakha. son of Kulaipa, undertook the mighty work of restoring the dam : and

the inscription, which must date from some considerable time after the date of the catastrophe, tells how this task was by him successfully accomplished.

Two points with regard to this inscription are specially noteworthy. In the first place, by the reference made to the first construction of the great dam it throws a welcome light on an antiquity far beyond its own. We learn from it that the dam was originally constructed by Syena Pushyagupta, Governor in that country of the Maurya king Chandragupta. Now this is the single reference as yet found in the whole range of Indian epigraphy to the monarch, from whose identification with the Sandrocottus, king of the Prasii, of Greek writers, scientific chronology for India begins. Chandragupta married a daughter of Selencus and entertained at his court in Patna, circa 306-298 B.C., Seleucus' ambassador Magasthenes, fragments of whose account of the Indians among whom he sojourned have come down to Of perhaps still greater interest in this connection is the reference made to a previous repair of the dam found to be necessary in the reign of Chandragupta's grandson, the lord of the Mauryas (read "mauryaspater"), Asoka, and executed by his Yavana Governor of these regions, Tushaspa. The present inscription, it has to be noted, is engraved on the very rock which bears the earlier and contemporary edicts of the Beloved of the Gods. Here, as nowhere throughout the whole range of his inscriptions, that sovereign is referred to by his proper name.

The rock which thus links the second series of inscriptions in our book with the first connects it also with the third. For on it is engraved the single inscription presented here of the great Gupta dynasty. They ruled from about 319 A.D. to about 470 A.D., and more or less scanty details are known of seven kings of the House, who reigned in succession, Gupta, Ghatotkacha, Chandragupta the First, Samudragupta, Chandragupta the Second, Kumāragupta, and Skandagupta. The last of these is the sovereign referred to in our inscription. In his reign Rudradāman's dam gave way, as As'oka's one had done before. The description of the catastrophe is a highly poetical one, but the crowning incident is better rendered in our book than in previous translations. When the great dam gave way, it was, says the poet, as if Girnar, observing that the ocean was, under the first impulse of the monsoon wind, staggering like a drunken man, stretched out

a friendly hand, in the shape of the river that went headlong from the lake to the sea, to steady him. In that way rejoicing did the long pent-up streams rush to join their lord, the sea.

If Asoka's words suggested to us that the lessons of kindliness and toleration he preaches have unfortunately their present importance for the land he ruled over, the record of the double breaking and the double mending of the dam of the Lake Beautiful near Junaghar is capable also of a practical application. For Skandagupta's work also vielded to the fury of the elements, how and when we do not know, and no one in this case has yet arisen to respond to the cry of the people "Who will fill for us again our Lake Beautiful"? site of the lake is in dispute. On that point, however, the student must be referred to an interesting article in our Asiatic Society's Journal, Vol. XVIII, p. 47, in which Mr. Ardaseer Jamsedjee, then Naib Dewan of Junaghar, claims to have settled the site in question. To restore the lake would be, as the inscriptions testify, "an imperial work, and worthy kings". Is it too much to hope that the present Administration—local or imperial—will seize the opportunity of serving themselves as heirs in this matter also to Chandragupta, Asoka, and Rudradâman, by giving the people back their lake?

Twenty miles west of the flourishing Bhownuggur and about twenty-five miles north of Palitana's holy hill lies the small town of Vala, which presents absolutely nothing to the eye to tell the story of its former greatness. For this town was the scat of the empire of a dynasty which ruled in Western India, as the Guptas had done before them. for a space of about two hundred and fifty years (A. D. 509-766). We have a contemporary account of the glories of Vala, or Valabhi, in the diary of Hiouen Tsiang, a Chinese Buddhist who, in the course of a journey to the chief centres of his faith in India, did not omit what was then one of the greatest and most flourishing of these. Hiouen Tsiang was in Valabhi in A.D. 640. "This kingdom is," says he, "about 1200 miles in circuit, the capital having a circumference of six miles. population is very numerous, and all the families live in wealth. There are a hundred whose wealth amounts to a million. The rarest merchandise from distant countries is found here in abundance. There are a hundred convents of our faith, where nearly 6,000 devotees live. We count several hundred temples of the gods, and the heretics of various sects are exceedingly numerous. When the holy Buddha lived in the

world, he travelled often in this region. Wherefore in all the places where he rested King Asoka raised pillars or constructed topes in honour of him. For seven days every year the present king holds a great assembly, at which he distributes to the multitude of recluses choice dishes, the three garments, medicine, the seven precious things, and rare objects of great value. After giving all these in alms he buys them back at double price. He esteems virtue and honours the sages, he reverences religion and values science. The most eminent men of distant countries are always objects of respect with him." It is strange to read these words, as the writer has done, and look out on the modern Vala. As has been said, not a vestige of the former greatness of the city remains; while the empire of which it was the head has sunk to the narrow limits of a "Third Class" State of Kattywar. The whole of the modern town is built of the large foundation bricks of the older city. The superstructure once raised upon those bricks was of brick and wood, and it has entirely disappeared. But all around is the cemetery of a great city, so to say, in which the peasant of to-day may at any time count on obtaining by digging a sufficient stock of those foundation bricks with which to put together his modest dwelling.

History knows the princes of the House of Valabhi only by their copper-plate grants, six of which the student will find in the book before him. It is not known how they began any more than it is known how they ended. But the grants themselves preserve for us a tolerably complete genealogy of the Valabhi kings, which has been made accessible to the general reader by the exertions chiefly of Dr. Our first inscription, a mere fragment, belongs to Guhasena, who is known now to have reigned from about 539 A.D. to 569 A.D., and who has the special interest for Bhownuggur that the first part of his name, Guha, is probably the same word as that recurring in the title of the Rajput House to which His Highness the Maharajah boasts to belong. He was succeeded by Dharasena the Second, who made the grant which is our second inscription. This Dharasena reigned from A.D. 569 to 589. It will be seen that, as is the case in all these grants, the genealogy of the House, from its founder Bhattaraka to the monarch reigning at the time and making the grant, is given with a verbosity and obscurity that goes far to defeat the writer's presumed intention. Bhattaraka's only title is Sênapati or Commander-in-Chief. He was therefore an early Indian example of a military chief who raised himself

to a position of independence of his sovereign: but who his sovereign was can only be matter of speculation. On the very threshold of his description of Bhattaraka the original author of this family tree of the House of Valabhi has contrived to use language which has most effectually concealed his thought. Bhao Daji, Bühler, Bhandarkar, Fleet, and Kielhorn have all explained it differently. The translation in our book agrees with none of these. It is not without a hesitation which will not seem unnatural that the present writer ventures to suggest a seventh way of taking the clause. It is impossible, he thinks, to take the "maitrakânâm" of the clause as denoting the name of a people hostile to Bhattâraka. It would be against all analogy or propriety to introduce these, if that were the meaning, with an epithet in their praise. Maitraka is to mitra as rajaka is to rajan. Rajaka means a group of kings, and maitraka means a group of friends, though it is not denied, and the obvious pun favours that interpretation, that it may also be a proper name. Emphasis is intended to be laid on the fact that the Sênâpati bore rule over more armies than one, and the purport of the phrase which has proved so obscure is that the glory of a hundred fights attaching to the powerful armies of his men, who bore down all their foes, came, and came rightly, to Bhattâraka as Commander-in-Chief of all the separate levies. Bhattaraka had four sons, all of whom are mentioned in our inscription, Dharasena, Dronasinha, Dhruvasena, and Dharapatta. The reign of the first three is vouched for by other inscriptions. With regard to the fourth, it is not quite certain whether Dhruvasena was succeeded by his younger brother Dharapatta, or by that prince's son, the Guhasena of our first fragment.

The fourth Valabhi inscription in our book has the special interest that it records in all probability a grant made by the king on the throne at the time of Hiouen Tsiang's visit. He is described by the Chinese pilgrim as of a quick and passionate nature, with a weak and narrow intellect; but a sincere believer in the three precious things. Our grant is proof of the interest this monarch took in, and the protection he conferred on, his Buddhist subjects. For it is the grant in perpetuity of a village for the upkeep of the Buddhist monastery founded by Princess Dudda. It would be a lesson in disestablishment to know who enjoys the revenue of that village now.

The remaining Valabhi documents of our book do not present anything calling for special remark here. The Silâditya II of the fifth inscription is thought never to have ascended the throne, but to have been Governor of the southern part of the Empire. The Sîlâditya III of the sixth inscription reigned at Valabhi from A.D. 666 to A.D. 675.

Here it is thought this brief introduction, intended merely to facilitate an entry on the study of the older among the documents presented in this work, may fitly close. The more modern inscriptions which follow are, of course, not without an interest and importance of their own. But they are on the one hand more easily intelligible in themselves; and on the other information with regard to the dynasties they refer to and the events they chronicle is of easier general access. Enough, it is hoped, has been said to show that the documents brought together here are of great interest to the historical enquirer, and that the liberality of His Highness the Maharajah in causing them to be published in this convenient and accessible form deserves most cordial acknowledgment.

PETER PETERSON.

CONTENTS.

MATTE	YA DYNASTY.			Paor.
_	ck Inscription of King Asoka's Edicts at Junagadh B. C. 250			
	•	•••	•	1
27		•••	***	1
**	• 0	•••	•••	6
**	" Translation of 14 Edicts in English language		•••	11
SÂH D	YNASTY.			
1.	Stone Inscription of the Sah King (Rudrasimha) grandson of Jayad Junagadh	lâmâ fou	nd at	17
2.	Rock Inscription of the Sah King Rudra Dama at Junagadlı. Dated	72nd v	ear of	
	that king			18
3.	Stone Inscription of Åhirapati Rudrabhûti found at the village of	Gundâ	under	
•	Jâmnagar. Dated year 103 of Rudrasimha			21
4.	Stone Inscription of the time of King Rudrasena found at the villa under Jasdana in Saŭrâshţra. Dated year 127th of Rudrasena	go of G	adha	22
5.	Stone Inscription of the time of King Rudrasena at Dvarka i	n Setirê		
	Dated year 232 of Rudrasena	,	·	28
GUPT.	A DYNASTY.			
1.	Rock Inscription of King Skandha Gupta at Janagadh. Dated y	ear 138	of the	
	Gupta era	•••	٠.,	24
VALA	BHI DYNASTY.			
1.	Stone Inscription found at Bânkodi, a village under the Jûmnagar Sta	ite		30
2.	Copper-plate grant of King Dharasena II. of Valabhi, found at Jl		rillaga	_
	under Dhari. Dated Valabhi Samvat 252	***	•••	
3.	Copper-plate grant of King Dharasena II. of Valabhi, found at Kati	ариг. а т	rillage	1
	near Mahnya under Bhavnagar. Dated Valabbi Samyat 252	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •		
4.	Copper-plate grant of King Dhruvasena also called Bâlâditya of Va Botâd, under Bhâvuagar. Dated Valabhi Samvut 310	labhi, for	und at	
_		•••	1 4	39
5.	Copper-plate grant of King Sifalitya II. of Valabbi, found at Lunsadi Dated Valabbi Samvat 352	i near Mi		
6.	Copper-plate grant of King Śiladitya III. of Valabhi, found at Deva	di near '	Talâjê	
	under Bhavnagar. Dated Valabhi Samvat 375	•••	•••	54
7.	Copper-plate found at Gopanâtha near Talâjâ under Bhâvnagar			68
A	stone Inscription in Prâchina characters	•••	4	67

CITDY	A INVINACION	Page
e general	A DYNASTY. A Stone Inscription of King Alians in the Temple of Saranesvara at Udeypore.	
	Dated Samvat 1010	67
2.	A Stone Inscription of King Naravahana in the Temple of Natha near Udeypore.	
J.	Dated Samvat 1028	69
3,	A Stone Inscription in the Temple of Hastamața at Udeypore in Meywar	72
4.	A Stone Inscription containing the genealogy of Sisodia Kings of Chitore in	
	Meywar. Dated Samvat 1339	74
5.	A Stone Inscription of Achalesvara Mahadeva on Mount Abu. Dated Samvat 1342.	84
6.	A Stone Inscription in the Temple of Ekalingaji, near Udeypore in Meywar.	
	Dated Samvat 1485	96
7.	A stone Inscription of Adabadanâthajî at Nâgadâ near the Temple of Ekalingaji.	
	Dated Samvat 1494	112
• 8	A Stone Inscription in a Jain Temple at Ranapura near Sadadi in Jodhpore terri-	
	tory. Dated Samvat 1496	113
9.	A Stone Inscription of Ekalingaji near Udeypore in Mcywar. Dated Samvat 1545.	117
. 10.	A Stone Inscription of Adisvara on the Satrunjaya Hills near Pâlitânâ în Kâthiû-	
., *	wâd. Dated Samvat 1587	134
11.	A Stone Inscription in the Temple of Adinatha at Naralai. Dated Samvat 1597	140
12.	A Stone Inscription of a Vapi (Vav-well) at Sadadi under Jodhpore. Dated	
	Samvat 1654	143
13-14.	Stone Inscriptions of the Rayasagar Talao near Rajanagar in Meywar. Dated	
	Samvat 1732	145
15.	A Stone Inscription of the Temple of Sri Dakshinamurti at Udeypore. Dated	
	Samvat 1770	155
-		
GOHII	LA DYNASTY.	
I.	Stone Inscription of Sodhadi Vao at Mangrol in Saurashtra. Dated Samvat 1202.	158
2.	Stone Inscription of the Kâmanâtha's Orasia at Ghelânâ near Mângrol in	
	Saurashtra. Dated Valabhi Samvat 911	160
3.	The last leaf of a book called Vishnu Bhakti Chandrodaya, obtained from Talaja	
	under Bhavnagar. Dated Samvat 1469	161
4.	Stone Inscription in the Temple of Lakshmi-Narayana at Mahuva under Bhav-	
	nagar. Dated Samvat 1500	162
5,	Stone Inscription of Varteja, a village near Bhavnagar, of the time of Rûel	
	Dhunaji. Dated Samvat 1674	165
6.	Stone Inscription at Badi, a village near Gogha. Dated Samvat 1748	166
7.	Stone Inscription in a Tomple at Dihora, a village near Talâjâ under Bhàvnagar.	
	Dated Samvat 1757	166
8.	Stone Inscription of the well called Dholia in the compound of the Darbar's	
	buildings at Mahuya under Bhavnagar. Dated Samyat 1805	187

	P	▲GB.
9,	Stone Inscription in the Temple of Bhidabhanjana at Lathi in Kathiawad. Dated Sarpvat 1809	168
10.	Stone Inscription of Ganapati in the Temple of Bhidabhanjana at Lâthi in	169
11.		
12.	•	170
12.	Stone Inscription in the temple of Gopanatha of the time of Vijayasimhaji. Dated Samvat 1876	170
SOLAI	NKI DYNASTY.	
1.	1	172
2,	Stone Inscription of the time of King Vîradhavala at Delavâdâ on Mount Âbu.	
	•	174
3.	Stone Inscription of the time of King Kumarapala in the Temple of Bhutanatha at Junagadh. Dated Valabbi Samvat 850	18 4
4.	Stone Inscription in the Temple of Bhadrakâli at Prabhâs Pâtana of the time of	
	King Kumârapâla. Dated Valabhi Saṃvat 850	186
5.	Copper-plate grant of King Bhimadeva I., of Anahilapura. Dated Vikram	
	Sanvat 1086	193
6,	Stone Inscription at the Mota Darvaja or the grand gate at Prabhas Patana of	
	the time of King Bhimadeva II. Dated Samvat 1273	195
7.	Stone Inscription at Bharana under Jamnagar of the time of Bhimadeva II. Dated	•
	Samvat 1275	204
8.	Stone Inscription at Ratanapura under Jodhpore of the time of King Kumarapala	205
9.	Stone Inscription in the ruins of a Siva Temple at Hathamo in Marwad	207
10.	Stone Inscription of Veraval under Junagadh of Bhimadeva II	208
11,	Stone Inscription at Cambay in Gujarât	214
12.	Stone Inscription at Delavada on Mount Abu of Viradhavala. Dated Samvat 1287.	218
13.	Stone Inscription in the Temple of Harasidhi at Veraval. Dated Samvat 1320	224
14.	Stone Inscription of Chintamani Parsvanatha at Cambay. Dated Samvat 1352	227



LIST OF PLATES.

PLATE	,				Page.
ſ,	Girnâra Rock Insc	ription of King As	oka's at Junagadh B.C.	250 Edict I	. 1
II.	Do.	₫0∙	do.	Edict II	. 2
III.	Do.	do.	do.	Edict III	. 2
IV.	Do.	do-	do.	Edict IV	. 2
v.	Do.	do.	do.	Ediet V	. 2
VI.	Do.	do.	do-	Edict VI	. 3
V11.	Do.	₫0+	do.	Edict VII	. 3
VIII.	Do.	do-	do.	Edict VIII	. 3.
IX.	Do.	do.	do.	Edict IX,	. 4
x.	Do.	do.	do.	Edict X	. 4
XI.	Do.	do-	ão.	Ediet XI	. 4
XII.	Do.	do.	do.	Edict XII	. 5
XIII.	Do.	ďσ.	. do.	Edict XIII	. 5
XIV.	Do.	₫o₊	₫o.	Edict XIV	. 6
XV.	Stone Inscription at Junigadh	of the Sah King	(Rudrasimha) grandson	ı of Jayadâmâ foun	- 34
XVI.	-		sâh King Rudradâmâ s		
20.11.	72nd year of th	at king			18
XVII.			lrabhûti found at the vil year 103 of Rudrasimha		. 22
XVIII.	Stone Inscription under Jasdana		ng Rudrasena found at ated year 127th of Rud		a . 22
XIX.	Stone Inscription Dated year 232		King Rudrasena, at Dy	rârkâ in Saürâshtri 	a. . 23
XX.	Girnâra Rock I	nscription of King	g Skaņdha Gupta at Jur	nâgadh. Dated yes	r
	138 of the Gup				. 24
XXI.	Stone Inscription	found at Bâņkodi,	a village under the Jan	magar State	. 30
ххи.		at of King Dharas Dated Valabhi Sai	ena II. of Valabhi, four nvat 252. First Plate.		e 31
XXIII.			ena II. of Valabhi, foun	d at Jhara, a villag	(e
			pvat 252. Second Pla		. 32
XXIV.	Copper-plate gran near Mahuvâ u	it of King Dharase: nder Bh&vnagar.	na II. of Valabhi, Iound Dated Valabhi Samvat	at Katapur, a villag 252. First Plate	e 35
xxv.	Copper-plate gran	at of King Dharase	ena II. of Valabhi, found Dated Valabhi Samvat	at Katapur, a villag	

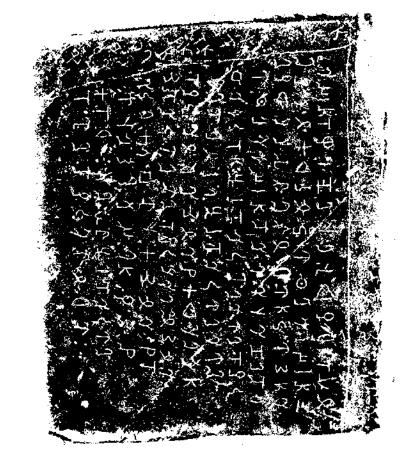
PLATE.	· P	AGE.
XXVI.	Copper-plate grant of King Dhruvasena also called Bålåditya of Valabhi, found at Botåd, under Bhåvnagar. Dated Valabhi Samvat 310. First Plate	40
XXVII.	Copper-plate grant of king Dhruvasena also called Bhlisditya of Valabhi, found at Botad, under Bhavragar. Dated Valabhi Samvat 310. Second Plate	41
XXVIII.	Copper-plate grant of King Siladitya II. of Valabhi, found at Lunsadi near Maliuva. Dated Valabhi Samvat 352. First Plate	46
XXIX.	Copper-plate grant of King Silâditya II. of Valabhi, found at Lunsadi near Mahuvâ. Dated Valabhi Samvat 352. Second Plate	47
XXX.	Talājā under Bhāvnagar. Dated Valabhi Samvat 375. First Plate	55
XXXI.	Copper-plate grant of King Siladitya III, of Valabhi, found at Dovali near Talaja under Bhavnagar. Dated Valabhi Samvat 375. Second Plate '	56
XXXII.	Copper-plate found at Gopnâth near Talaja under Bhavnagar. First Plate	64
XXXIII.	A Stone Inscription in Prachina characters	67
XXXIV.	A Stone Inscription of King Allata in the Temple of Surnesvara at Udeypore. Dated Survat 1010	
XXXV.	A Stone Inscription in the Temple of Hastamata at Udeypore in Meywar	72
XXXVI.	A Stone Inscription of Achalesvara Mahadeva on Mount Âbu. Dated Samvat	~ .
XXXVII.		158
XXXVIII.	1	161
IXL.	Stone Inscription in the Temple of Lakshmi Narayana at Mahnya under Bhavnagar. Dated Sanyat 1500	. 162
XL.		194
XLI.	Copper-plate grant of Raja Bhimadeva I, of Anahilapura. Dated Vikram	



HRNÅRA ROCK INSCRIPTION OF KING ASOKA, AT JUNÄGADII. B.C. 350.

EDICT I.

PLATE 1.



MAURYA DYNASTY.

Rock Inscription of King Asoka's Edicts at Junagadha. B. C. 250.

The rock, on which this inscription is engraved, is about a mile to the east of the town of Junagadha on the way to Damodarji, a tank considered sacred as a place of pilgrimage. It is a dark granite stone having a face measuring 14'4" by 12'4". The surface is divided into fourteen irregular parallelograms, each of which contains an edict. A large piece of stone appears to have gone off; but the remaining portion is in a good state of preservation.

As the inscription contains no precise date, it can only be said that it must be of the time of King Asoka, in whose reign the edicts appear to be issued, and published, and who flourished about B. C. 250. He ruled at Patliputra, the modern Patna. The edicts are mostly of the character of moral precepts.

The language of the composition is popular Magadhi in current use among the people at the time, and the character is quite unlike any of the modern ones.

TRANSLITERATION.

3

- १ इयं धंम लिपी देवानं पियेन
- २ पियदसिना राजा लेखापिता इधं न कि
- ३ चि जीवं आर्राभप्ता पि जुहितब्यं
- नच समाजो कतव्यो बहुकं हि दोसं
- ५ समाजम्हि पसति देवानं पियो पीयदिस राजा
- ६ अस्ति पितुए कचा समाजा साधुमता देवानं
- ७ पियस पियदसिनो राजो पुरा महानसे (म)म
- ८ देवानं पियस पियदिसिनी राशी अनुदिवसं ब-
- ९ हाँन पाण सतसहसानि आर्राभस स्पायाय
- १० से अज यदा अयं धंम्हिपी हिस्तित ती एवं पाँ-
- ११ णा आरमरे सुपाथाय द्वेमारा एको मगो सो पि-
- १२ मगोन धुवो एते पिता पाण पछा न आर्रीभसंदे

ર

- १ सबत विजितिमह देवामापियस पियदसिना राजी
- २ एवमापे पाचंतेसु यथा चोडा पाडा सतियपुतो केतलपुतो आ तब-
- ३ पंणी अंतियको योनराजा येवापि तस अंतियकस सामीपं
- ४ राजानो सबत देवानंपियस पियदसिनो राजो दे चिकीछा कता
- ५ मनुसीचकीछा च पसुचिाछा च ओसढानिच यानि मनुसोपगानिच
- ६ पसोपनानिच यत यत नारित सवता हारापितानिच रोपापितानिच
- ७ मुलानिच फलानिच यत यत नास्ति सवत हारापितानिच रोपापितानिच
- ८ पथेस् कृपाच खनापिता बळाच रोपापिता परिभागाय पसुमनुसानं

3

- १ देवानं पियो पियदिस राजा एवं आह द्वादस वासा भिसितेन मया इदं आजापितं
- २ सवत विजिते मम युताच राजुकेच पादेतिके च पंचसु पंचसु वासेसु अनुसास
- ३ विनं (नि)याते एतायेव अधाय इमाय धेमानुसस्टिय यथा अञा
- 😮 य पि कंमाय साधु मातरि पितरिच खुस्ति सामिता संस्तुत आर्तिनं ग्रहाण
- ५ समणानं साधु दानं पाणानं साधु अनारंभी अपन्ययता अपभिडता साधु
- ६ परिसापि युते आञापयिसाति गणनायं हेतुतोचव्यं बने तो च

Š

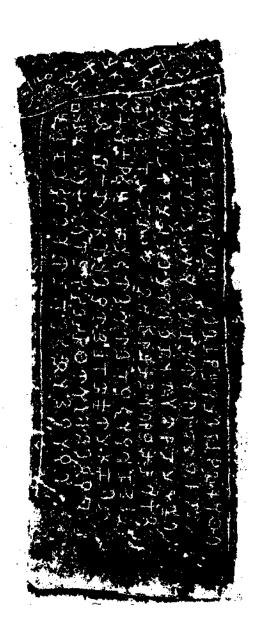
- १ अतिकातं अंतरं बहुनि वाससतानि बढितो एव पाणारंभी विहिंसाच भूतानं आतिसु
- २ असंपतिपती बाह्मणसमणानं असंपतीपती त अज देवानंपियस पियदिसनो राजो
- ३ धमचरणेन मेरोधोसी अही धमश्रोसी विमानदसणाच हस्तिदसणाच
- ४ अगिखंधातिच अञानिच दिव्यानि रुपानि दसयिता जनं नारिसे बहुहि वससतेहि
- ५ न भूतपुत्रे तारिसे अज विदते देयानंपियस पियदसिनो राजो धंमानुसस्टिया अनारं
- ६ भो पाणानं अविहीसा भूतानं जातीनं संपेटिपती बहाणसमणानं संपेटिपती मातिर पितरि
- ७ सुसुसा थैरसुसुसा एस अनेच बहुविधे धमचरणे वटीते बढायेसाति चे व देवानं पियो
- ८ (पि)यदास राजा धंम (च)रणं इदं पुताच पोताच पपोताच देवानं पियस पियदिसनो राजो
- ९ वधायेसांत इदं भ्रम चरणं आव सबटकपा धमान्हि सिळान्हि तिस्टतो (थं)म अनुसासिसती
- १० सिंह सेस्टे कंमे य धंमानुसासनं धंमचरणेपि न भवति असीलस(त) इमस्टि अथस्टि
- ११ (व) धिच अहानीच साधु एताय अथाय इदं छेखापितं इमस अथ(स) विधियुजंतु हानि च
- १२ लोचेतन्यो द्वादसवासाभिसितेन देवानं पियेन पियदसिना राजा इदं लेखापितं.

٩

- १ देवानं पियो पियदिस राजा एवं आह कलाणं (दु)करं येअ ' कलाणे ससी दुकरं करोति
- २ त मया बहु कलाणं कत त मम पुताच पोताच (पपोताच) परंच तेनय मे अपचं आव संबंध कपा अनु-वितसरे तथा

GIRNÁRA ROCK INSCRIPTION OF ASOKA, AT JUNÁGADH. B. C. 250. EDICT II.

PLATE 11.

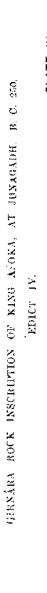


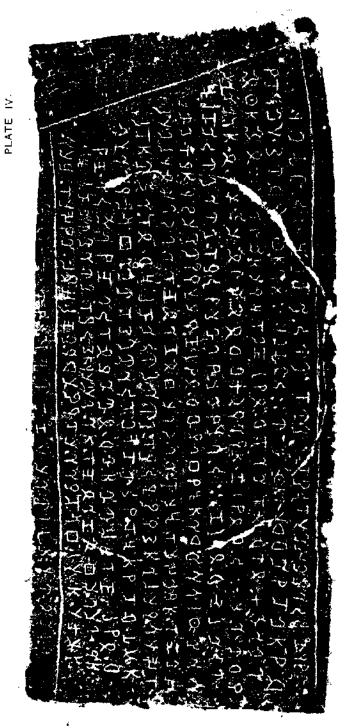


CHRNÄRK ROCK INSCHUPTION OF KING ASOKA, AT AUNAGABIL, P. C. 250. EDICE HI.













EDICT V.

PLATE Y.





GIBNÂRA ROCK INSCRIPTION OF ASOKA, AT JUNÁGADIL B. C. 250. EDICT VI.

PLATE VI





SCRNARA ROFK INSCRIPTION OF KING ASOMA, AT JUNAGADH, B. C. 25).

MODEL VIL

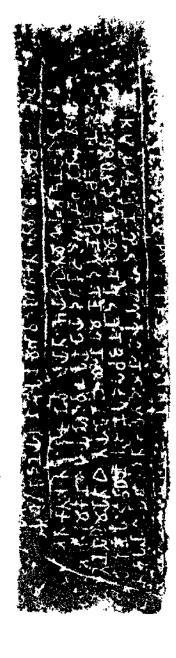
PLATE ST







PLATE VIII



	MAURYA DYNASTY. 3	
₹	सो सुकतं कासाते यो तु एत देखं पाद्यापेसित सो दुकतं कासाति सुकरं हि पापं अतिकातं अंतरं	
	न भूत पुर्व धम माहामाता नाम त मया तो दस वासा मि(सितेन) धम महामाता कता ते सव पासंदेस्	ţ
	व्यापता धंमा धिस्टामीय	Ţ
٠	॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ ॰ । भागिक के वेति के वो । के वो । के वो । विश्व के वेति शिकानं प	Ţ
	वापि अञे अपरा ता भतमयेसु व	ī
Ę	ं ं ं ं ं ं ं ं ं ं ं ं ं ं ं ं ं ं ं	Ţ
	पटिविधानाय	Ţ
ঙ	· · · · · · · · · · · · · · · (रा)जकताधिकारेमु वा थेरेसु वा व्यापत	Γ
	ते पार्टालपुतेच बाहिरेसुच	
۷	· · · · · · · · (ने) वापि म अञे जातिका सवत व्यापता ते यो अयं धंमनिस्टितो तीव	Î
٩,	' ' ' ' ' ' ' (धं)ममहामाता एताय अथाय अथं धंम लिपि लिखिता	
	_	
	Æ	
	६	
	(देवा) • • (सि) राजा एवं आह अतिकार्त अंतर	
ą	(देवा) · · · (सि) राजा एवं आह अतिकार्त अंतरं न भुतपूर्व स · · अथकंभे व पटिवेदना वा त सया एवं कर्त	
ગ્ ર	(देवा) • • • (सि) राजा एवं आह अतिकार्त अंतरं न भृतपूर्व स • • अथकंभे व पर्टिवेदना वा त मया एवं कर्त सचे काले भुंजमानस मे ओराधनिम्ह गभागारम्हि वचम्हि	
ગ્ ₹ ૪	(देवा) • • • (सि) राजा एवं आह अतिकातं अंतरं न भृतपू वं स • • अथकंभे व पटिवेदना वा त मया एवं कतं सबे काले भुंजमानस मे ओराधनस्हि गभागारस्हि वचस्हि विशीतस्हि च उयानेसुच सबत पटिवेदका स्टिता अथे मे जनस	
२ ३ ४ , ५	(देवा) • • • (सि) राजा एवं आह अतिकातं अंतरं न भुतपू वं स • • अथकंभे व पटिवेदना वा त मया एवं कतं सचे काले भुंजमानस मे ओराधनिम्ह गभागारिम्ह वचिम्ह विश्वीतिम्ह च उयानेसुच सबत पटिवेदका स्टिता अथे मे जनस पटिवेदेथ इति सबतच जनस अथे करोमि यच किंचि मुखतो	
7 7 Y Y E	(देवा) • • • (सि) राजा एवं आह अतिकातं अंतरं न भृतपू वं स • • अथकंभे व पटिवेदना वा त मया एवं कतं सबे काले भुंजमानस मे ओराधनिष्ह गभागारिष्ह बचिष्ह यिनीतिष्ह च उयानेसुच सबत पटिवेदका स्टिता अथे मे जनस पाटिवेदेय इति सबतच जनस अथे करोभि यच किंचि मुखतो आजापयानि स्वयं दापकं वा सिवापकं वा यवा पुण महामातेसु	
7 7 7 4 5 9	(देवा) • • • (सि) राजा एवं आह अतिकातं अंतरं न भृतपू वं स • • अथकंभे व पिटेवेदना वा त मया एवं कतं सचे काले भुंजमानस मे ओराधनम्हि गभागारम्हि वचित्रः विशीतिम्हि च उयानेसुच सबत पिटेवेदका स्टिता अथे मे जनस पाटेवेदेश इति सबतच जनस अथे करोमि यच किंचि मुखतो आजापयामि स्वयं दापकं वा सिवापकं वा यवा पुण महामातेसु आचापि(वं)के अरोपितं भवति ताय अथाय विवादो नि झति वसंतो परिसायं	
17. 年 7 4 年 9 人	(देवा) • • • (सि) राजा एवं आह अतिकातं अंतरं न भृतपू वं स • • अथकंभे व पर्टिवेदना वा त मयः एवं कतं सबे काले भुंजमानस मे ओराधनिष्ट गभागारिष्ट वचिष्ट विशीतिष्ट च उयानेसुच सबत पर्टिवेदका स्टिता अथे मे जनस पर्टिवेदेथ इति सबतच जनस अथे करोमि यच किंचि मुखतो आजापयामि स्वयं दापकं वा सिवापकं वा यवा पुण महामातेसु आचापि(यं)के अरोपितं भवति ताय अथाय विवादो नि सति वसतो परिसायं अनंतरं पर्टिवेदेतयं मे सबत सबे काले एवं मया आजपितं नास्ति हि मे तोसो (१)	
17. * * * * * * * * * * * * * * * * * * *	(देवा) • • • (सि) राजा एवं आह अतिकातं अंतरं न भृतपू वं स • • अथकंभे व पर्टिवेदना वा त मया एवं कर्त सवे काले भुंजमानस में ओराधनिष्ट गभागारिष्ट वचिष्ट यिगीतिष्टि च उपानेसुच सबत पर्टिवेदका स्टिता अथे में जनस पाटिवेदेथ इति सबतच जनस अथे करोभि यच किंचि मुखतो आजापयामि स्वयं दापकं वा सिनापकं वा यना गुण महामातेसु आचायि(ये)के अरोपितं भवति ताय अथाय विवादों मि सित बसतो परिसायं अनेतरं पर्टिवेदेतयं में सबत खेव काले एवं मया आजपितं नास्ति हि में तोसी (१) उस्टानिष्टि अथ संतिरणाय व कतक्य मतेहि में सब लेक हितं	
27	(देवा) • • • (सि) राजा एवं आह अतिकातं अंतरं न भृतपू वं स • • अथकंभे व परिवेदना वा त मया एवं कतं सबे काले भुंजमानस में ओराधनिस्ह गभागारिष्ट वचिस्त विशीतिष्ट च उपानेसुच सबत परिवेदका स्थिता अथे में जनस पार्टिवेदेश इति सबतच जनस अथे करोधि यच किंचि मुखतो आजापयामि स्वयं दापकं वा सिवापकं वा यवा पुण महामातेसु आचापि(वं)के अरोपितं भवति ताथ अथाय विवादो नि झति वसंतो परिसायं अनंतरं परिवेदेतयं में सबत सबे काले एवं मया आजपितं नास्ति हि में तोसों (१) उस्टानिस्ह अथ संतिरणाय व कतस्य मतेहि में सब स्टेक हितं तसन पुन एस मूळे उस्टानंच अथ संतिरणाच नारित हिकंमतरं	
27	(देवा) • • • (सि) राजा एवं आह अतिकातं अंतरं न भृतपू वं स • • अथकंभे व पर्टिवेदना वा त मया एवं कर्त सवे काले भुंजमानस में ओराधनिष्ट गभागारिष्ट वचिष्ट यिगीतिष्टि च उपानेसुच सबत पर्टिवेदका स्टिता अथे में जनस पाटिवेदेथ इति सबतच जनस अथे करोभि यच किंचि मुखतो आजापयामि स्वयं दापकं वा सिनापकं वा यना गुण महामातेसु आचायि(ये)के अरोपितं भवति ताय अथाय विवादों मि सित बसतो परिसायं अनेतरं पर्टिवेदेतयं में सबत खेव काले एवं मया आजपितं नास्ति हि में तोसी (१) उस्टानिष्टि अथ संतिरणाय व कतक्य मतेहि में सब लेक हितं	

O

१ देवानंपियो पियदानि राजा सवत इन्छति सबै पासंडा वसेयु सबै (सु)ते(सु) सबमंच

१३ अयं धेम लिपि लेखापिता किति चिरं तिस्टेयं इति तथा च मे पुताच पोताच पपोताच

१४ अनुवतरं सब लोक हिताय दुकरंतु इदं अञ्चत अगेन पराकमेन

- २ भावनुधिच इछति जनो तु उचायच छंदोउचायच रागो ते सबं व कासंति एकदेसं व कसंति
- 🤾 विपुळे हु पिदाने यस नास्ति समये भावसुधिताव कर्तञ्जाव दढभितताच निचा बाढं

<

- १ अतिकातं अंतरं राजानो विहारयातां अयानु एतमगव्या अञानिच एतारिसानि
- २ अभिरामकानि अहुंसु सो देवानींपयो पियदसि राजा दसवसाभिसितो संबोअयाय संबोधि

- ३ तेन सा धम(धम्म)याता एत यं होति बझणसमणानं दसणंच दानेच यैरानं दसणंच
- ४ हिरंणपाटिविधानीच जानपदसच जनस दसनं धमा(धम्मा)नुसस्टिच धम(म्म)परिपुछाच
- ५ तदोपया (छा)एसा भुय रति भवता देवानं पियस पियदसिनो रात्रो भागे अंत्रे

- १ देवानंपियो पियदिस राजा एवं आह अस्ति जनो उचावचं मंगलं करोते आबाधेसु वा
- २ आबाहिबनाहेसु वा पुतलाभेसु वा पवासिम्ह वा एतम्हिच अअम्हिच जनो उचावचं मंगलं करोते
- ३ एत तु महाडा(दा)यो बहुकंच बहुविधंच हुदंच निरयंच मंगलं करोते त कतव्यमेव तुमंगलं अपफलं दु खो
- एतारिसं मंगलं अयं तु महाफले मंगले व धम मंगले तत दासभतकम्हि सम्यपाति(संपितिपिति) गुरूनं अप
 चिति साधु
- ५ पाणेसु समये साथु वद्माणसमणानं साथुदानं एतच अनेच एतारिसं धेम मंगळं नाम त वितन्यं पिताव (वा)
- ६ पुतेन वा माता वा स्वामिकेन वा इदं साधु इदं कतव्यं मंगळं आव तस अथस निस्टानायं अस्तिच पावुत्तं
- साधुदन इति न दु एतारिसं अस्ति दानं वा अनगहो व यारिसं धंमदानं व धमनुगहो व त तु स्तो मितेन
 व सुहद्यंन
- ८ आतिकेन व सहायन व ओवादितव्यं तम्हितम्हि एकराणे इदं कचं इदं साधु इति इमिनो संक ' 🕐 ঽ
- ९ स्वर्ग आराधेतु इति काच इमिनि कतव्यतरं यथा स्वगाराधी

90

- १ देवानंपियो पियदांचे राजा यसो व किति व न महाथावहा मञ्जे अञ्चत तदासनो दीवायच मे जनो
- २ अमसुसुसा सुसुसतां धमनुतंत्र अनुविधियतां एतकाय देवानं पियो पियदसि राजा यसो व किति व इछति
- ३ य दुर्किचि पराकमते देवानं पियदिस राजा त सर्व पारितकाव किंति सकले अपपरिसर्वे अस एस दुः परिसर्वे य अपुत्रं
- 😮 दुकरं दु खो एतं धुदकेन व जनेन उसंदेन व अञ्जत अगेन पराकमेन सब परिचित्रिता एत दु खो उस-देन दुकरं

99

- देवानंपियो पियदिस राजा एवं आह नास्ति एतारिसं दानं यारिसं धमदानं धमसंस्तवो वा धमसंविभागो
 वा धमसंविभागो
 वा धमसंविभागो
- २ तत इदं भवति दास भतकाम्ह सम्यपाविपावे (संपितपावे)मातिर पिवरि साधु सुसुसा मितसंख्त जाति कानं वद्मणसमणानं साधुदानं
- पाणानं अनारंभी साथु एत वत्व्यं पिता व पुतेन व भाता व मितसंस्तुत जातिकेन व आवपटीवेसियेदि
 इदं साथु इदं कत्व्य
- 🗴 सो ताथा कर इलोकसच आरथाहोति परतच अनंतं पुरुनं भवति तेन भेमदानेन

GIRNÁRA HOCK INSCRIPTION OF AŠOKA, AT JUNAGADH. B. C. 250.

EDICT IX.

PLATE IX.



PLATE X.

GIRNÁRA ROCK INSCRIPTION OF KING ASOKA, AT SUNAGADH. B. C. 253. EDICI X.



GIRNÁRA ROCK INSCRIPTION OF KING ASOKA, AT JUNAGABIL B. C. 230.

EDICT XI.







B, C, 250. GIRXÁRA ROCK INSCRIPTION OF KING ASOKA, AT JUXAGADIL. EDICT MIII.

PLATE XIN

92 .

						·
ţ	देवा	नंपियो	पिय	दिख	राजा	सवपासंडानिच पविजितानिच घरस्तानिच पुजयति दानेनच विविधाय च प्जाय
						पूजयित ने
						देवानंपियो मंशते यथा कितिसारवर्दा अस सवपासंडानं सारवदी तु बेहुविधं
₹	तस	तस इ	इ दं	र मूलं	थ्व	चिगुर्ता किंति अतपासंडपूजा व परपासंडगरहा व नो भवे अपकरणान्दि लहुका
					,	व अस
¥	तीम्ह	ताम	६ पा	करण	(प॰	न्रणे)पूजेत या तु एत्र परपासंडा तेनतेन पकरणेन एवंकर∗ आप्तपासंडंच
						वडयति परपासंडंसच उपकरोति
4	तदंब	ाथां क	रोते	* 의	सपा	तंडच छणति परपासंडसचारे अपकरोति याहि कोचि आप्तपासंड पृजयति परपा⊸
						संडं व गरहाते
ŧ	सर्व	आसप	संड	भतिय	कि	ति आसपासंड दीपयेम इतिनीच पुन तथ करोतीं * आसपासंड बाढतरं उपहलाति
						त समवाया एव साधु
v	किति	এ ফা	मं ञ	सि ध	मं स्	णारुच सुसुँसराच एवंहि देवानंपियस इछा किंति सवपासंडा बहुसुताच असु
						कलाणागमाच असु
C	येच	ततत्त	पसं	नाते	हि व	तन्या देवानंपियो नो तथा दानं च पृजा व मंशते यथा किति सारवदी अस
						सवपासङानं वहुकाच एताय
٩,	अया	दया	पता	धं म्म	ह्यम	ताच इथीक्सलमहामाताच वचमूमिकाच अंशेच निकाया अशंच एतस फल य
						आप्तपासंडवदीच होति श्रंमसच दीपना
						•-
						9 રૂ
ţ	٠		दे	यतस	पर	तमातं तताहतं बहु तावत कंम तता पछा अधुना छथेसु कल्पिसु तीयो धंम-
						वायो (पो)
₹	•	• •	वः	धो व		ां व अपवाहों व जनसत बाढं वेद(दा) नं मतच गनमतच† देवा 🔹 र्रे
₹	٠	• •	•	•		माता पितरि मुनुसा मितमंत्तुत सहाय प्रातिके सदाय 😁 😁 🔻
¥	•		•	य	आंदि	के ब्यसनुं, पापुणोति तत सोर्गि तेसं उपघातो पतिपदी भागो चेसा (सच) 🕐 🕐
ĸ	•	• •	•	•	•	यत नारित मनुसाणं एकतरभ्हि पासंडभ्हिं न नाम पासादो यावतको (जन)
ŧ	•	•	•	•	٠	न यसकं व मितवेया चिप अटवियो देवानंपियस पिजिते पाति
ঙ	•		•	٠		सर्व भूतानां अछाते च सयमंच समे ' ' चर्रा च भारथ च
4	•	• •	•	•	•	योन राजा परंच तेन चत्तारो योन राजानो तुरमायो च आंतकान च मगा च
5	•		٠	•		(इ)धं पारिंदे सु (पादेसिकेसु) सत्रत देवानंपियस धंमानुसस्टि अनुवतरेयत
•			•	•	•	विजयो सबया पुन विजयो पि तारसी सा लक्षा सा पीती होति धेम विजयमिह
ξ ζ			•	•		विजयमा विजेतव्यं मं जासरसके एव विजये छाति च
१२			•	•	•	इलोकिका च पारलोकिका च
₹ ₹	•	• •		·		दस्वेतो परित स्वा लोकमुसुसा परोनामं.
	*	ጥ ቁ ተሰ	ì.			† There is another reading also गुण्मतं.

^{*} कश्नतो.

- १ अयं धंमालिपि देवानेपियेन पियद्धिना राज्या लेखापिता अस्ति एव
- २ संखितेन अस्ति मझमेंन अस्ति विस्ततेन च सर्व सक्त घाटेतं
- ३ महाल(लां)केहि विजितं बहुच लिखितं लिखापयिसं चेव अस्तिच एतकं
- 🗴 पुनंपुनंबुतं तस्तिसं आथसं माधुरिया किति जनो तथा पटिएजेथ
- ५ (त)तत एकदा असमातं लिखितं असदिसं व सछायकारणं व
- ६ अलोचेता लिपिकरापराधेन व

SANSKRITA TRANSLATION.*

9

- १ इयं धर्मालिपिर्देवानां प्रियण
- २ प्रियद्धिना राज्ञा लेखिता इह न क
- ३ श्चि ज्जीव आलम्बा पि होतन्यो
- भ न च सनाजः कर्त्तव्यो बहुकं दि दोषं
- ५ समाजे पश्वति देवानां प्रियो प्रियदर्शी राजा
- ६ अस्ति पित्रा कृताः समाजाः साधुमता देवानां
- ७ प्रियस्य प्रियदर्शिनो राज्ञः पुरा महानसे (म)म
- ८ देवानां प्रियस्य प्रियदार्थनो राष्ट्रोऽ नृदिवसं व
- 🔧 हुनि प्राणिशतसहस्राण्या सभ्यन्त सुपार्थाय
- १० तद च यदा इयं धर्मिलिपिलिखिता त्रय एव प्रा
- ११ णा आलभ्येरन् सुपार्थाय दौ मयूरा वेको मृगः सो ऽपि
- १२ मुगो न ध्रुव एते त्रयः प्राणाः पश्चा ज्ञालप्स्यन्ते

₹

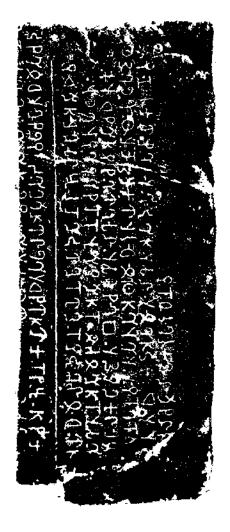
- १ सर्वत्र विजिते देवानां प्रियस्य प्रियदांशनो राज्ञ
- २ स्तथै व प्रत्यन्तेषुं ृ्यथा चोडाः पाण्ड्याः सत्यपुत्रः केरलपुत्र आताम्र
- ३ पॉण अंतियको यवनराजो येवा पि तस्यां तियकस्य सामीप्या
- राजान: सर्वत्र देवानां प्रियेण प्रियदार्शना रामा दे चिकित्सं कृते
- ५ मनुष्यविकित्सा पशुचिकित्सा च ओपधानि च यानि मनुष्योपगानि च
- ६ पशुषगानि च यत्र न सन्ति सर्वत्र हारितानि च तद्रोपणं च कारितं
- मूलानि फलानि च यत्र यत्र न सन्ति सर्वत्र हारितानि च तद्रोपण ञ्च कारितं
- ८ पथिषु कूपा श्र खानिता इक्षाणा ञ्च रोपणं कारितं परिभोगाय पशुमनुष्याणाम्

These edicts have been rendered into Sanskrita by Pandita Gattulalaji, a Scholar and Linguist of great Indian fame.

GIRNÁRA ROCK INSCRIPTION OF KING ASOKA, AT JUNAGADH. B. C. 250.

EDICT XIV.

PLATE XIV.





- १ देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एव माह द्वादशवर्षाभिषिक्तेन सये द माज्ञापितं
- २ सर्वत्र विजिते मम युक्ताः राजके च प्रादेशिके च पंच पंचसु वर्षेच नुशास
- ३ नीयाः एतस्माएव अर्थावास्य धर्मानुशास्त्ये वधान्यस्मा
- ४ अपि कर्मणे साधु मातारे च भितारे च स्थरित स्वामिता संस्तुतद्वातीनां ब्राह्मण
- ५ श्रमणेभ्यः साधुदानं प्राणिनां साध्य नालंभः अप्रव्ययता अप्रभीतता साधु
- ६ परीक्षा पि युक्ते आधापियप्यति गणान् हेतुतश्च व्यंजनतश्च

8

- १ आतिकान्ते अंतरं बहूनि वर्षयतानि बर्द्धित एव प्राणालंभो विहिंसा च भूतानां ज्ञातिष्य
- २ संप्रतिपत्ति ब्रांक्षण श्रमणाना मसंप्रतिपत्ति स्त दद्य देवानां प्रियस्य प्रियदार्श्वानो राह्यो
- ३ धर्माचरणेन भेरिथोषो ऽमू द्धर्मघोषो विमानदर्शना च हस्तिदर्शना चा
- ४ रिनस्कंभानि चा न्यानि च दिव्यानि रूपाणि दर्शयित्वा जनं यादशं बहुरिम वर्षशतै
- ५ ने मृतपूर्वे ताहरा मद्य वर्दितं देवानां भियस्य भियदिशिनो राज्ञो धम्मीनुशास्त्रा नालं
- ६ भः प्राणाना मविहिंसा च भृतानां ज्ञातीनां संप्रतिपत्ति ब्रांक्षणश्रमणानां संप्रतिपत्ति मीतरि पितरि
- ७ सुश्रूषा स्थविरसुश्रूषा एत दन्य च बहुविधं धर्माचरणं वींद्धतं वर्द्धविष्यति चैव देवानां प्रिय:
- ु प्रियदर्शी राजा धर्माचरण निदं पुत्राक्ष पीत्रा श्च प्रपीत्राश्च देवानां प्रियस्य प्रियदर्शिनो राज्ञी
 - ^र९ वर्डीयेप्यंतीदं धर्माचरणं याव त्संवर्त्तकस्वात् धर्मे शिले तिष्टंतो धर्मा मनुशासिष्यंति
- १० त दि श्रेष्टं कर्म्म य दम्मानुदासनं धर्म्मचरणमपि न भवलाशीलस्य त दक्ति न्नर्थे
- ११ वृद्धि अ हानि अ साधु रेतस्मा यथांयेदं लेक्तिमस्यार्थस्य वृद्धि युंजंतु हानिश्र
- १२ लोचायेतव्या द्वादशवर्षाभिविक्तेन देवानां प्रियेण प्रियद्क्तिना राह्ये दे लेखितं

ч

- १ देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एव माह कल्याणं (द) ध्करं यो य श्च कह्याणः स स हुक्करं करोति
 २ त त्मया यह कल्याणं कृतं त न्मम पुत्रा श्च पौत्रा श्च प्रपौत्रा श्च पर ज्ञ्च तेन य त्मे अपत्यं यावतसंवर्षः कर्यात् अनुवर्षत्तध्यत्ते तथा
 ३ स (ते) सुकृतं करिष्यति(न्ति) य स्त्वेतद्विदां (एत मादेशं) प्रहापयिष्यति स दुष्कृतं करिष्यति सुकरं हि पापं अतिकान्तमन्तरं
 ४ न भूतपूर्वे धम्मे महामात्या नाम त त्मया अयोद्दश्यर्षानीपिक्तेन धम्मेमहामात्याः कृतास्ते सर्वपाषण्डेषु व्यापृताः धम्मीधिष्ठानाय
 ५ ' ' ' ' ' ' ' ' ' ' मुस्ताय धम्मेयुतानां ' ' वंधनवधस्य प्रतिविधानाय
 १ सुस्ताय धम्मेयुतानां ' ' वंधनवधस्य प्रतिविधानाय
 - वा स्थविरेषु वा व्यापृता स्ते पाटलिपुत्रे च बाह्येषु च

8	MAURYA DYNASTY.
۷	
	सर्वत्र व्यापृता स्तै यों ऽयं धर्मों निष्ठितो ऽती व
\$, , , , , , , , , , , , , , , , , , ,
	(ध) म्मीमहामात्या एतस्मा अर्थाय से यं धर्मालिपि लैंबिता
	S.
१	देवा • • • प्रियदर्शी राजा एव माह अतिकान्त मंतरं
	न भूतपूर्व सर्व : : अर्थकर्मी व प्रतिवेदना वा तन्मवैवंकृत
	सर्वकालं भुज्जानस्य मे अवरोधने गर्मागारे वर्से (१)
¥	विनीते चो द्यानेषु च सर्वत्र प्रतिवेदकाः स्थिता अर्थे(थे) मे जनस्य
ų	प्रतिबेदयेयुरिति सर्वत्र च जनस्यार्थे(थै) करोमि व च किंचि न्मुखत
	आज्ञापयामि स्वयं : : ' यदा पुन मैहामालेवु
ø	अचार्यके आरोपितं भवति तस्मा वर्षाय : • • परीक्षेयं
4	अनन्तरं प्रतिवेदयत 🕛 🐪 सर्वत्र सर्वस्मि न्काल एवं मया ज्ञापितं नास्ति हि में तोषः
•	उत्थाने अर्थसन्तरणायै व कर्त्तत्र्यं मतं हि मे सर्वछोकहितं
१ •	तस्य च पुन रेत न्मूलं मुत्थान अचा र्थसन्तरणा च नास्ति हि कम्में तरत्
१ १	सर्वेलोकहितार्थाय किचित् पराक्रमास्य हं कि मिति भृताना मारृष्यं गच्छेय
ŧ٦	मिह च सुसाय यामि परत्र च स्वर्ग माराधयन्तु त देतरमाव थीय
१ ३	इयं धर्म्मलिपिलेंखिता किमिति चिरं तिष्ठेय मिति तथा च मे पुत्रा अप्र पौत्रा अप्र प्राप्तेत्रा अप
₹¥	अनुवर्त्तेरन् (१) सर्वेलोकहिताय दुष्कर न्तिव द मन्यता रन्येण पराक्रमेण
	.
ķ	देवोनां प्रियः प्रियदर्शी राजा सर्वत्रे छति सर्वे धाषण्डाः वसेयुः सर्वेषु तेषु संयम अच
	भावशुद्धिञ्चेछन्ति (ा सर्थेते इछन्तु) जनस्तूचायचश्छंदः उज्ञावचरागस्त सर्वे वा कारिष्य न्त्येकदेशं वा कारिष्यन्ति
₹	विपुछं द्वं प्रदानं यस्य नास्ति संयमो भावशुद्धिता वा कृतश्वता वा इदभक्तिता च नित्या बादम्
	૮
ŧ	अतिकातमन्तरं राजानो विहारयोत्रामयासिषुरत्र भृगयाऽन्यानि चैताहशानि
	अभिरामकाण्यभूवन् तद्देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा दशवर्षाभिषिकःसन्नन्याय्यां संबोधि (समबुध्यत)
	तेन सा धर्मधात्राँ ८त्र य ऋवित ब्राह्मणश्रमणानां दर्शन उच्च दान अच स्थविराणा न्दर्शन उच
	हिर ⁸ यप्रतिविधान ञ्च जानपदस्य च जनस्यदर्शन न्धर्माानुशारित श्च धर्मापरिपुन्छा च
	सतः पश्चात् (पथ्यात्) एथा मूथो रित भवतात् देवानां प्रियस्य प्रियदिश्चिनो राह्यो भाग्यमन्यत्.
	९
<u></u> ŧ	देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजै व माह अस्ति जम उच्चावचं मंगलं करो त्याबाधेषु
	c Can be rendered as भागें इन्यस्मिन् but is rejected.

- २ वा ऽऽवाहिनेवाहेषु वा पुत्रलाभेषु वा प्रवासे वा एतरिम श्रा न्यारिम श्रा जन उच्चावचं मंगलं करोति
- रे एत जु महादायः बहु च बहुविधंच क्षुद्र ञ्च निर्ध ञ्च मंगलं करोति तत् कर्त्तव्य मेव द्व मंगल मरूपकल न्द्र स-
- 😮 ल्वे ताहरां मंगल मिद न्यु महाफलं मंगलं यद्धम्मेमंगलं तत्र दासभृतके प्रातिपत्तिर्गुरूणामपाचितिः साधुः
- ५ प्राणेषु संयमः साधु ब्राह्मणश्रमणेभ्यः साधुदान मेत चान्य चै ताहरा धर्ममैगछं नाम त इक्तव्यं पित्रा वा
- ६ पुत्रेण या भ्रात्रा वा स्वाभिना वे दं साध्वि दं कर्त्तव्यं मंगलं यावत्तस्वार्यस्य निष्ठानायास्ति च प्रवृत्तं
- साभुदान मिति न लो तादृश मास्ति दानं वा नुष्रहो वा यादृशं धर्मदानं वा धर्मानुष्रहो वा त तु खलु मित्रेण वा सदृदयेन वा
- ८ ज्ञातीयेन वा सहायेन वो प्राहितव्यं तारींम स्तारिम न्यवरणे इदं कृत्य मिदं साधु साध्वि ती मानि सक-
- स्वर्ग माराधियद्वामियान्त चेमानि कर्त्तव्यतराणियथा स्वर्गाराद्धिः

- देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा यशो वा कीर्ति वा न महार्थावहं मन्यते अन्यत्र तत् दत्त्वा नो दीर्घाय च मे
 जनोधर्मशुश्रुषां शुश्रुवतां
- २ थर्मावृत्तं चा नुविधीयतं (अनुविद्धातु) आविकाय देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा यशो वा कीर्त्ति वे च्छति
- ३ य चुर्किचित् पराक्रमते देवानां धियः प्रियदर्शी राजा त त्सर्वे पारित्रेकाय कि मिति सकल मपपरिश्रव मस्य एप तु परिश्रवः यद पुण्यं
- ४ दुष्करं तु खट्वेतत् क्षुद्रकेण वा अनेनोपतावान्यत्राग्न्येण पराक्रमेण सर्वं परित्यच्य एतत्तु खलूपता दुष्करं

99

- २ तत्रे दं भवति दासभृतके संप्रतिपत्ति मीतरि पितरि साधु शुश्रूषा मित्रसंस्तुतकातीयेभ्यो ब्राह्मणश्रमणेभ्यः साध्र टार्न
- प्राप्यनालंभः साध्व त्र वक्तव्यं पित्रा या पुत्रेण का भ्रात्रा या मित्रसंस्तुतक्वातीयेन वा यावत् प्रतिवेदयैरिदं
 साथ् इदं कर्त्तव्यं
- 😮 सं तथा कुरते इह लोकस्य चा राध्यो भवति परत्र चा नन्तं पुण्यं भवति तेन धर्म्मदानेन.

93

- १ देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा सर्वपाषण्डानि च प्रज्ञाजितानि च गृहस्थानि च पूज्यति दानेन च विविधयाँ च गूजया च पूजय स्वस्थान् *
- २ न तु तथा दानं वा पूजां वा देवानां प्रियो मन्यते यथा कीर्तिसारवृद्धिः स्यात् सर्वेपाषण्डानां सारवृद्धि स्तु बह्विधा
- २ तस्य तस्य लिदं मूळं यद्वृत्तिगृप्तिः किमिति आत्मपाषण्डपूजा वा परपाषण्डगही वा नी भवेदप्रकरणे छपुता वा स्यात्

of ने in the original.

- ४ तास्मिस्तारिमन् प्रकरणे पूजायितव्यास्त्रेव परणाघण्डास्तेन तेन प्रकरणेतैवं (कृतं) कुर्वन् आत्मपाघण्डञ्च वर्द्धयति परपाघण्डस्य चो पकरोति
- ५ त दन्यथा कुर्वन् आत्मपापण्ड अच श्विणोति परपापण्डस्य चा प्य पकरोति यो ऽहि कश्चि दात्मपापण्डं पूजयति परपापण्डं वा गहाति
- **६ सर्व मा**रमपाषण्डभरक्या (ar भक्तेः) कि भिति आत्मपाषण्डं दीपयाम इति स च पुन स्तथा कुर्व न्नात्मपाषण्डं वाहतर मुपहन्ति त त्समबाय एव साधुः
- कि मिति अन्यान्यस्य धर्मे शृणुयु श्र शुश्रूषेरं श्रै वं देवानां प्रियस्थे छा कि मिति सर्वपापण्डा बहुश्रुता श्र स्यु:कल्याणागमा श्र स्यु:
- ८ ये च तत्र तत्र प्रसन्ना स्ते हि वक्तव्याः देवानां प्रियो न तथा दानं वा पूजां वा मन्यते यथा कीर्तिसारवृद्धिः स्यात् सर्वेपायण्डानां बहुता चै तस्मा
- ९ य योय स्थापृता भर्ममहामात्मा स्थप्यक्षमहामात्मा ॥ श्रास्थाप्तिकाश्चात्ये च निकाया इदञ्चेतस्य फलं य दात्मपाषण्डवृद्धि श्राभवति भर्मस्य च दीपना

- १ · · देयं तस्य स्पेशमात्रं तत्रा हतं बहु तद्वात्यकर्म्म ततः पश्चादधुना लब्धेषु कलिङ्गेषु तीत्रो धर्मावापः
- 🔾 • वधी वा मरणं वा अपवाहो वा जनस्य तद्वाडं येदानां मतं चाङ्गानां 🕆 मतं च देवा •
- • • (शुश्रू)षा मातापित्रोः शुश्रूषा मित्रसंस्तुतसहायबातायेषु दास
- 😮 • • यत् बातीये व्यसन प्राप्तोति तत्र सी अपि तेषा मुपबातः प्रतिपत्ति भीग श्रे षां सर्व 🚉 🔑
- ५ • यत्र नास्ति मनुष्याणां एकतरिमन् पाषण्डे न नाम प्रासादः (प्रसादः)यावत्तर्कः 🕇 जन-
- १ • • न यत् शक्यं वा मितव्ययाः (१)चा पि अटव्यः देवानां प्रियस्या पि पाति
- ७ • • सर्वभ्वानामक्षातिसयमंच शमं • चर्या च मार्दवं च
- ८ • • यथनराजो (राज:)परं च तेन चत्थारो राजानः तुरमायः च अंतकानः च मगः च
- ९ · · · • इत्यं प्रादेशिकेषु सर्वेत्र देवानां व्रियस्य धर्मीनुशास्ति अनुवद्वतिरे यन्नापि हुति (बाुति)
- 🔾 • • • विजयः सर्वथा पुण्यत्विजयः अपि ताद्दराः सा छब्धा सा प्रीतिः भवति धर्मविजये
- ११ • • विजयं मा विजेतन्यं मेनिरे शक्य एव विजयः स्यातिश्र
- १२ • • • ऐहलै। किका च पारलै किका च
- **१३ · · · · भे**तोपास्तिः सर्वलेकसुलः परिणामः

98.

- १ इयं भर्मिलिपि देवानां प्रियेण प्रियदक्षिना राज्ञा लेखिता अस्लेव
- २ संक्षिप्तेन अस्ति मध्यमेन अस्ति विस्तृतेन च सर्वे सर्वत्र घटितं
- महालोकैः विजितं (विदितं) बहु च लिखितं लेखियण्यामि चै वं श्रास्ति च एतावत्
 - We have no ground to change इयोग्नल to अधाग्नल which = अधीप्यक्ष and give good sense.
 - † The rendering गुरुमतं makes no good sense.
 - ‡ The other reading यावकाणे = यावत्कर्णे.

- ४ पनः पुनः वृत्तं तस्य तस्य अर्थस्य माधुर्या किमि ति जन स्तथा प्रतिपद्येत
- ५ ततः (त त्त्)एकदा असमातं लिखितं असहयं वा संशय (१) कारणं वा
- ६ आलोचयत (आलोच्य) लिपिकरापराश्रेन वा.

English Translation.

Edict I.

This edict is proclaimed by King Priyadarsin the beloved of the gods. None should here on earth slaughter any animal even for sacrifice, nor should call together large gatherings,* for in them the King Priyadarsin, the beloved of the gods, remarks many sins. Still the King Priyadarsin, the beloved of the gods, looks with favour on the gatherings ordained by his father. In the kitchen of mine, King Priyadarsin, the beloved of the gods, many thousands of animals were day by day slaughtered for food; but to-day when this edict is sent forth only three animals are being killed for food viz. two peacocks and one deer. But even this deer is not necessarily to be killed, nor even all the three shall afterwards be killed.

Edict II.

In the whole dominion of King Devânâmpriya Priyadarsin, as also in the adjacent countries as Chola, Pandya, Satyaputra, Keralaputra, all as far as the Tamraparni, even in the kingdom of Antiochus, the Grecian king, and of his neighbour kings, the King Devânâmpriya Priyadarsin has ordered two things: the caring for the sick of man and the caring for the sick of cattle; and at all places where useful healing herbs for men and cattle were wanting, he has caused them to be brought and planted; and at all places where roots and fruits were wanting he has caused them to be brought and planted; also he has caused wells to be dug and trees to be planted, on the roads, for the benefit of men and cattle.

Edict III.

King Devânâmpriya Priyadarśin orders twelve years after his coronation that everywhere in my dominion whether under my direct control or in foreign lands, all connected with me should every five years be thus ordered (being called together) . . . for this purpose; for carrying out this edict and for other business† as well—That it was pious to be obedient to father and mother, to protect the men of our own caste, to give gifts to Brâhmanas and Śramanas,

[·] Perhaps for purposes of dinner, &c.

[†] As of collecting taxes, &c.

to abstain from killing animals, from prodigality, and to be fearless in all acts. Thus will those in my connection be also tried in their attachment.

Edict. IV.

Since a long time past, during many hundreds of years, sacrificing of animal life and inflicting suffering on the creatures, want of sympathy for caste-members and respect for Brahmayas and Sramayas have gone on increasing. But now the righteousness which King Devânâmpriya Priyadarsin practises is proclaimed far and wide with beating of drums. People have been led to righteousness in a manner not known for many hundreds of years, by the Edicts of King Devanampriya Priyadarsin, being called together by various things like celestial cars, elephants, fireballs, and similar attractive sights. King Devanâmpriya Priyadarsin has promoted and will promote the sparing of animal life, the gentle treatment of creatures, respect for relatives, respect for Bråhmanas and Sramanas, obedience to father and mother, obedience to elders and many similar acts of righteousness. The sons, grandsons, and great-grandsons of King Devånåmpriya Priyadarsin shall also cause this culture of virtue to increase; standing steadfast in rightcourness and morality until the destruction of the world, they shall exhort to righteousness; to exhort to rightousness is surely a very excellent work, while from him who is immoral no practice of righteousness is to be expected. Increase, therefore, in these things, and no diminution, is good; for this end has this been written; may they attend heartily to the increase hereof, and prevent the diminution of it. King Devanampriya Priyadarsin has caused this to be written twelve years after his inauguration.

Edict V.

. . they are to superintend among government officials as among elders, also in Pâtaliputra and abroad others of (my) relatives are sent every where. This practice of righteousness which is initiated is very Ministers of religion. For this end has this Edict been caused to be written.

Edict VI.

King Devånåmpriya Priyadarsin says: In past times there has never yet existed care for the (civil) interests, nor arrangements for hearing complaints: therefore have I instituted the same; all the time I have been reigning there have been placed everywhere persons appointed to hear complaints in the apartments of women, in sanctuaries, in parks and in similar places in order that they should know the wants of my people and report them to me. In all respects I further the interests of my people. In whatever I declare by word of mouth * or whatever I entrust to my Ministers or Preceptors * I always reconsider * This have I everywhere and at all time commanded. For to me there is no satisfaction in increasing litigation. Litigation is necessary only for the securing of some (civil) interest. I deem it my duty to do good to all, but would attend to quarrels only so far as they tend to settle any disputed interest. I have no other business, but the little effort that I am constantly doing for the good of all. Thus do I wish to discharge somehow my debt to all beings . . . * may attain heaven. This Edict has been caused to be written for this purpose, would that I should look after it for long; let my sons, grandsons and great-grandsons after me also labour for universal good, which is difficult without extreme exertion.

Edict VII.

King Devånåmpriya Priyadarsin desires that everywhere the ascetics of all persuasions should remain (in peace); he desires in all of them self-control and purity of the soul. But people have different opinions and different likings; they may do all or a part. Neverthless, for one who is not able to make large religious gifts,—restrain over senses, purity of mind, gratefulness, and firm devotion which lasts for ever, are good.

Edict VIII.

In past times the kings went out on journeys of pleasure; stag-hunting and other such recreations were in vogue. But King Devânâmpriya Priyadaršin, ten years after his inauguration, regards them as improper. Therefore he here regards as proper and good, only those religious acts (journeys?)

The prakrita cannot be made out.

whereby, gifts are bestowed upon Brâhmanas and Sramanas, elders are seen and served with presents, money is exchanged,* people of different countries are seen, righteousness is taught, inquiries are made after virtue. King Devânâmpriya Priyadarśin looks upon these with favour, and enjoys also all the rest (of the pleasures) according as it comes to him as the result of his deeds.

Edict IX.

King Devânâmpriya Priyadarsin speaks thus: It is a fact, that men do all kinds of things which are to assure luck, as well in sickness as at betrothals and marriages, at the getting of a son, as at going from home. On these and other occasions men do all kinds of things which are thought to bring prosperity. But it is a great loss to do all those manifold, multifarious, vain, and useless things. This, however, does not indeed remove the necessity of a man's doing something which will bring prosperity, but such a kind as has been named is of little use, while of great use is true picty. To that belongs proper treatment of servants,† and subordinates, reverence for masters, sincere self-restraint towards living beings, sincere charity to Brahmanas and Sramanas. These and other like actions, are called true religious mangala. This must be taught by all, fathers, sons, brothers and lords. This is noble; this must a man do as something that assures luck, until his aim has been fully attained. Mention was made just now of "sincere charity," now there is no charity, no good-will to be compared to charity or good-will springing from true piety. It is just this which a well-meaning friend, relative, or companion, must at every occurring opportunity impress on another, that this is duty, this is proper. These and many other things, all, must be properly done for obtaining heaven. May all thus attain heaven.

Edict X.

King Devânâmpriya Priyadarśin does not regard renown and great name as any great objects; for without heavy sacrifice it never stands long. Let my people follow the path of righteousness and be ever pious. King Devânâmpriya Priyadarśin covets renown or name only for this world, but whatever little he does is all for the next. Everything of him is without blemish; and blemish is nothing more or less than sinfulness. Such a thing is, indeed, difficult for any one whatever, be he a person of low degree or of high station, unless with the utmost exertion of power, by sacrificing everything. But this is, indeed, most difficult for a person of high station.

[·] Perhaps refers to commercial transactions.

[†] रास probably means slaves; and भुतक scome to be a word for all other kinds of subordinates.

Edict XI.

King Devånåmpriya Priyadarsin speaks thus:—There is no charity which equals religious charity, or explanation of religious precepts or right liberality, or religious relation. Under these are comprehended proper treatment of servants* and subordinates, sincere obedience to father and mother, sincere charity towards friends, acquaintances, and men of the same caste, giving of gifts to Bråhmauas and Sramauas and the sparing of animal life. This is to be commended as good, whether by father, or by son, by brother, or by friend, by an acquaintance, or by a man of one's caste, nay even by a neighbour. He who acts thus makes this world a friend to him, and hereafter obtains for himself an imperishable reward through all this true charity.

Edict XII.

King Devånåmpriya Priyadarsin honours all sects, and orders of monks and all conditions of heads of families, and honours them and others with religious gifts and with marks of honour of all kinds. To be sure, Devânâmpriya does not attribute so much value to religious-gifts or marks of honour, as to this, that the good name and intrinsic worth of all sects may increase manifold. The foundation thereof, in all its compass, is the giving them all proper and respectful maintenance. In order that one's own sect may not be praised at the expense of another, and that there should be no undue neglect of any, all sects must on all occasions be honoured; for one so doing on all occasions adds greatly to his own sect's merit and at the same time encourages all others. One doing otherwise destroys his own sect and does harm to others. Though every one who praises his own persuasion may, perhaps, do all that, from attachment to his own sect, for the purpose of glorifying it; nevertheless he shall, by so doing greatly injure his own persuasion. Therefore concord is best, so that all may know and willingly listen to each other's religion. Because it is a wish of Devanampriya that the members of all persuasions may be well instructed, and obtain blessings. And to them who are attached to different persuasions let the assurance be conveyed that Devânâmpriya does not attach so much value to religious-gifts or worship as to this, that all sects may increase in good name and intrinsic worth, and be reverenced. For this end Dharma-Mahâmâtyas, magistrates entrusted with the superintendence of the women, superintendents to treat ascetics, and other bodies have been appointed. And the object of this is that Devânâmpriya's persuasion may increase in prosperity, and that he may cause righteousness to come forth in full splendour.

[•] दार probably means slaves; and प्राप्त seems to be a word for all other kinds of subordinates,

[†] If we take अर्थाध्यक्ष, officers of revenue.

Edict XIII.

. . must be given. All his (spics) men have been killed, which certainly is a very cruel act. But in the Kalingas obtained thereafter the practice of religious virtue has grown very active . . . the killing, putting to death, or being carried away of men; therefore the ruling of the Vedas and the Angas is good. God... reverence to mother and father, sympathy for friends, acquaintances, assistants, men of the same caste, servants . . . that one of a caste should suffer some misery is on account of the fault of others, and they should therefore help him and bear a share in his misfortune; . . . where men have no faith in one or other persuasion, and so long as they remain in doubt nor which is possible; in the dominion of Devanampriya all forests are as little trespassed upon as possible and are thus protected. the preservation, self control and pacification of all beings tending and gentleness. . . the Yavan king and the four Yavan kings and Turmaya (Ptolemy), Antakâna (Antigonas) and Maga (Magas). . thus in all foreign countries and everywhere is the religious injunction of Devanampriya followed, where even glory and glory of virtue are also similar; no joy exceeds the joy consequent on the victory of righteousness. . . . believes nothing to be conquered, for conquest and renown are ever within reach . . . in this world and the next the worship of the Sweta,* the securing of the happiness of all.

Edict XIV.

King Devânâmpriya Priyadarsin has caused this righteous edict to be written, here concisely, there in moderate compass, in a third place again at full length. Thus is everything expressed everywhere, known to the great. Much has he caused to be written and shall cause again to write. Repetitions occur also, in a certain measure on account of the agreeableness of various points, in order that the people should in that way be persuaded to understand and follow them. If sometimes the one or other is written incompletely or not in order, it is because care has not been taken to make a good transcript, or the copyist (i. e. the stone-engraver) is at fault.

[·] Perhaps the Lord Buddha.





STONE INSCRIPTION OF THE SAH KING (RUDRASINHA) GRANDSON OF JAYADÂMA FOUND AT JUNÂGADH.

SÂH DYNASTY.



I.

Stone Inscription of the Sah King (Rudrasimha) grandson of Jayadama found at Junagadh.

This inscription is to be found in an under-ground room called Khapara-kodiya's cell near the Upara Kota at Junagadh in Saurashtra. Junagadh is the capital town of a State of the same name and is situated in the south-western part of the Province in N. Lat. 21° 1′ and E. Long 70° 13′.

The stone measures 18" by 6" having a slit in the middle with both the upper corners crumbled down. It is a sand-stone, and is at present placed in the Printing-Press of the State. It contains four lines.

As the inscription is worn out in several parts, it is difficult to find out what it related to. The year also cannot be found; but the day and the month are to be seen on the stone.

The language of the inscription is Sauskrit, the character being that of the Sah period.

Transliteration.

- १ गामगामा स्तमा सुरगामा श्वतपामा
- २ (स्त्रामी)चष्टनस्य प्र(पी)त्रस्य राज्ञः क्षत्रपस्य स्वामिजयदामपीत्रस्य राज्ञो महाक्षः
- ३ (चैत्र)शुक्रपक्षस्य दिवसे पञ्चमे (५) इह गिरिनगरे देवासुरनागयक्षराक्षसेन्द्रिः
- ४ ···प्रक(१)मित्र परम......केवलिज्ञानसंप्राप्तानां जितजरामरणा (१)॥

TRANSLATION.

* · · · Rājā Mahā Kshatrapa the gratidson of Rājā Kshatrapa Swāmi Jayadāmā, the great-grandson of Swāmi Chashṭana · · · · · On the fifth day of Chaïtra Suklapaksha here in Girinagara, the gods, demons, nāgas, yakshas, and giants · · · · of those who have attained to real knowledge and have conquered old age and death · · · · ·

[•] The first line cannot be translated.

II.

Rock Inscription of the Sah King Rudra Dama at Junagadh.

Dated 72nd year of that King.

The rock, on which this inscription is found, is at the foot of Mount Giranara on the way to the temple of Dâmodarji, about a mile to the east of the town of Junagadh in Saurashtra.

The face of the rock measures 11' $2'' \times 5'$ 5" having some of its portion in the middle and at the end worn out.

It contains twenty lines and gives an account of a dam thrown across the Sudarsana lake in the Giranara, which was washed down by the force of water during the previous rainy season.

The date given is the 72nd year of King Rudra Dama; the date corresponding to which in the Christian, Vikrama, or Saka era is difficult to determine. On this point there is great deal of difference of opinion among antiquarian scholars, though some are inclined to take this date to be that of the Saka era.

The language of the composition is Sanskrit, the character being of the San-period.

TRANSLITERATION.

- सिद्धे इदं तटाकं सुदर्शनं गिरिनगरा दापादरम(णी) प्राथमा प्राथमा स्वापाद स्वतिकापल विस्तान्त्रा स्वतिकापल विस्तान्त्रा स्वतिकापल विस्तान्त्रा स्वतिकापल विस्तान्त्रा स्वतिकापल विष्या स्वतिकापल विस्तान्त्र स्वतिकापल स्वतिकाप
- २ द ष्प(म)तिस्पिर्धिसुिरुष्ट(बन्धं) स्वत्रवन्धेनोपपन्नं सुप्रतिविद्याद्वाद्वापिरवाहं।
- ४ तनाम्नः स्वामिचष्टनस्य पीत्रः प्राप्ताः पुत्रस्य राक्षे महाक्षत्रपस्य गुरुमिरस्यस्तकामः (कामस्य) रुद्रदाम्नो वर्षेद्रिसप्ततितमे ७२।
- ५ मार्गेशीर्षबहुछ(प्रतिपदि) · · · · · · · · (सु)सृष्टवृष्टिना पर्ज्जन्येन एकार्णवमृतायामिव पृथिव्यां कृतायां गिरेरुर्ज्यतः सुवैर्णसिकता-
- ७ शपरमधोरवेगेन वायुना प्रमथितसलिलविश्वितज्ञज्जरीकृताव (कि) ताश्मवश्रगुरमलताप्रतानं आनदी (तला द) त्युद्घाटितमासीत् चत्वारि हस्तशतानि विश्वदृत्तराण्यायतेन एतावत्येव विस्तीर्णेन
- पंचसप्तितहस्तावगाढेन भेदेन निस्तृतसर्वतायं मरुधन्यकल्पमितिभृशदुर्दर्शनं ·····(स्त्रा) ······धमित्र्यस्य राज्ञः चंद्रगु(तस्य) राष्ट्रियेण (वै) स्थेन पुष्पगुप्तेन कारितमञ्जोकस्य मौर्थस्य ते (तत्) यवनराजेन उपस्पेनाविष्टान ।

- प्रताडीमिरलंकृतं तत्कारितया च राजानुरूपकृताविधानया तस्मि(न्) भेदे दृष्टया प्रणाल्या वि (स्तृत)से(तु)
 च्यान्यान्य प्रतानिक्षितसमुद(य)राजलक्ष्मी(धारि)णा गुणतस्सर्ववर्णेरिमगम्य रक्षणार्थं पितत्वे कृतेन आप्राणेष्ट्यासात् पुरुषवधनिकृतिकृत-

- १२ वीरशब्दजातोत्सेकाविधेयानां योधेयानां प्रसक्षोत्सादकेन दक्षिणापथपते स्सातकर्णे दिरापे निर्व्याजमवजी(जि) त्या वजी(जि)त्य संवधावदुरया (दूरतया) अनुत्सादनात्प्राप्तयशसा मा(द) (त्र)विजयेन भ्रष्टराज्यप्रतिष्ठापकेन यथार्थहरूतो-
- १३ च्छ्रायाज्जितोज्जितभर्मानुरागेण शब्दार्थगांभविन्थायाद्यानां विद्यानां महतीनां पराण(शहण)भारणविक्रानप्रयोगा वासविपुळकार्यिना तुरगगजरयचर्य्य(स्या)सिचमीनियुद्वाद्या(म)******(ति)परवललायवसौष्टविक्रियेण अहरह दौनमानान-
- १४ नवमानशीलेन स्थूललक्ष्येण यथावत्याप्तैर्वलिशुक्रमागै: कनकरजतवक्ष्येड्यरत्नोपचयविष्य(ष्यं)न्दमानको-शेन स्कुटलभुमभुरचित्रकान्तशब्दसमयोदारालकृतगद्यप(द्य)·····नग्रमाणमानोन्मनस्वरगति-वर्णसारसत्वादिभि:
- १६ प्रणयिक्रियाभि : पोरजानपदं जनं स्वस्मा क्लोशा(त) महताधनैधिन अनितमहता च कालेन त्रिगुणहदतर-विस्तारायामं सेतुं विधा(य) * (स)र्वनग(र) * * * * * * (सु)दशैनतरं कारित मिति (अ)स्मि ब्रथें
- १७ महाक्षत्रपस्य मतिस्रचिवकर्मसचिवेरमात्यगुणसमुद्यकैरप्यतिमहत्वादेदस्यानुत्सादीवमुखमतिमिः प्रत्या स्थातारंमं
- १८ पुनः सेतुवंधनै र(ा)स्या ध्याहाभूतासु प्रजासु इहाधिक्षाने पौरवानपदवनानुष्रहार्थं पार्थिवेन कृत्कानामान-र्तसौराष्ट्राणां पाळनार्थं नियुक्तेन
- १९ पल्हवन कुरुपपुत्रेणामात्मेन सुविधास्त्रेन यथावदर्भधर्मच्या(व्य)वहारजदर्शनैरनुरागमनुवर्द्धयता शक्तेन दान्तेनाचपलेनाविस्मितेनाहार्येणा हार्येण
- २ स्विभितिष्ठता धर्मकीर्तियशांसि भर्त्तु रिमवर्धयतानुष्टि(प्रि)त मिति ॥

TRANSLATION.

To the perfect one. This Sudarśana lake, being from Girinagara, is beautiful in all respects, having been supplied with an embankment all round strongly lined with masonary continuously in its length, breadth, and height, so as to rival the hill region itself, possessed of a natural causeway formed by furnished with canals, &c., for the ingress and egress of water; and fed with

the water (of certain rivers) by embankments, &c.; and three branches and other advantages, is in a highly flourishing condition. (This work gave way) on the 1st day of the dark fortnight of the month Margasirsha of the 72nd year of Râjâ Mahâkshatrapa Rudra Dâman, whose wishes are fulfilled by (the blessings of his) gurûs, the grandson of Mahâkshatrapa Chashtana of propitious name the son of . . . in consequence of the rain having poured down in heavy showers everywhere, converting the surface of the earth as it were into one ocean; and the excessive swelling of the currents of the Suvarna Sikata and Palasini* and other rivers of the Urjayata hill, and on account of a hurricane, destroying the hill-tops, trees, towers, open seats, gates, places for shelter, arches, &c., raised on the bank, and resembling in its terrible force the deluge, its waters were so greatly agitated as to displace · · · stones and trees and thick expanse of creepers, &c., and split open even the very bottom of the river. The lake with all its water gone out of this passage of four hundred and twenty cubits length and of the same breadth, and seventyfive cubits deep, appeared as if it were one in the country of Marwar for the sake of · · · · was caused to be made by (Vai) sya Pushyagupta, a native of the country of the Maurya Raja Chandragupta; and was embellished with water courses, &c., under the superintendence of Tupaspa, the Yavan Raja of Aśoka Maŭrya. By the water-course seen in this break which he (Tupaspā) has had constructed, and which had been executed in a manner worthy of the King the extensive bridge . . . who—the abode of royal fortune which manifested itself in uninterrupted prosperity from his childbirth, was loved on account of his virtues by all classes approaching for protec tion as his subjects; who except in war, had taken the true vow never in his life to kill a human being, but liberally gave blows to equal and opposing enemies · · · who was compassionate, who afforded protection to countries which surrendered (themselves) to him; who was the lord of the countries such as Purvadeśa, Parâkara, Avanti, Anupa Nivrit, Anarta, Surâshtra, Svabhra, Maru, Katchchha, Sindha Saŭvira, Kukura, Aparânta, Nishâda, &c., all the people residing in whose ancient citiest were not molested by thieves, snakes, ferocious beasts or diseases,—cities, which were aquired by his own valour, and the inhabitants whereof were greatly devoted to him; who rooted out with great strength great heroes who would not submit from their pride of their valour wellknown among the Kshatriyas; who without treachery, after twice thoroughly conquering Satakarni, lord of Dakshinapatha, did not completely destroy him, on account of their near connection, and thus obtained glory of great exploits . . . who re-established deposed Kings; who by properly raising

O Both these streams are at the foot of Giruâra and are at present called Sonarekhâ and Palâmsavo respectively.

[†] This rendering is doubtful.

his hand (i. e. in giving gifts) has often acquired great merit in religion; who has secured great renown by his power of comprehending, retaining, knowing and practicing the great sciences of grammar, politics, singing, nydya and the like; who was skilled in the arts of riding horses, elephants, and chariots, (and who was skilled in the use of) the sword, the shield, in fighting · · · and in reducing the enemies' forces; who was always of a charitable, courteous, and obliging disposition; who was munificent; whose treasury overflowed with abundance of gold, silver, diamonds, lapislazuli (vaidûrya), and jewels, acquired by just and proper taxes and duties; whose was graced by clear, simple, sweet, admirable, and appropriate (sentences in) prose and poetry; whose beautiful form was united with the best signs and significant turns as shown by his gait, height, voice, walk, colour, vigour, strength, &c., who himself acquired the title of Mahakshatrapa (protector of warriors), who won numerous garlands of flowers in the Swayamvara ceremony of the daughters of kings; by this Mahâkshatrapa Rudra Dâman, for cows and Brahmaus for a period of 1000 years · · · · · · and for the increase of his merit and fame with great generosity remitted taxes · · · · · and the people of the city and country from forced labour; and by a liberal amount of money from his own treasury, in no great length of time constructed the bridge of three times the length and breadth · · · · caused the most delightful lake to be made, that would last. On account of the largeness of the gap, the undertaking was forbidden by the King's advisers and executive officers, although possessed of all thequalifications of ministers, and not disinclined to encourage enterprise; the people, losing all hope of the re-building of the bridge, raised woeful cries, when the work was executed for jobliging the people and the country by Pahlava, son of Kulaïpa, and minister Suvisakha, appointed by the King for the protection of the whole of Anartta and Surashtra · · · · (who Suvisakha) by the proper dispensation of justice in temporal and spiritual matters secured the love of the people; who was powerful, kept his senses in restraint, was steady-minded, unshaken, wise, unconquerable, well-behaved; and who became the increaser of his master's religion, glory, and fame.

III.

Stone Inscription of Ahirapati Rudrabhûti found at the village of Gunda under Jamanagar in Saürashtra. Dated year 103 of Rudrasimha.

The village of Gunda, where this inscription was found, is in the district of of Bhanavada under Jamanagar State. It is about 25 miles from Porabandar. The inscription is on a white sandstone found in digging a well, and is at present kept in the temple of new Dvarkapuri at Jamanagar.

The face of the stone measures $24'' \times 9''$ and contains about five lines.

It mentions that Senâpati Rudrabhûti caused a well to be dug at the village of Rasovadra in the 103rd year of King Rudrasimha. The remarks about the date of the previous inscription hold equally good for this.

The language of the composition is Sanskrit, the character being that of the San period.

TRANSLITERATION.

- १ सिदं राहो महाक्षत्र(प)स्य स्वामिचष्टनप्रपौत्रस्य राहो महाश्वत्रपस्य स्वामिजयदामपौत्र
- २ स्य राची महाक्षत्रपस्य स्वामिकद्भदामपुत्रस्य राची श्वत्रपस्य स्वामिकद्र
- ३ सिंहस्य (व)र्षे त्रिउत्तरशते १०३ वैशाखशुद्धपंचमीधन्यतिथी अवणनक्ष
- त्रमुद्ते आभीरेण सेनापतिबाहकस्य पुत्रेण सेनापतिबद्धभृतिना ग्रामे रसो
- ५ पद्रे ,हदः खनितो बंधापित(बॅथित)श्च सर्वसत्वानां हितर् संधीमिति

TRANSLATION.

In the year 103 after Râjâ Kshatrapa, Swâmin Rudra Dâmâ, grandson of Râjâ Kshatrapa Swâmin Jaya Dâmâ, great-grandson of Râjâ Mahâ Kshatrapa Swâmin Chashṭana, on the 5th of the light-half of Vaisâkha, being an auspicious day, the nakshatra being Sravaṇa, Ahira Senâpati Bâhaka's son Rûdrabhûti caused (this) reservoir of water to be dug and constructed in the village of Rasopâdara for the benefit and comfort of all beings.

IV.

Stone Inscription of the time of King Rudrasena found at the village of Gadha under Jasdana in Saürashira. Dated year 127th of Rudrasena.

The village of Gadha, where this inscription was found, is under Jasdana in Kāṭhiāvāḍ and about two miles north of it. It is to be found on a small hill to the west of the made road leading to the village. The stone is hard and dark-coloured, measuring 4'2" × 1'10", and contains six lines. The previous remarks about date apply here as well.

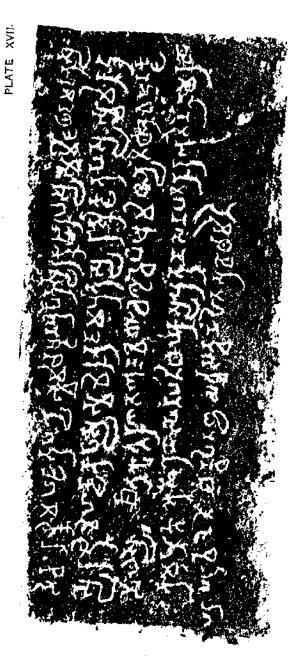
It merely mentions the digging of a tank, but contains a geneology of the Sah Kings.

The language of the composition is Sanskrit, the character being that of the Sah period.

TRANSLITERATION.

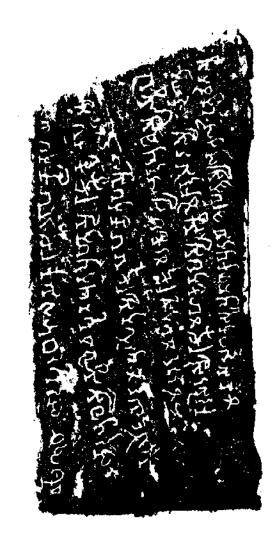
- १ वर्षे १२(७) भाद्रपदवहुलस(स्य) ५राको महाक्ष(त्र)एस(स्य)
- २ भद्रमुखस्य स्वामिचष्टनपुत्रप्रपौत्रस्य राज्ञो क्षत्रपस्य(स्य)
- स्वामिवयदामपुत्रपौत्रस्य राह्ये महाक्षत्रपस्य भद्रमुखस्य

stone inscription of Ahirapați rudrabilchi found at the village of guydâ under jâmnagar IN SAÜRÄSHTRA. DATED YEAR 103 OF RUDRASIŅHA.





STONE INSCRIPTION OF THE TIME OF KING RUDRASENA FOUND AT THE VILLAGE OF GADHA UNDER JASDANA IN SAÜRÂSHŢRA. DATED YEAR 1271H OF RUDRASENA. PLATE XVIII.



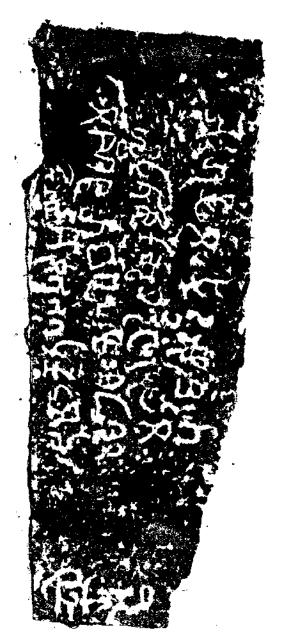




STONE INSCRIPTION OF THE TIME OF KING RUDRASENA AT DVÅRKÅ IN SAURÅSHURA.

DATED YEAR 2:2 OF RUDRASENA.

PLATE XIX,



- 🗴 स्वामिबद्रदामपीत्रस्य राष्ट्री महाक्षत्रपस्य भद्रमुखस्वामि
- बद्रासिंह्स्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य स्वामिबद्रसेनस्य इदं श(स)त्रं
- मानसस्योत्रस्य प्रनाथकपुत्रस्य खरपौत्रस्य भ्रातृिभः उत्थवितास्य(उपस्थापितमास्ति !)

TRANSLATION.

In the year 127 Bhådrapada, on the 7th day of the dark half, this 'Satra' of Råjå Mahåkshatrapa Bhadramukha Swâmin Rudrasena, the great-grandson of the son of Råjå Mahåkshatrapa Swâmin Chashṭana; the grandson of the son of Råjå Ksha (trapa) Swâmin Jayadâmâ, the grandson of Råjå Mahâ Kshatrapa . . . Rudra Dâmâ; (son of) Råjå Mahâ Kshatrapa Bhadramukha Swâmin Rudra. Of the sons of Supranâthaka of Mânasgotra, the grandson of Khara with brothers . . . was made.

v.

Stone Inscription of the time of King Rudrasena at Dvarka in Saurashtra.

Dated year 232 of Rudrasena.

The stone on which this inscription is to be seen was found on the bank of a tank at Mulavåsara, a village in the Gaekwâd's territory of Okhâmaṇḍala in Saŭråshṭra. It was taken down to Dvārikā and was there erected near the library. It measures 5' 3" × 1' 10" and contains four lines.

Besides a few names of the kings of the Sah dynasty it says of several water reservoirs being made by a son of Vajaka. Nothing is certain about the date given in it.

The language of the composition is Sanskrit, the character being that of the San period.

TRANSLITERATION.

- १ राहो महाधत्रस(स्य) सा(स्वा)मिरुद्रसेनस्य
- २ वर्षे २३२ वैशाखबहुलपंचम्यां
- ३ इमं " " वानिजकस्य पुत्रेण
- प्रति जिवितं दत्तं य(स्व) मित्रे(त्राय) हि जि(नि)जस(स्य)

TRANSLATION.

The son of Vânijaka saved the life of his friend by sacrificing his own life on the 5th day of the dark half of Vaïshâkha of the year 232 of Râja Mahâkshatrapa Swâmin Rudrasena.

GUPTA DYNASTY.

Rock Inscription of King Skandha Gupta at Junagadh, dated year 138 of the Gupta era.

This inscription is engraved on the face of the same rock on which the Asoka and Rudra Dâma Inscriptions are to be found at Junagadh in Saürashtra. The face of the rock looks to the south measuring $10^{\circ}3^{\circ}\times7^{\circ}$ and appears to have been engraved without being polished. There are in all 29 lines. The lower portion and some portion in the middle of the inscription have suffered much and the letters there are quite illegible.

It mentions that in the time of Skanda Gupta, the Governor of Saiirashtra was Parnadatta, whose son Chakrapalit caused to be built an embankment across the Sudarsana lake which had burst on account of heavy rains. The year 138 of the Gupta era would correspond with A.D. 457.

The language of the composition is Sanskrit, the character being of the Gupta period.

TRANSLITZBATION.

- सिद्धम् श्रियमभिमतभौग्यां नैककालोपैनीतां त्रिदशपतिसुखार्थं यो बलेराबद्दार कमलनिलयनायाः शाश्वतं भाम लक्ष्म्याः
- २ स जयति विजितार्तिविष्णुरयन्तिविष्णुः । तदनु जयति अधत् श्रीपरिश्विप्तवश्वाः स्वभुजजनितवीयौ राज-राजाविराजः नरपति
- ३ भुजगानां मिनदर्पोत्फणानां प्रतिकृतिगरडाज्ञानिर्विषश्चावकती । तृपतिगुणनिकेतः स्कंदगुप्तः पृथुश्रीः चतुरुद्-भिजरको स्फीतपर्थन्तदेशां
- अविमावनतारिर्थश्रकाराःमसंस्थां पितिर सुरसस्तित्वं प्राप्तपत्यात्मशक्त्या । अपि च जित्तमिव तेन प्रथय(वं!)ति
 यंशांसि यस्य रिपवोपि आमूलभग्नदर्पा नि(इ!)व वदने म्लेच्छदेशेषु ।
- ५ अभेण बुध्या निपुर्ण प्रधार्य ध्यात्वा च इत्त्नान् गुणदोधहेतून् व्यपेत्य सर्वात्मनुकेंद्रपुत्रांह्यध्मीः स्वयं यं वरयांचेकार । तिस्नित्नृपे शासिति नैय कश्चिद्धमीदपेतो मनुकः प्रवास्
- ६ आतों दरिद्रो व्यसनी कदयों दण्ड्यो न वा यो मृशपिडितः स्यात्। एवं स वित्वा पृथिवीं समन्नां भग्नात्र देपीन् द्विपतश्चकृत्वा सर्वेषु देशेषु विश्वाय गोप्तृन् सन्तिन्तवामास बहुमकारम् । स्यात्कोनुरूपो
- मातिमान्विनीतो मेधारमृतिभ्याननपेतभावः सत्याज्ञवीदार्यनयोपपन्नमाधुर्यदाक्षिण्ययशोन्वितश्च । भक्तोनुरक्तो
 नृविशेषयुक्तः सर्वोपधाभिश्च विशुद्धबुद्धिः आनुण्यभावोपगतांतरात्मा सर्वश्य होकस्य हिते प्रवृत्तः ।

- ८ न्यायार्जनेर्यस्य च कः समर्थः स्यादाजितस्याप्यथ रक्षणे च गोपायितस्यापि च बृद्धिहेतोर्बृद्धस्य पात्रप्रतिषा-दनाय । सर्वेषु मृत्येष्वापि सहतेषु यो मे प्रशिष्याजिखिलान् सुराष्ट्रान् आश्वातमेकः खलु पणदत्तो भरस्य तस्योद्धहने समर्थः ।
- एवं निनिश्चित्य नृपाधिपेन नैकानहोरात्रगणान् स्वमत्या यः संनियुक्तीर्थनया कथंचित् सम्यक्सुराष्ट्रावनि— पालनाय। नियुष्य देवा यद्यणं प्रतीच्या स्वस्था यथावन्मनसो बभूवः पूर्वेतरस्यां दिशि पणदत्तं नियुष्य राजा धृतिमास्तथाभृत् ।
- १० तस्यात्मनोद्धात्मनभावयुक्तो द्विधेय चात्मात्मनक्षेन नीतः संबोत्मनात्मेन च रक्षणीयो नित्यात्मवानात्मज—
 कान्तरूपः । रूपानुरूपैर्लेलितैविचित्रैर्नित्यप्रमो(दा)न्वितसर्वभावः प्रबुद्धपद्माकरपद्मवक्त्रो नृणां क्षरण्यः
 शरणागतानां ।
- ११ अभवज्ञुविचकपालितोसानिति नाम्ना प्रियतः प्रियो जनस्य स्वगुणैरनुपस्कृतैरुदात्तः पि(त)रं यक्ष विशे— षयांचकार । क्षमा प्रभुत्वं विनयो नयश्च शौर्यं विमा शौर्यमा(०वि १)क(त्य)नञ्च (धृतिः क्ष)मा दानमदोनता च दाक्षिण्यमानृण्यमशून्यता च । सौद्यमायंतरानग्रहश्च अविस्मयो वैरमुदीणेता च
- १२ इत्येवमेतितिदायेन यरिमज्ञियवासेन गुणा वसंति। त विद्यतेसौ सकलेपि लोके यत्रोपमा तस्य गुणैः क्रियेत स एव कार्य्स्येन गुणान्वितत्वात् वभूव नॄणामुपमानभूतः। इत्येवमेतानिषकानतीन्यान् गुणान् परीक्ष्य स्वयमेव पित्रा यरस्तियुक्तो नगरस्य रक्षां विद्योष्य(घ)पृष्योन्(वी)प्रचकार सम्यक्।
- श्वाश्रित्य वीर्थे स्वभुजद्वयस्य स्वस्थिव नान्यस्य नरस्य दर्पे नोद्वेजयामास च कविदेवमस्मिन्पुरे चैव शशास दुष्टाः(न्) । विखेममन्यजशाम यस्मिन् काले स लोकस्य च नागरेषु यो लालयामास(च) पीरवर्णान ' ' पुत्रान् स परीक्ष्य दोषान् । सर्ज्यसंचप्रकृतीर्थमृत पूर्वे स्मिताभाषणमानदानैः
- १४ निर्येत्रणान्योत्यग्रहप्रवेशैः संवद्धितप्रीतिग्रहोषचारैः। ब्रह्मण्यभावेन परेण युक्तः शक्तः शुचिदीनपरो यथावत् प्राप्यान् स काले विषयान् सिषेवे धर्मार्थयोश्चा(प्यावि)रोधनेन । जवेन नीतिवकः(०नान्योरितनीतानापिः?) पर्णेदचात्त्वन्यायवानत्र किमस्ति चित्रं मुक्ताकलापान्युजपश्चारिताचंद्रात्विमुणणं भविता कदाचित् ।
- १५ अथ अभेणाम्बुदकाल आगते निदाधकाले प्रविषद्य तीय(दः) ववर्ष तीयं बहुसंततं चिरं सुदर्शनं येन विभेद चात्वरात् । संवत्सराणामिकके शते तु त्रिशक्तिरन्यैरापि (पाह्नि)रेख रात्री दिने प्रोष्टपदस्य घष्ठेः गुप्तस्य काले गणनां विधाय ।
- १६ इमाश्रम रैनतकाद्विनिर्गता पलाशिनीयं सिकताविलासिनी समुद्रकान्ताश्चिरवन्थनोषिताऽद्रनुः (०धुवं) पाँत ताश्च यथोचितं यपुः । अवेश्य वर्षीतिमन्नं मदोद्रमं महोद्रघेरुर्वयता प्रियेण्सुना अनेकवीरांतन्न(०र)— पुष्पश्चोभितो
- नदीमयो इस्त इव प्रसारितः । विषीदमानाः खलु सर्वलोकाः कथं कथं कार्यमितिप्रवादिनः मिथो हिपूर्वा-पररात्रमुत्थिता विचिन्तया चापि बभूवुक्त्सुकाः । अपीह लोके सकले सुदर्शनं पुमा(०रा) हि दुर्दशनतां गतं सणात्
- १८ भनेन्नसा (०चा) म्योनिधितुस्यदर्शनं सुदर्शनं वर्णगतं स(०च) भूला । पितुः परां भक्तिमपि प्रदर्श्य धर्मे पुरीधाय सुमानुबन्धं राक्षो हिताथे नगरस्य चैव सैवस्तराणामधिके शते तु ।
- १९ तिंशक्तिरत्यैरपि सप्ताभक्ष प्र ' श्यचेत्र श्वाप्यनुशातमहाप्रभावः । आज्यप्रणामैवियुधान-थेण्ट्रा धनैद्विजातीनपि तर्पयित्वा धीरांस्तथाम्यच्ये यथार्द्दमानैः मृत्यांश्च पृष्यान् सुदृदश्च दानैः ।
- त्रेष्मस्य मासस्य तु पूर्वप(क्षे) • प्रथमेन्द्र सम्यक् मासद्वयेनादरवान् स भूत्वा धनस्य कृत्वा व्ययमप्रमेयं । आयामतो हस्तशर्तं समग्रं विस्तारतः धष्टिरथापि चाडो

 1. 4.

- २१ र(०उ)त्तेषकोन्यत्पुरुषानि(०तोयत्पुरुषार्छ)स ' ' स्तशतद्वयस्य वर्वात्र यत्नान्महता (नृदेचान्) ' ' सुसम्यग्विदितोपलेन ' सुजातिदुष्टात्प्रियतं तटाकं सुदर्शनं शाश्चतकल्पकालं
- २२ अपि च सुदृदसेतुप्रांतविन्यस्तयोभं रथचरणसमाह्नकींचहंसं सधूतं विमलसिलल • भृवित • (व)दर्कः शिश(प्र) • •
- २३ नगरमि च भूयाद्वृद्धिमत्पौरजुष्टं द्विजबहुशतगीतब्रह्मनिर्मष्टपापं शतमिप च समानामीति दुर्गिभक्ष • । (सु)दर्शनतटाकसंस्कारप्रंथरच(ना) समाप्ता ॥
- २४ इसारिदर्पप्रणुदः पृथिश्रेयः स्ववंशकेतोः सकलावनीपतेः (यशोर्थप्)ज्याद्मुतपुण्यस · · । द्वीपस्य गीप्ता महतां च नेता दण्डान्वितानां
- २५ द्विपतां दमाय तस्यात्मजेनात्मयुणान्वितेन गोविंदपादार्पितजीविते(न) । • विष्णोश्चपादकम्छे समयाप्य तत्र अर्थव्ययेन
- २६ महता महता च कालेनात्मप्रभावनतपौरजनेन तेन चक्रं विभावि रिपु ' ' विशे ' ' तस्य । स्वतंत्र-विधिकारणमानुषस्य
- २७ कारितमबकामाति चकभृतश्चकपालितेन ग्रहंबर्षशतेष्टत्रिशे गुप्तानां काल(तो व्यतीते) ' ' र्थ ' ' ' मुस्थितमिवोर्जयताचलस्य
- २८ कुर्वन् प्रभुत्वमिव भाति पुरस्य मूर्प्ति द ः ः अन्यश्च मुर्द्धनि सुंद ः ः ः ः
- २९ राब्हें विहंगमार्ग विश्वाबते.

TRANSLATION.

Glory! Vishnu, who snatched from Bali, for the happiness of Indra, that wealth (Sri) which is worthy of enjoyment by his beloved (devotees) and which was carried off on various occasions, who has conquered misery, who is the constant asylum (or light) of that Lakshmî whose residence is the lotus, and who is ever victorious: -may he be glorious! Next to him, may he (Skanda-Gupta) be victorious, whose breast is encircled with wealth and splendour, who obtained the fame of a hero by his own arm, the supreme king of kings, who, acting as Garuda does by his (Vishnu's) command, destroyed the poison-like power of the snake-like kings with their hoods in the form of pride and conceit. The abode of kingly qualities, he, the far-famed Skanda-Gupta of great wealth, who had already humbled his enemies, possessed himself on his father's attaining by the force of his merits the friendship of Devas, of the earth, which contains the gems of the four oceans and is skirted by beautiful countries. He is indeed victorious, whose enemies even in Micehha countries with their pride destroyed from the very root declare · · · his glory.* Whom, Lakshmî, (who) in her wisdom having carefully reflected and considered all the causes of good and bad qualities, and rejected, one after another the sons of kings, at last chose for her lord. Whilst this king was governing the earth no one amongst his subjects departed from the path of duty (Dharma), was miserable, poor, vicious, miserly,

The Sanskrit verse is very doubtful.

deserving of punishment, or suffering from pain. Having thus conquered all the the pride of his enemies and having established protecting officers in all the counworld and humbled tries, he began to think intently. What person is there who is at once competent, and far-seeing, modest and with faith, full of wisdom and memory; who is endowed with truth, straight-forwardness, generosity, moral worth, sweetness, talent and glory; who is greatly devoted and attached, manly; whose mind is devoid of every kind of deceit caused by the four upddhis (viz. Dharma, Artha Kâma and Mokash); whose heart is ever intent on the discharge of his obligations; who is devoted to the good of mankind; and who by righteous means is able to earn wealth, to preserve and increase it, and to spend it on proper objects? Who is there qualified best to govern all the districts of Suråshtra amongst all my servants? Yes, I know, surely only Parnadatta is competent to bear the burden. In this way this king of kings meditated for successive days and nights, and with firm resolve and earnest entreaty appointed (him) for the good government of the country of Surashtra. The king by appointing Parnadatta to the west felt secure, as the Devas obtained rest after appointing Varuna to the west. His son, full of filial duty, was, as if it were by independent Parnadatta, divided into a second half of his own self, who was brought up as his own self, who had always the knowledge of self, whose form was beautiful in itself, who was of manners as pleasant to all as his wonderfully beautiful form, whose face resembled one of the numerous expanded lotuses, and who afforded protection to those who sought his protection. He the beloved of the people, who was renowned in the world by the name of Chakrapâlita, excelled even his father by his naturally good qualities. Power tempered by mercy, humility, morality, bravery that boasts not, patience, forgiveness, charity cheerfulness, talent, gratefulness, activity, beauty, contempt of the mean, freedom from pride, courage, and generosity, these and many other qualities in an eminent degree resided in him without interruption. There is no one in this world to be compared to him in good qualities. He being endowed with all good qualities became worthy of example to all mankind. The father (Parnadatta), having recognized these and other greater qualities, himself appointed him (Chakrapalita), and he in his turn protected the city in a pre-eminently good manner. He availed himself of the bravery of his two arms, did not depend on others, nor did he cause distress to any one from pride, and punished the wicked in the town. The people placed no small confidence in him in time and he, studying the caracter of the citizens fondled them as if they were his children. He pleased (his) subjects, with cheerfulness, sweet conversation, civility, liberality, by the familiarity of social intercourse, by respect for their family usages. He devoted to Brahmanism, powerful, pure, charitable according to the rules, enjoyed such pleasures as he could without transgressing reli-

gion, and prosperity. What wonder that he from Parnadatta should be virtuous? Is warmth ever caused from the moon, which is cool as a collection of pearls and aquatic lotuses! Afterwards, when in the course of nature the rainy season arrived after the hot season, it rained copiously and continuously for a long time, by the force whereof the Sudarsana burst. When a century of years plus thirty (six?) passed, on the sixth day of Bhâdrapada, at night, counting from the era of Gupta, the Palâśini, and the Sikatâvilâsini rivers arising from the Raïvataka, wives of the ocean, being pent up for a long time, ran speedily towards their lord. The Urjayat seeing the endless deluge caused at the end of the rainy season, and desiring to serve the ocean extended his hands in the form of rivers adorned with many flowers. All the people, despairing and crying to one another what to do and how to do, awakened in the beginning or end of night, were overpowered with anxiety. The Sudarsana (good looking) lake in this world instantly became Durdarsana (ill-looking). Would the Sudarsana ever look as before and assume an appearance like that of the sea! he being greatly devoted to his father · · · · having put forward Dharma (religion) ever beneficial sequence to its observers . . . for the benefit of the king and of the city, in a century of years, plus thirty plus seven (having passed) · · · · Chaitra (month) · · · · and whose greatness is known · · · · · · · Having performed sacrifices to the gods with ghee (clarified butter) and having paid them obeisance, and having satisfied the Brahmanas with gold, and the people of the city by entertaining them with proper civility, and also servants and respectable friends with gifts On the first day of the first demi-lunation of the (first) month of the Grishma season (latter half of summer), in two months, he with great energy, and by expending immense wealth, constructed with great effort whose total length is 100 cubits, and breadth 68 cubits, height (7?) persons' (height) · · · · 200 cubits · · · · and with well-set stones made the lake Sudarsana · · · that it might last till the deluge. May the lake ornamented with the sight of a strong Setu, adorned by Chakravaka, Krauncha, Hamsa and Dhûta birds, ever moving in ripples (having) clear water · · · · as long as the sun and moon · · · · · be prosperous along with the city filled with inhabitants! May its sins be removed by hundreds of Brahmanas singing the Vedas · · · · century of years, also (may they be saved from) all kinds of evils, and from famine · · · · The description of the construction of the Sudarsana lake is here finished. The destroyer of the pride of haughty enemies, (possessed) of great fortune, a banner of his race, the lord of the whole earth, a maker of numerous spiritual gifts for the sake of fame, and (therefore) fit to be praised · · · · the protector of the Dwipa, the lord of the great, a suppressor of enemies, his

son endowed with his own qualities, who (son) has offered his soul to the feet of Govinda (Vishnu), by him and having been to the lotus-feet of Vishnu with a great expenditure of money and time, who by his prowess has had in submission the people of the city the holder of the discus . . . enemy who with independence of action and with some motive became a man. To this discus-holding Vishnu, a temple was constructed by Chakrapâlita; . . . and from the (Kâla) era of the Gupta . . . a century of years plus thirty-eight (having passed) . . . appears beautiful at the head of the town as if a lording over the Urjayatâchala . . . and on its top in the way to sky shines forth the (lake) called Sundara.

VALABHI DYNASTY.

т

Stone Inscription found at Bankodi, a village under the Jamnagar State.

The stone on which this inscription is engraved was found at the village of Bankodi in the Jamnagar district of Ravala about twenty miles north-east of Porbandar in Kathiavad. It is kept in the museum at Bhavnagar. The inscription is in three lines and measures $18'' \times 7''$, though all its sides and corners are chopped off.

It contains the name of king Guhasena, but no date is to be found as several of the letters are missing. It is, therefore, hard to say what it relates to.

The language is Sanskrit, the character being Valabhi.

TRANSLITERATION.

विष ख दाहेनलमहरगुह सेनरमहोन

म

(This inscription stone was found by the Patela of the village of Bankodi of the Kalyanapar Mahala in the Ravala district under Jamuagar, while sinking a well. But the stone is broken and nothing can be made out of it, except that it contains the name of Guhasena.)

II.

Copper-plate grant of King Dharasena II of Valabhi, found at Jhara, a village under Dhâri. Dated Valabhi Samvat 252.

These copper plates were found at the village of Jhara under Dhâri, a district of the Gâekwâd's territory in Kâthiâvâd.

It is about twelve miles south of Amareli, the principal place of the Gaekwad's territories in Kathiavad. They are with a Kathi of the place, who would not part

STONE INSCRIPTION FOUND AT BÁNKOÐI. A VILLAGE UNDER THE JAMNAGAR STATE.

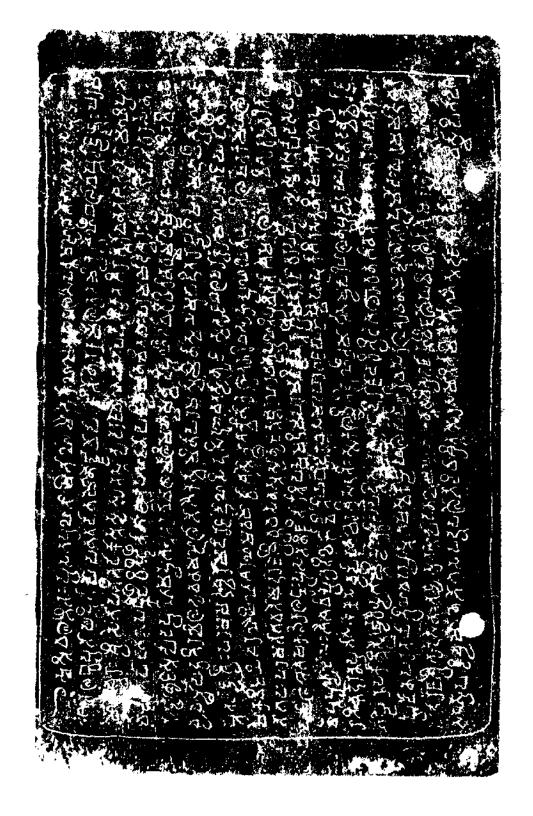
PLATE XXI





COPPER-PLATE GRANT OF KING DHARASENA II. OF VALABET, FOUND AT JHARA, A VILLAGE UNDER DEÅRI. (FIRST PLATE.) DATED VALABHI SANVAT 252.

PLATE XXII.



with them. The usual seal attached to such grants by the Valabhi Kings is also preserved. They measure $11\frac{1}{2}$ × 8° and contain sixteen and seventeen lines respectively written on one side only.

The grant mentions a village called Pethavata and some pieces of land near the village given to a Brahmachâri for certaîn spiritual benefits to himself and his parents. The date of the grant is Vallabhi Samvat 252 (A. D. 571-72.)

The language of the composition is Sanskrit prose, the character being Valabhi.

TRANSLITEBATION.

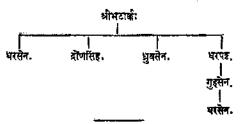
Plate I.

- 🔾 अस्विति वलभीतः प्रसभप्रणतामित्राणां मैत्रकाणामतुल्ववलसंपन्नमण्डलाभोगसंसकसंप्रहार
- २ शतलब्धप्रताए(:) प्रतापोपनतदानमानार्ज्वोपारिर्जतानुरक्तमौलभृतमित्रश्रेणीवलावाप्तराज्यश्रीः परम
- माहेश्वरः श्रीसेनापविभदार्कः स्तस्यसुतस्तत्पादरजोरुणावनतपवित्रीकृताद्यरादिशरोवनतश्चनुष्ठामणिप्रभा
- विच्छरितपादनखपङ्किदीशितिद्गिनागयक(कृ)पणजनोपजीव्यमानविभवः परममाहेश्वरः श्रीसेनापतिश्वरसेनः
- ५ तस्यानुजरतस्याद्यणामप्रशस्ततरविमलमौाक्षेमणिर्म्मत्वादिप्रणीतविधिविधानधर्माधर्माराज इव विहितविनय
- 👔 व्यवस्थापद्धतिराखिळमूबन्मण्डळाभोगैकस्वामिना परमस्वामिना स्वयमुपहितराज्याभिषेकमहाविश्राणनाज(भि)
- 🐞 पृतरायाश्रीः परममाहेश्वरो महाराजद्रोणसिंहः सिंह इव तस्यानुवः स्वमुजवरूपराऋगेण परगज्ञघटानीकाना
- 🏣 🖰 मैकॅबिजयी शरणैषिणां शरणसबबोदा शास्त्रार्थतत्त्वानां कल्पत्तरिवसुहस्प्रणयिनां यथामिलपितकर्मेकलोप
 - भौगदः परमभागवतो महाराजश्रीध्रुवसेनस्तस्यानुजस्तच्चरणारवन्द(विन्द)मणतिप्रविधौताशेषकस्मवः सुवि-शुद्धस्वचरितोदक
 - २० प्रक्षालितारोत्रकलिकलङ्कः प्रसमिनिष्जेतारातिपश्चमियतमाहिमा परमादित्यभक्त(ः) श्रीमहाराजधरषहरतस्य सुतस्तत्पादसपर्या
 - ११ वासपुण्योदयः वैशवात्प्रभृतिखद्वद्वितीयबाहुरेवसमदपरगजघटास्प्रोटनप्रकाशितसम्बनिकषः सम्प्रभावप्रणता
 - १२ रातिचृडारत्रप्रमासंसक्तस्यपादनखरिमसंहतिः सकलस्भृतिप्रणीतमार्गसम्मन्परिपालनप्रजाहृदयरंजनादः
 नौर्थराज
 - १३ शब्दोः रूपकांतिस्थैर्य्यभैर्यागम्भीर्य्यमुद्धिसंपद्भिः स्मरशशांकाद्विराजोदिधित्रदशगुरुधनेशानतिशयाँनः श्ररणाँ-गताभय
- १४ प्रदानपरतया तृणवदप्र(पा)स्तारोपस्वकार्व्यफल(ः)पादचारीव सकलभुवनमंडलाभागप्रमोद(ः) परममहिश्वसी
- १५ महाराजश्रीगुद्दसेनः तस्यसुतस्तत्पादनस्त्रमयुखसन्त(न्ता)न्यिसृतजान्द्वीजलौघविक्षालितारोषकस्मप्रःप्रणयिशतः
- १६ सहस्रोपजीन्यमानभोगसंपद्रपलोभादिवाश्रितस्तरसमाभिगामिकौर्गुणैस्सहज्ज्ञाक्तिशिक्षाविशेषविस्मापितांखिल

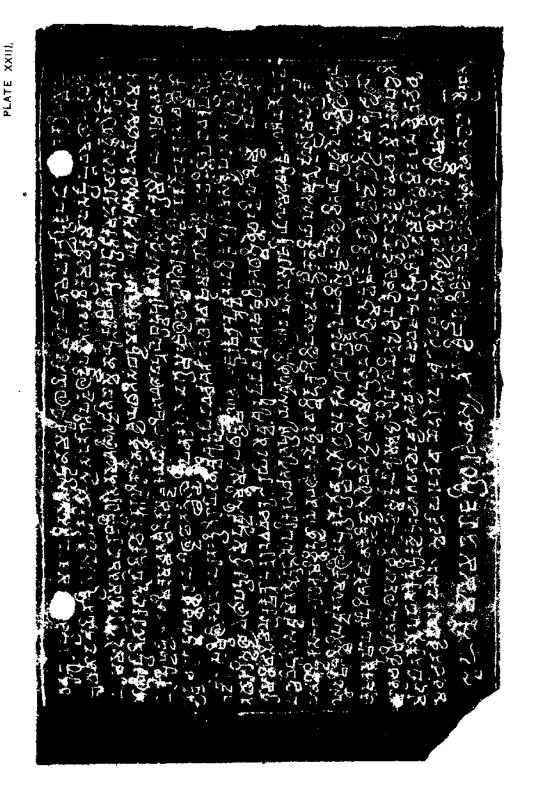
Plate II.

- अनुर्वरः प्रथमनरपतिसमिस्रष्टानामनुपालयिता धर्म्मदायानामपाकर्त्ता प्रजीपशातकारिणामुप-
- २ छवानां दर्शयिता श्रीसरस्वत्योरेकाधिवासस्य संहतारातिपक्षरूक्षमीपरिभोगदक्षाविश्वनः विश्वमोपसंप्राप्तविम-रूपाधिवश्री(:)

- परममाहेश्वरस्यामन्तमहाराजश्रीघरसेनःकुशली सर्व्यानेवस्वानायुक्तकविनियुक्तकद्वांगिकमहत्तरचाटभटधुवा-थिकारणिक
- श्रीतिकक प्रातिसारकदाण्डपाशिकचोरोद्धरणिकादीनन्यांश्चययाभिसंबध्यमानकान्समाञ्चापयत्यस्त वस्संविदितं
 यथा मया माता
- पित्रो
 अ पुण्याप्यायननिमित्तमात्मनश्चैहिकामुभ्यिकयथाभिलिवितकलावासये ब्रह्मपुरिनवासिभाग्गैवसगोत्रमैत्रायणरमनवकस
- ६ ब्रह्मचारिबाङ्गणच्छच्छराय विस्वलाभस्थस्यदीपनकपेथवटप्र(प्रा)मः विस्वलाभस्थलेष्(स्याउ) त्तरसीम्नि महाक्रमेदादुत्तरतः वस्मीकात्
- पूर्वतः अमिलिकवहादपरतः त्रिमिराषाटनैर्विशुद्धपादावर्त्तरातं तथात्रैवाष्टमे दिग्मागे वापी पञ्चिष्टकुं(श)-स्पादावर्तप्रतिसरा
- तथा झरिस्यच्यां वेलापद्रकप्रामपूर्वसीक्षि महापथाइक्षिणतः झन्झकक्षेत्रात्पूर्वतः दिषक्षक्सोमसन्व्यपरतः
 आमरकृत्य
- प्रामनिवासिखण्डकक्षेत्रादुत्तरत एवं चतुर्वि(मि)राघाटनैविशुद्धं पादावर्त्तरतं घष्ट्यधिकं तथास्मिनेवदक्षिण-सीम्नि पादावर्त्ताः
- पञ्चिव हु(श)तिः सर्व्वनेतत्सोद्रहं सोपरिकरं सर्वत(सर्वानु)भूतप्रत्ययं सर्व्वधन्यहिरण्यादेयं समस्तराजकीयाणा-महथ(स्त)प्रक्षेपणीयं सोत्यद्य-
- ११ मानविधिकं सदशापरार्थं भूमिन्छद्रन्यायेन बिलिचडवैश्वदेवाग्निहोत्रातथा(तिधि)पंचमहायश्विकमा(याधिक)-कियाणां समुस्यर्थणार्थमाचन्द्रार्क(को)
- १२ र्णविश्वतिरिथतिपर्व्वतसमकालीनं पुत्रपीत्रान्वयभोग्यमुदकसर्गेण ब्रह्मदेयं निस्द्रं वतोस्योचितया ब्रह्मदेयस्थित्या भ्युगर्ज(भुंचतः)
- १३ कृषत अ कर्षयत अ प्रदिशतो वा न कैश्विद्व्याक्षेपे धाँचतव्यमागामिभद्रनृपतिभिश्वासमद्भंशनैरनित्यान्यैश्वर्यान् व्यक्षिपं मानुष्यं सा-
- १४ मन्यिक भूमिदानफलमवगन्छद्भिरयमस्मद्योनुमन्तन्य ॥ परिपालियतन्यक्ष यञ्जेनमान्छिन्द्यादान्छिद्यमानं वा नुमोदेत सपक्षाभिः
- १५ महापातकैस्सोपपातकैश्च युक्तः स्यादुक्त(क्तं)च भगवता वेदच्यासेन व्यासेन विष्ठवर्षसङ्खाणि स्वर्गे मोदिति(तै) भूमिदः आण्छेत्ता चानु-
- १६ मन्ता च तान्येव नरके वसेत् स्वदत्तां परदत्तां वा थो हरेत वसुन्धरो गवां शतसहस्रस्य हंतुः प्राप्नौति किल्पियंइति
- १७ रेवहस्तो मम महरोजश्रीषरसेनस्य दूतकश्चिषिरः लिखितं संन्धिविग्रहाधिकृतस्कंदभटेनसं(१५२)ल-ल=
 चैत्रवन



(SECOND PLATE).





TRANSLATION.

Ом!

Hail, from Valabhi Mahârâja Śrî Dharasena, who has his sins washed off by the Ganges in the form of rays issuing from the nails of his father's feet, who is possessed of grandeur and wealth supporting hundreds of thousands of friends, who is a fit resting place for virtues which of themselves came to him being enticed by his beauty, who has astonished all the archers by his natural ability and exceptional eleverness in the art, who continues the religious grants made by his predecessors, who wards off the calamities afflicting his people, who is the common abode of Lakshmî and Sarasvati, who is possessed of a valour skilful in enjoying the Lakshmi (wealth) of his numerous foes, who has well acquired the pure royal fortune (Râjya Lakshmî) by his bravery, and who is a great devotee of Sankara; ——the son of Parama Maheshvara Maharaja Sri Guhasena, who had acquired spiritual merits by worshipping the feet of his father, who had even from his early age, his sword his only companion, shown marks of excessive valour by splitting open the temples of mad elephants belonging to his enemies, the cluster of rays from the nails of whose left foot was rejixed with the lustre of the jewels in the crowns of enemies forced to bow to his power, who well deserved the name raja for his pleasing the hearts of his subjects by following well the ways prescribed in all the Smritis, who in beauty, splendour, stability, deepness, knowledge, and wealth surpassed Kamadeva, Chandra, the Himalaya, the ocean, Bribaspati, and Kubera respectively, who was ready to give promises of safety to those who sought his protection, and who therefore gave away everything belonging to himself like a straw, who pleased the good hearts of the learned by paying more wealth than they desired as recompense for their work, who was like the joy of the whole world walking on its legs, and who was a great devotee of Sankara ;---the son of Srî Maharaja Dharapatta, who had quite washed off all his sins by bowing before (his) lotus-like feet, who had washed away all evil influences brought in the train of Kali with the water of his pure conduct, whose glory was proclaimed to all by his forcibly subduing his enemics, and who was a great devotee of Sûrya; --- younger brother of Mahârâja Srî Dhruvasena, who was the sole conqueror of the herds of numerous elephants of his enemies by the heroic strength of his single arm, who was shelter to those who sought it from him, who was versed in religious principles, who was kalpa taru to relatives and friends fulfilling all their desires, and who was a great devotee of Bhagavân; ----younger brother of the lion-like Mahârâja Srî Dronasimha, whose crest jewel was greatly purified by his bowing at his (Dharasena's) feet, whose religion was to observe all the rules laid down by Manu, &c., who was like Dharma incarnate, who had prescribed the way of politeness and duty, who had been crowned by the great sovereign himself, the L 5.

lord of the whole of the earth, whose royal fortune was sauctified by large spiritual gifts and who was a great devotee of Sankara; --- the son of Sri Senapati Dharasena whose head bent before him had become red with the dust of his fect, the brilliancy of the nails of whose feet was enhanced by the brilliancy of the jewels in the crowns of (his) focs when bowing (their) heads, (at his feet), whose splendour made the life of the poor, the helpless and the miserable worth living and who was a great devotee of Sankara; ---- the son of Srî Senapati Bhattarka who had acquired glory by completely subduing with the help of large and innumerable forces of his friends all his enemics forced to bow down, who was devoted to the pleasure of mildness, respect and benevolence acquired by his prowess, who had gained royal for tune by the strength of hereditary servants, focs and friends alike and who was a great devotee of Sankara; --- proclaims to his servants, subjects, such as Drangikas (?), great men, the chiefs of knaves, those who hold permanent offices, those who collect transit duties, commanders of armies, judicial officers, jailors and others, who are in any way concerned in this matter and who are hereby informed that for the merits of my mother and father as well as for my acquiring wished for fruits in this as well as in another world, Brahmana Chhachhara an inhabitant of Brahmapûra of Bhárgava Gotra and Maïtrayana Ramanavakasa Brahmachâri has been granted the village of Pethavaţa which is under Bilvakhâbhasthali and which adorns it. The land is in the northern limits (sîma) of Bilvakhâbhasthali. It is 100 pådåvartas north of the place. called Bhattarkabheda, east of the place called Valmika and west of the stream called Amareli; thus its three boundaries are clear. Also a Vapi at the same place being 25 pådåvartas distant in a corner (is granted). (He is also granted) 160 pådåvartas (of land) within the castern limits of the village of Velapadraka under Jharasthali. It is south of the great road, east of the field of Jhajjhåka, west of the place where the boundary of Dadhikupaka joins with (some) other boundary and north of the field of the village of Bhrammarkulya; thus having its four boundaries clear. In the south limits (sima) of the same place (he is granted) 24 pådåvartas. These (lands) have been granted in (charity) the name of God with due Sankalpa, limited as above on all sides with the fallow land around, with all the taxes levied on them, all the produce growing naturally therein or which may be brought there by the wind, the duties levied in gold and grain, all the necessary rights of forced labour, and with an order that the state officials are not in all this to interfere, and the right of disposing of ten sorts of crimes according to the Bhûmichhidra Nyâya (that is, he who takes the land, takes it with all the holes, i.e. appendices good or bad in it) for the purpose of making the five great Yainas viz. · · · offering sacrifices (balidana), oblations (homa), performing Vaiśvadeva Agnihotra, and (atithi) the rights of hospitality, till the moon,

the sun, the ocean, the earth and mountains endure and are to be enjoyed by his heirs and successors. As this is a proper religious grant he may cultivate the land himself or may cause it to be cultivated or may make a grant of it to any other person; and none of the future meritorious kings and our descendants should come in their way; because greatness is inconstant, human life is unstable, and the fruit of the grant of land is common to us all. Those who know this will respect and continue this grant. Those who will resume the land or will allow it to be resumed will be guilty of committing the five great sins along with other minor ones. It is said by Bhagavân Veda Vyâsa "he who makes a gift of land lives sixty-thousand years in Svarga while he who resumes it or allows it to be resumed lives the same number of years in Naraka. He, who resumes land granted by himself or any one clse, is guilty of committing the sin of killing hundred thousand cows." Thus this is in our own hand says Mahârâja Dharasena. The Suchaka is Chirbira and this is written by Skandabhaṇa, an officer in charge of peace and war, Samvat 252, Chaitra Vadi 5.

III.

Copper-plate grant of King Dharasena II. of Valubhi found at Kutapur, a village near Mahuva under Bhavnagar. Dated Valubhi Samvat 252.

The village of Katapur where these plates were found is about two miles east of the small town of Mahuvâ, a sea-port on the southern coast of Kâthiâ-vâd, under Bhâvnagar. They are in the museum at Bhâvnagar with the usual seal of the Valabhi kings attached to it, and the rings passed through both the plates to keep them together. They are in a good state of preservation, though a few letters in the second plate have become illegible on account of rust; but this in no way affects its deciphering. They measure $10'' \times 7''$ and contain sixteen and seventeen lines, respectively, written on one side only.

The grant is issued to certain Brahmacharis named Vishakha and Bappa giving them a field as a consideration for the performance of certain Yajnas, within the eastern boundary of the village of Damaripataka. It is dated Valabhi Samvat 252 (A. D. 571-72).

It is written in Sanskrit prose, the character being Valabhi.

Transliteration.

PLATE I. .

स्विस्त विजयस्कंशावारात् भद्रपत्तनकवासकात् प्रसभप्रणतामित्राणां भैत्रकाणामत्त्रस्वस्वसंपन्नमण्डलामोगर्सस

- २ कप्रहारशतल•धप्रतापः प्रतापोपनतदानमानार्ज्जवोपार्जितानुरागानुरक्तमौलभृता(त्या)मित्रमित्रश्रेणीयलावा सराज्यश्री(ः) ॥
- परममाहेश्वरःश्रीतेनापातिभटाकैः(कीस्त)तस्यसुतःत(तस्त)त्पादरजोष्णावनतकृतशिरा(ः) शिरोवनतशत्रुत्
 डामणिप्रमाविच्छुरितपाद
- नखपंक्तिदीधितिदीनानाथकृपणजनो(प)जीव्यमानविभवः परममाहेश्वरः श्रीसेनापतिधरसेनःत(नस्त)स्यानुजः त(जस्त)त्पादाभिप्रणाम
- ५ प्रशस्ततरावेमलमीलिन्मिन्वादिप्रणि(णी)ताविधिविधानधर्मा धर्मराज ईव विहितविनयव्यवस्थापद्धाते रखिलमुक्नमण्डलाभोगे
- कस्त्रामिना परमस्वामिना स्वयमुगहितराज्याभिक्षे(पे)को महाविश्राणनावपूतराज(ज्य)श्रीः परमागहेरो(पर-ममाहेश्वरो)महाराजश्रीद्रोणसिंहः सिंह
- इव तस्यानुजः स्वभुजवळपराक्रमेण परगजस्यानीकानामेकविज्ञवी शरणैशि(पि)णां शरणमनबोद्धा शास्त्राः
 थैतत्त्वानां कल्पत
- ८ करिवसुद्धत्मणधिनां वथाभिरुपितकामफलोपभोगदः परमभागवतः महाराजश्रीध्रुवसेनः त(स्त)स्यानुजःत-(स्त)च(च)रणाराविन्दप्रणतिप्रावि
- भोताशेषकरमपः सुविशुद्धस्वचिरतोदकक्षालितयकलकल(कलि)कलंकः प्रसमिनिर्वेतारातिपक्षप्राथितमिह-मा परमादित्यभक्तः
- श्रीमहाराजद्व(घ)रपटःत(स्त)स्थात्मजःत(स्त)त्यादसपय्यावातपुण्योदयःशैशवात्प्रमृति सङ्गद्वितीयबाहुरेव समदपरगज्यटा
- ११ स्कोटनप्रकाशितसन्वनिकषःत(स्त)त्प्रभावप्रणतारातिचृडारत्नप्रभासंसक्तसस्त्व्य(व्य)पादनस्रराहेमसंहितः सकलस्मृतिप्रणीत
- १२ मार्ग्सम्यक्परिपालनप्रजाहृदयरंजनादन्वर्त्थराजद्यब्दो रूपकान्तिर्धेर्य्यगाम्भीर्य्युविद्यंपिद्रः
- १३ स्मरश्रशाङ्गाद्वराजोदिधित्रिदशगुरुधनेशानितिशयानः शरणागताभयप्रदानपरतयानुणवदपास्ताशेषस्वकाय्ये
- १४ फळ प्रात्थेनाधिकाथप्रदानानन्दितविद्वत्सुहृदयः पादचारीव सकलभुवनमण्डलाभोगप्रनोदः परममाहेश्वरः श्रीमहाराज
- १५ गुहस्रोनःत(स्त)स्यसुतः तत्पादनलमयूलसंताननिश्ट(स्मृ)तज्ञान्हवीजलौषविश्वालितारोषकल्मषः प्रणयि-शतसहस्रोपजीव्यमानमोगसंप
- १६ द्रुपलोभादिवाश्रितः सरसमाभिनामिकैर्गुण्(ः)सहज्ञशक्तिशिक्षाविदेवविस्मापिताखिलश्यनुर्धरः॥

PLATE II.

- १ प्रयमनरपतिसमभिसृष्टानामन्पालयिता धम्म्येदायानामपाकर्त्ता प्रजोपघातकारिणा
- २ मुपष्ठवानां दर्शयिता श्रीसरस्वत्योरेकाधिवासस्य संहतारातिपक्षलक्ष्मीपरिभागदसविक्रमः॥
- विक्रमोपसंप्रातिवमलपाथि(व)श्रो(ः)परममाहेश्वरः श्रीमहाराजधरसेन
 अतुरक्षि सर्वानेवायुक्तिकि(क)विनि
 युक्तक
- ४ द्राङ्क्तिभहत्तरचाटभ(ट)धुवाधिकरणिकदण्डपाधिकराजस्य(स्या)नीयकुमारामात्त्रादीनन्यांश्च ययासंवध्यमा-नकान्

- समाधापयत्यस्त व(ः) संविदितं यथा मया मातापित्रोः पुण्याप्यायनायात्मनश्चैहिकामुष्मिकयथाभिलपितफ-लावासये
- ६ वहपछिकस्थल्यां डामरिपाटकग्रामे पूर्व्वेसीम्नि क्षेत्रपादावर्त्तप्रष्टि(:) साङ्गा सपरिकरा सवातमृत
- ७ घाण्य(न्य) हिरण्यादेवा सोत्पद्यमानविधिकासमस्तराजकीयानामहस्तप्रक्षेपणीया भूमिन्छद्रन्यायेन छन्दोग
- ८ सब्रह्मचारिकश्यपसगोत्रब्राह्मणविद्यास्वयपाभ्यांवित्रचर्वे बैदेवाग्निहात्रातिरिपञ्चमहायाहिकानांक्रियाणां
- 💲 समुन्सर्प्णार्थमाचन्द्राकार्णवसरित्धतिस्थिरित(ति)समकालीनं पुत्रपौत्रात्वयमाग्याउदकसर्गेण ब्रह्मदेवे
- निस्धायतोस्योचितया ब्रह्मदेयस्थित्वा भुंजतःकुत्रतःकर्षयतो ब्या(वा) न कैश्विरप्रतिवेधे वर्तितव्य
- ११ मागामिभद्रनृपतिभिश्वारमद्वंद्राजैरानित्यात्येश्वर्याण्यस्थिरं मानुष्यं सामान्यं च भूमिदानफलमवगन्छद्भिः(श्र)
- **१२** अयमस्मदा(हा)योनुमन्तन्य(:)परिपार्टायतःयश्चयश्चेनमाञ्छिद्यादाञ्छिद्यमानंवानुमोदेत सपञ्चिमम्मेहापा-तकैः सोपपात
- १३ कै(:) संयुक्तः स्यादित्युक्तच भगवता वेदव्यासेन व्यासेन पिष्टवर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्टतिभूमिदः आच्छेत्ता चानुमन्ता च
- १४ तान्येव नरकेवसेत् । विष्याटवीष्वतीयासु शुष्ककोटरवासिनः कृष्णाहयोहि जायन्ते भूभिदायहरानराः पू-र्व्यदत्तां दिजा
- १५ तिन्यो बत्नाद्रश्च युधिष्ठिर महीं महिमतां श्रेष्ट दानाः श्लेयोनुपालनं बहुमिर्व्वसुधा भुक्ता राजिमः सग-राहिभिः यस्य यस्य
- १६ यदा भूमिः तस्यतस्य तदा फलायानीहदारिद्रभयाचरिद्रभेगानि धर्म्भायतनीकृतानि निम्मोस्यवानत प्रतिमानि
- १७ तानि को नाम साधुः पुनराददीत इति ॥ लिखितं संन्धिनिप्रहाधिकृतं स्कन्दमटेन ॥ सं२५२(ऌ-ऌ≕)वैद्याख बहु ५
- १८ खहस्तोमम महाराजश्री धरसेनस्य ॥ ह.चिर्वियरः ।

TRANSLATION.

From the conquering army encamped in Bhadrapattanaka Mahârâja Dharasena, who has washed off all his sins with the waters of the Ganges flowing in the form of the spreading rays of the nails of his father's feet, who is beautifully surrounded by all good qualities being, as it were, attracted to him by his beauty, the splendour of whose wealth is a constant sort of comfort to his numerous friends, who has astonished all practised in the use of the bow by his power of natural strength and peculiar tact, who maintains good religious gifts made by former kings, who wards off calamities which injure his subjects, who exhibits an union of wealth and learning in himself, whose bravery is clever in enjoying the wealth of his focs, to whom royalty has descended in regular line, and who is a great devotee of Sankara;—the son of Mahârâjah Srî Guhasena, who had acquired spiritual merits by worshipping the feet of his father, who had even from his early age, his sword his only companion, shown marks of excessive valour by splitting open the temples of mad elephants

belonging to his enemics, the cluster of rays from the nails of whose left foot was mixed with the lustre of the jewels in the crowns of enemies forced to bow to his power, who well deserved the name raja for his pleasing the hearts of his subjects by following well the ways prescribed in all the Smritis, who in beauty, splendour, stability, deepness, knowledge, and wealth, surpassed Kâmadeva, Chandra, the Himâlaya, the ocean, Brihaspati, and Kubera respectively, who was ready to give promises of safety to those who sought his protection, and who therefore gave away everything belonging to himself like a straw, who pleased the good hearts of the learned by paying more wealth than they desired as recompense for their work, who was like the joy of the whole world walking on its legs, and who was a great devotee of Sankara; —the son of Sri Mahârâjah Dharapatta, who had quite washed off all his sins by bowing before (his) lotus-like feet, who had washed away all evil influences brought in the train of Kali with the water of his pure conduct, whose glory was proclaimed to all by his forcibly subduing his enemies and who was a great devotee of Sûrya; ---- younger brother of Maharajah Sri Dhruvasena, who was the sole conqueror of the herds of numerous elephants of his enemies by the heroic strength of his single arm, who was shelter to those who sought it from him, who was versed in religious principles, who was Kalpataru to relatives and friends fulfilling all their desires, and who was a great devotee of Bhagavân; younger brother of the lion-like Mahârâjah Srî :Drogasimha, whose crest jewel was greatly purified by his bowing at his brother's feet, whose religion was to observe all the rules laid down by Manu, &c., who was like Dharma incarnate, who had prescribed the way of politeness and duty, who had been crowned by the great sovereign himself, the lord of the whole of the earth, whose royal fortune was sanctified by large spiritual gifts, and who was a great devotce of Sankara; ——the son of Srî Senâpati Dharasena, whose head bent before his father had become red with the dust of his feet, the brilliancy of the nails of whose feet was enhanced by the brilliancy of the jewels in the crowns of (his) foes when bowing (their) heads, whose splendour made the life of the poor, the helpless and the miserable worth living, and who was a great devotee of Sankara; —the son of Sri Senapati Bhattarka, who had acquired glory by completely subduing with the help of large and innumerable forces of his friends all his enemies forced to bow down, who was devoted to the pleasure of mildness, respect and benevolence acquired by his prowess, who had gained royal fortune by the strength of hereditary servants, foes and friends alike, and who was a great devotee of Sankara; —proclaims to all his subjects, servants, drangikas (?) elders, chiefmen of cheats, permanent office-holders, justices, ministers, princes and others residing in this kingdom and others, as also those whom it may concern to know that he has given as gift to Brahmacharis Visakha and Bappa, Brahmanas

of the Kasyapa gotra, with the necessary Sankalpa----for the spiritual welfare of his parents and for the acquisition of his own desired ends in this world and the next, sixty (60) pâdávartas of field land on the eastern boundary of the village of Dâmaripâţaka, situated in Vahapalika sthali with its surroundings and accompaniments, with the grains produced by nature or brought by wind and the (right of) taking gold, with the revenues of the rights of forced labour, in order that they may both learning the Samaveda together perform the five sacred Yajnas, (viz.) Balidâna, Charâhoma, Vaiśvadeva, Agrehotra, and Atithî. This to be enjoyed by their descendants till the moon, the sun, the ocean, the the river, and the earth endure. No one should obstruct them in its enjoyment or cultivation as a charitable gift. Future kings of his line knowing that greatness is fickle and human life is unstable and also knowing that the merits of this gift belong to them in common with him should respect and protect this his grant. Whoever resumes this gift or allows it to be resumed will be guilty of committing the five great sins along with other minor sins. It is said by Bhagavân Veda Vyâsa "he who makes a gift of land lives sixty thousand years in Svarga, while he who resumes it or allows it to be resumed lives the same number of years in Naraka. The resumers of land become black serpents residing in dry caves in the water-less land of the Vindhyâchala. O Yudhisthara! the best of the lords of the earth! protect the lands given to Brahmanas in former times. It is more meritorious to protect than to give. Many kings such as Sagara, &c., have enjoyed the earth, (but) who is the lord for the time being enjoys its fruits. When kings have granted any money for religious purposes that (money) is like refuse and things vomitted. What good man would resume it through fear of poverty,"? This is written by Skandhabhatta, the negotiator of peace and war. 5th day of Vaisaka Krishna paksha of Samvat 252 (Valabhi). This is the signature of Mahârâja Srî Dharasena himself. The messenger is Chirbira.

IV.

Copper-plate grant of King Dhruvasena also called Bâlâditya of Valabhi found at Botâd, under Bhâvnagar. Dated Valabhi Samvat 310.

These plates were found at Botad, a small town under Bhavnagar in Kathia-vad, and the principal place of a district of the same name. It is about fifty-five miles to the north of Bhavnagar and is a station on the Bhavnagar-Gondal Railway line. The usual seal was found detached from it, though the holes through which the rings passed are there. Rust has damaged them a great deal, they being eaten through in several places. The plates themselves are

kept in the museum at Bhâvnagar. Each of the plates measures 12" \times 9", and contains twenty-four and twenty-one lines respectively.

The grant was issued to a Brâhmana or an Aryan Sâdhû giving him the village of Bhasanta, for supplying the Sâdhûs living in the Vihâra built by Gohaka and in the mandiras made by Princess Dudda at Valabhipur with food, clothes, beddings, vessels, medicines, &c., free of charge. It is dated Valabhi Samvat 310 (A. D. 629).

The language of the composition is Sanskrit prose, the character being Valabhi.

TRANSLITERATION.

PLATE I.

- 🔾 स्वरित बळमीतः प्रसभप्रणतामित्राणां मैत्रकाणामतुळवळसंपन्नमण्डलामोगसंसक्तप्रहारशतळब्धप्रता
- २ पात्प्रतापोपनतदानमानार्ज्वोपार्ज्जितानुरागादनुरक्तमौलभृत(त्य)श्रेणीयलावातराज्यश्रियः परमाद्देश्वरश्रीभ-द्याकोदन्यव
- विकास प्राप्त विकास के स्वास्त्र के स्वा
- मकाशितसस्विनकपस्तत्प्रभावप्रणतारातिच्डारत्नप्रमासंसक्तपादनसरिमसहितस्सकलस्मृतिप्रणीतमार्ग्यस्य -नपरिप(ा)
- र लनप्रजाहृदयरञ्जना(दन्व)ःथराजग्रन्दो रूपका(न्ति)स्थैर्य्यगाम्भीस्थेगुद्धिसंपन्तिः स्मरशयाङ्काद्रिराजोदिधिनि
 दशगुरुभनेशानतिशयानकार
- णागताभवप्रदानपरतया त्रि(तृ)णवदपास्ताशेषस्वकार्य्यफ्रस्ठ(ः) प्रार्त्यनाधिकार्थप्रदानानन्दितविद्वत्सुद्धस्प्र- ।
 णयिद्वदयः पादचारी
- ७ व सकलमुबनमण्डलाभोगप्रमोदः परममाहेश्वरः श्रीगुहसेनस्तस्य सुतस्तत्थादनखमयूखसंतानावे(नान्निः) सृतजान्हवीजलीय
- ८ प्रक्षालितारोषकरमभः प्रणयिशतसहस्रोपजीन्यमानसंपद्र्पलोभादिवाश्रितस्सरभसमागामिकैगुँगैस्सहजशक्तिश्च
- ९ क्षाविशेषविस्मापिताखिलधनुर्द्धरः प्रथमनरपतिसमितसृष्टानामनुपालयिता धर्मदायानामपाकर्ता प्रजोप
- १० भातकारिणामुपप्रवानां दर्शयता श्रीसरस्वत्योरेकाभिवासस्य सँहतारातिपञ्चलक्ष्मीपारेभोगदक्षविक्रमोविक्रमोपसं
- ११ [मा]प्तविमलप(पा)ित्यवश्री(ः) परममाद्वेश्वरः श्रीधरसेनस्तस्य मुतस्तत्पादानुष्यातस्सकलजगदानन्दनास्यद्भुतगुणसमुदयस्थ
- १२ [िग]तसमग्रदिकाण्डलस्तमरशतिवशदतो(शो)मासनाथमण्डलाग्रगुतिमासुरांसिपीटो व्यूटगुरमनोरथमहा-भारः
- स्विवचापरापरविभागाधिनमविमलमितरापि सर्व्वतस्सुभाषितलवेनापिसुस्रोपपादनीयपरितोपस्समग्रले।
- १४ गाम्भीय्यंहृदयोपि सुचरितातिशयसुव्यक्तपरमकस्याणस्यमानः खिलीभूतकृत्य(त)युगनृपतिपथविशोधनाधिग-तोदमकीर्त्त

ED BÁLÁDITYA. OF VALABHI FOUND AT BOTAD, COPPER-PHATE GRANT OF KING DHRUVASENA ALSO CA

(FIRST PLATE.) MVAT 310. UNDER BHAVNACAR. DATED VALABHI





- १५ व(व)म्मानुषरोषोज्ज्वलतारे(री)कृतात्र्यसुखसंपदुपसेवानिरूदधर्मादित्यद्वितीयनामा परममाहेश्वरः श्रीशी-लादित्यस्तस्या
- १६ नुजस्तत्पादानुष्यातः स्वयमुपेन्द्रगुरुणेव गुरुणात्यादरवतः समभिलघणीयामपि राजलक्ष्मीं स्कन्धासक्तां प-रमभद्र इवधू
- १७ र्य्यस्तदाज्ञा[सं]पादनैकरसतयैवोद्वहन्खेदसुखरतिम्यामनायासितसत्त्वसंपाचिः प्रभावसंपद्वशीकृततृत्रपतिशताशिरो
- १८ रत्नच्छायोपगृदपादपीठोपि परावज्ञाभिमानरसानालिङ्गितमनोत्रृत्तिः प्रणतिमेकां परित्यज्य प्रख्यातपौरुषाभि [मानैर]
- १९ प्यक्तिमि(रातिमि)रनासादितप्रतिक्रियोपायःकृतिनिखिलभुवनामोदिवमलगुणसँहति(ः) प्रसम[विध]दितसक-তঙ্গত(क्रिलि)विलसितगति(ः) नी[च]
- २० जनाधिरोहिभिरशेषैद्वियनामृष्टाल्पुन्नतहृदयः प्रख्यातपौद्यास्त्रकौशलातिशय(गुण)गणतिथ(तीर्थ)विपक्षक्षि-तिपातिलक्ष्मीस्वयंत्राह[प्र]
- २१ काशितप्रवीरपुरुषप्रथमसंख्याधिगमः परममाहेश्वरः श्रीखरप्रहस्तस्य। तनयस्तत्पादानुध्यातः सकलविद्याधि-गम[विहित]
- २२ निषिललेबिङ्बनमनःपरितोषातिशयस्यस्वसंपदा त्यागीदार्योण च विगतानुसन्धानाशम(समां)हिताराति-पक्षमनोरधाक्षभङ्
- स्तम्यगुपलक्षितानेकशास्त्रकलालोकचरितगढ्ढरविभागोपि परमभद्रप्रकृतिरप्यकृति[मप्रअ]
- १४ विनयशोभाविभृषण: समरशतजवपता[काहरणप्रत्यलो(यो)दप्रवाहुनिध्वंसित]

PLATE II.

- 🐮 निख्लिजप्रतिपक्षसपद्धीदयः स्वधनुःप्रभावपरिभृतास्त्रकौशलाभिमानसकलन्नपतिमण्डला
- २ भिनन्दितशासनः परममाहेश्वरः श्रीधरसेनस्तस्यानुगस्तत्पादानुध्यातः सच्चरितातिशयित
- स्वकलप्[व्वनरपतिर]तिदुस्लाधा(ध्या)नामपि प्रसाध(यि)ता विस(ष)याणां मृतिमानिव पुरुषकारः परिवदगुणानु
- ४ रागिनभैर[चित्तव]ितम्भैनुरिव स्वयमभ्युपपन्नः प्रकृतिभिर(धि)गतकलाकलापः कान्तिमान्निर्वृतिहेतुरकलङ्क(ः) कुमुद
- ५ नायः प्राज्यप्रतापस्थगितदिगन्तरालप्रध्वंसितध्यान्तराशिस्तततोदितस्सावेता प्रकृतिस्यः परप्रत्ययमर्थवन्त
- **६ म**तिबहुतियप्रयोजनानुबन्धमागमयरिपूर्णं विद्धानस्सन्धिविग्रह्तमासनिश्चयनिपुणः स्थानेनुरूपमादेशं
- दददुणवृद्धिविधानजनितसंस्कारस्साधूनां राज्यसालातुरीयतन्त्रयोदभयोरापि निष्णातप्रकृष्टविक्रमोपि क
- ८ रेणामृदुद्धदयः श्रुतवानप्यगन्धित(ः) कान्तोपि प्रश्नमी स्थिरसोद्धदय्योभि(सौहादोपि) निरासिता दोष(व)तः मुद्रयसमयस
- ९ मुपजनितजनतानुरागपरिपिहितभुवनसमारियतप्रयितवाङादित्यद्वितीयनामा परममाहेश्वरः श्रीघृवसे
- २० न(ः) कुरालीसवीनेवयथासम्बध्यमानक(मानकान्)समाज्ञापयत्मस्तु वस्संविदितं यथा मया मातापित्रोः पुण्याप्यायनाय
- ११ वलमीस्वतलसभिविष्टराज्ञीयुङ्काकारितविद्यारमण्डलांतर्गतगोहककारितविद्यारानिवास्यार्थ्यभिक्षुसङ्घय चीवरापै-ण्डपातश [य]
- नासनग्लानमलयभैषच्यमतिस्काराय बुद्धानां च भगवतां पूजाकामगन्यभूषपुष्पदीपतैलाद्यस्य विद्यार L 6.

- १३ [स्य] खण्डस्पुटितप्रतिसंस्काराय पादमूलप्रजीवनाय सुराष्ट्रेषु कालापथके मसन्तप्रामः सोद्रङ्गस्स
- १४ परिकरः सभूतवातप्रत्ययस्सधान्यहिरण्यादेयस्सदशापराधस्सोत्पद्यमानविष्टिकः सर्वराषकीयानामहस्तप्रधे पणीयः
- १५ पूर्वदत्तदेवब्रहादेयरहितः आचन्द्रार्काण्णेवश्वत(श्विति)सरि(त्)पर्वतसमकालीनः आर्थिभिश्रुसङ्घपरिभोग्यं उद-कातिस(गों)
- १६ ण बसदाय: प्रसृष्टो यतोस्योचितया देवाप्राद्यापिश्यत्या मुञ्जतः कृषतः कर्षयतः प्रदिशतो वा न कैश्चिद्वयासेधे
- १७ विज्ञतन्यमागामिभद्रन्यतिभिरसमद्वश्जैरन्येद्धं अनित्यान्येश्वर्याण्यस्थिरं मानुष्यं सामान्यं च भूमिदानफलम्य
- १८ गञ्जिद्धरयमस्मद्वायोनमन्तव्यः परिपालयितव्यक्षेत्यक्तं बहुमिर्वसभा मक्ता राजिमस्सगरादिभिः यस्य यस्य
- १९ यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं यानीह दारियभयान्नरेन्द्रैर्भनानि धर्म्मायतनीकृतानि निर्धान्तमास्य-प्रतिमानि
- तानि को नाम साधुः पुनराददीत षष्टिवर्षसहस्राणि स्वग्गें तिष्ठति भूमिदः आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वस्थे(से)त्
- २१ दूतकोत्र सामन्तशीलादित्यः ॥ लिखितमिदं सन्धिवग्रहाधिकृतदिविरपतिवश्मद्दीना ॥ सं३१०आश्चयुक्तवद्द ५स्बहरतो मम

TRANSLATION,

HAIL!

From Valabhipura. Sri Dhruvasena, who meditates on his (brother's) feet, who (in point of) good conduct surpasses all his predecessors, who is ability personified in accomplishing things not done by others, whose mind is full of love for virtues fully ripened, who is accepted by (his) subjects as another Manu, who has acquired much learning, who is like the moon without its spot all brilliant and the cause of all peace, who is like the sun that ever shines, to his subjects the destroyer of all darkness even up to the ends of the quarters by his great lustre, who has the confidence of (his) subjects, who performs the highest deeds with a purpose, with motive to accomplish various ends and always in accordance with the Sastras, who is well-versed in matters of peace, war, and reconciliation, who is highly refined by the advice of those who have grown old in giving proper advice at the proper place, who has mastered the (science of) politics and grammar*, who though possessed of great prowess, has a soft heart full of mercy, who though learned in the Sastras is devoid of vanity, who though attractive is self-controlled, who though a steady friend (of all) drives off those who are wicked, who is otherwise called by the significant and well-known name of Bâlâditya (young sun) on account of his having filled the whole world with joy at the time of his rise (coronation), and who is

Sålåturiya means the tantra taught by the Sålåturiya (inhabitant of Sålåtura). Sålåturiya is snother name of Panini, so the tantra here would appear to mean grammar,

a great devotee of Sankara; -----younger brother of Sri Dharasena, who meditated on his (father's) feet, who was the great satisfaction of the learned by his acquisition of all sorts of knowledge, who broke down the spokes of the chariot of the desires of his foes not well arranged and irregular, with his strength, generosity and liberality, who was of a very pleasant disposition notwithstanding his close acquaintance with all the inner recesses of the world and of all the arts and sciences, who was adorned with unartificial love and politeness, who had destroyed the spirit of rivalry in all his enemies with his arms confident and ready to snatch away (their) victorious standards in hundreds of battles, whose command was praised by all kings, whose pride of being expert in the use of arms was humbled by the fame of his bow, and who was a great devotee of Sankara ;-son of Sri Kharagraha, who meditated on his (brother's) feet, who himself bore like a happy bull, only through the pleasure of carrying out his (brother's)desire, the yoke of beautiful and desirable Royalty placed upon his shoulders by his elder (brother), who was another Upendra, full of love for him, whose equanimity was never disturbed by fatigue, happiness or love, who was free from the smallest tinge of the desire of insulting others, though his foot-stool was covered with the lustre of the jewels in the crest of numerous sovereigns bending down to the greatness of his valour, the only retaliation, who would wish was the bowing of those that were well-known for their proud exploits, in whom were collected all the pleasant qualities of the whole world, who forcibly drove away all the ways of the Kaliyuga, whose most noble heart was never affected by any of those blemishes that are always found in the mean, who proved himself to be the first of brave men by depriving innumerable hostile kings of their wealth with his great skill in wielding all kinds of manly weapons, and who was a great devotee of Sankara;—younger brother of Srî Silâditya, a meditator on the feet of his father, who filled all directions with the lustre of his most wonderful qualities pleasant to the whole world, whose shoulders were brilliant with the clear lustre of numerous battles and with the lustre which accompanies a leader of armies, who bore the great burden of great desires, who, though possessed of an intelligence highly purified by a knowledge of the higher and ordinary Vidyas, was so placable as to be easily pleased with a good word from any one, who though possessed of a heart whose depth was impenetrable to all (people), exhibited his most beneficent disposition by his many good deeds, whose fame spread all round by his walking on the way of the past kings of the Satyoyuga, who acquired the descriptive title of Dharmaditya for his enjoying wealth, happiness and greatness all made more splendid by his never transgressing the limits of religious duty, and who was a great devotee of Sankara; -son of Srî Dharasena, who had washed off all his sins in the waters of the Ganges of the rays proceeding from the nails of his (father's) feet, who was possessed of all good qualities as if they were forcibly enticed to

him by his beauty, who was possessed of a greatness which was the source of the life of innumerable friends, who astonished all bearers of the bow by (his) natural strength and by his peculiar tact, who maintained all religious grants made by his predecessors, who averted all calamities destructive to his subjects, who was the common abode of Lakshmi (wealth) and Sarasvati (learning), whose strength was clever in enjoying the wealth of his enemics snatched away from their side, who acquired pure royal-fortune by (his) prowess, and who was a great devotee of Sankara; ----son of Sri Guhasena, who had washed off all his sins by bowing down at the lotus-like feet of (his) mother and father, who had shown his strength, his sword being his only friend from infancy, by cutting down herds of mad elephants of the enemies, the great brilliancy of the nails of whose feet was mixed with that of the jewels of the enemies' crowns bowed down by his prowess, to whom the word raja was agreeably applicable in its full sense on account of his pleasing the hearts of his subjects by properly following the ways mentioned in all the Smritis, who surpassed Kâmadeva. the Moon, the Himâlayas, the Oceans, Brihaspati, and Kubera, in beauty, brilliancy, steadiness, deepness, intelligence, and wealth (respectively), who cast off his own ends like a straw in being ever ready to give shelter to those who sought it, who pleased the hearts of learned men, relatives, and friends by giving them more than they desired, who was, as it were, a walking personification of the joy of all the world, and who was a great devotce of Sankara ;-grand-son of Srî Bhattarka, who had acquired glory by the strong and incessant blows of the large and numerous army formed of his allies as well as foes forcibly subdued, who had secured the good-will (of the people) by glorious gifts, respectful treatment and politeness emanating from his power, who had obtained royal fortune by the force of the line of subordinate crowned-heads, and whose line was not interrupted ;--proclaims to all concerned that they should bear in mind that for the religious merits of his (parents) mother and father he, having determined to make a gift in the name of Brahmâ, has made a grant of the village of Bhasanta on the way to Kâlâpaka in Saurâshtra with all the waste land round it, with all its taxes, with the natural as well as wind-borne produce, with the right to take grains and gold, with the right (to try) ten offences, with the rights of exacting forced labour, incapable of being interfered with by the officials, with the exception of those parts previously given to Devas and Brahmanas; that would endure till the Moon, the Sun, the Ocean, the earth, the rivers, and the mountains; -thus the village has been given for providing clothes, food, utensils, bedding, trustworthy medical help to the company of good Bhikshus (mendicants) residing in the Vihâra constructed by Gohaka in the circle of Vihâras built by Râni Duddâ residing in the city of Valabhi, and for maintaining the worship of Buddha Bhagavan with proper materials, baths, chandana, incense, flowers, and

oil for lamps, for the repairs of any damage to the Vihâra, and lastly for keeping alive the roots of trees. Therefore none should obstruct the enjoyment of the grant made in a proper religious manner whether by cultivating (it) or causing it to be cultivated or by governing it. The grant should be respected and maintained by all the future good kings of the line knowing that power is transient human life is inconstant, and the advantage of the gift of land is common (to them with me). It is said that many kings like Sagara, &c., have enjoyed the earth; (but) he, who is the lord of the land for the time being enjoys its fruits. What good man indeed, will think of resuming even for fear of poverty the things given for charitable purposes by (former) kings considering them like things vomitted and useless.* The donor of land enjoys Svarga for sixty thousand years, and he who resumes or helps in resuming lives in Naraka for the same number of years. The carrier of this is Silâditya, and this is written by Divirapati Vaŝabhaṭṭi, the nagotiator of peace. The 5th of Âśvina Kṛishnapaksha (dark-half) of Samvat 310. Here I set my own hand.

٧.

Copper-plate grant of King Śildditya II. of Valabhi found at Lunsadi near Mahuvd. Dated Valabhi Samvat 352.

The village of Lunsadi where these copper-plates were found is about nine miles west of Mahuvâ to which district it belongs. It is a part of the Bhâvnagar territory in the province of Kâṭhiâvâḍ. The usual scal attached to the plates by means of a ring still keeps the two pieces together and the plates themselves are very well preserved. They are at present in the Museum at Bhâvanagar and measure 14" × 12" containing thirty-two and thirty-three lines respectively written on one side only.

The grant was issued to a Brâhmana named Magopadatta, who had immigrated to Valabhipur from Ânandapur. It gave him two fields in the village of Lunsadi for the spiritual merits of the donor's parents. It is dated Samvat 352 (A. D. 671). It is written in Sanskrit prose, the character being Valabhi.

TRANSLITERATION.

PLATE 1.

१ ओ(ॐ) स्वरित विजयस्कन्थावारा(न्) मेघवनवासकात्प्रसभयणतामित्राणां मैत्रकाणामतुरुवस्यसमण्डस्य भोगसंसक(क)प्रहारशतस्वन्धप्रतापात्प्रताणोस(प्)नतः

^{*} निर्माल्य means without any substance—useless.

- दानमानार्जनोपार्जितानुरागादनुरक्तमौळकृतः(भृत्य)श्रेणीवा(व)ळावाष्टराज्यश्रिय(:) परममादेश्वरश्रीमटार्झ-(क्रां)दव्यवच्छित्रराजनंदीमातृपितृचरणार्यवन्दः(न्द)
- ३ प्रणितमिविधौताशेषकल्मपः शैशयप्रकृति(वात्प्रभृति) खुडुद्वितीयवादुरेव समदपरगजघटास्कोटनप्रकाशित-सत्र(च्व)निकस(व)स्तत्प्रभावप्रणत(ता)रातिचृडारुलप्रभासं
- ४ सक्तपादनखरावेमसंहति(:) सकलस्नृतिप्रणीतमार्गसम्यन्व(क्प)रिपालनप्रबाह्दयरञ्जनान्वःर्थराजशब्दो स-पाराक्ति(रूपकान्ति)स्थैर्य्यगम्भीर्य्ययुद्धसंपद्धिः स्मरज्ञज्ञाङ्का
- ५ द्विराजोदधित्रिदशगुरूथनेशानल(ति)श्ययानः शरणागताभयप्रदेशनपरतया तृणबदपास्ताशेस(प)स्वकार्य्यप्रलः प्राध्येनाधिकार्यप्रदानानन्दित
- ६ विद्वत्सुद्ध्यणयिद्धदयः पादचारीव सका(क)लभुत्रनु(वन)मण्डलाभोगप्रमोदः परममाहेश्वरः श्रीगृहसेनस्तस्य सुतरतरगदनसम्यूखसक्ता(न्ता)नदि
- कृत(निख्त)जान्दवीजलीधप्रक्षालिताशेषका(क)ल्मषः प्रणियसत्तसहस्रोपजीन्यमानसंपद्ग्यलोभादिवाश्रितः
 सरभसमाभिगामिकैर्गृणैस्सहजशक्तिशिक्षावि
- शेस(प)विरमापिताखिलथनुद्धरः प्रन(य)मनरपतिसमितसृष्टानामनुपालियत्(ता) धम्मैदायानामपाकर्त्ता प्रजो-पप्प(पा)तकारिणामुपप्रदा(त्पवा)नां दर्शियता श्री
- सरस्वत्योरेकाधिवासस्य संदतारातिपक्षलक्ष्मोपिरभोगदश्चविक्रमोपिक्रमोपसंत्राप्तविमलपार्थिवश्री(ः)परममाहेश्वर श्रीभुवसेनस्तस्य सुतस्तत्यादा
- तुद्धयातः सकलजजदानद्रनात्सनुत(जनानन्दनात्सन्त)गुणसमुदयस्थिगतसमप्रदिद्धण्डलः समरज्ञतविजयशो-भासनाथमण्डलामग्रोति(त)भासुरतरान्सनो(रांसपी)ठो चामगुम
- ११ मनोरयमवा(व्यूढगुरुमनोरयमहा)भारः सर्वविद्यापरापरविमागाधिगमविमलमितरिप सर्वतः सुभाषितलवेना-पि सुलोपपादनीयपरितोषः समग्रलोका
- १२ गाधगाम्मीर्य्यद्वयोपि सुचरितातिशया(यः) सुज्यक्तपरमकल्याणस्यभावः खिलीभृतकृतयुगनृपरि(ति)पथवि शोधनाधिगतोदप्रकार्तिः धर्म्मानुपरोधोज्यलतरीकृताःर्थं
- १३ सुलसंपदुपसेवानिरूढधम्मादिलाद्वितियनामा परममाहेश्वरः श्रीशीलादिता(ल)स्तस्यानुश्(ज)स्तत्पादानुद्वया-तः स्वयमपेन्द्र(मुपेन्द्र)गुरुणेव गुरुणात्पादरवता
- १४ समाभिलवणीयामपि राजलक्ष्मीं स्कन्धासक्तं(कां)परमन(भ)द्र इव धूर्य्यस्तदान्नासंपादनैकपरतयोद्वहन् सेदसुखरितिस्यामनायासितसक्वं(स्व)सं
- १५ पत्तिः प्रभावसंपद(द्व)शीकृतन्यपश्चतिशरोरत्रच्छायोपगृहपादवी(पी)ठोपि परावज्ञाभिमानरसानािळाद्वितमनोपृ-(इ)त्तिः प्रणातिमेकांपारित्यच्य प्रख्यातपीक्षो(पा)
- **१६** भिमानैरप्प(प्य)रातिभिरनासादितप्रतिक्रियोपायः कृतनिखिलनुबनमेद(भुवनामोद)विमलगुणसंहतिःप्रसमीव-(प्रसभिव)पटितसकलकलिविलसितगतिः नीचजनाणिरा
- १७ हिगिरसेसेदो(नीचजनारोहिभिरसेषैदों)पै रनमृष्टत्यु(नामृष्टात्यु)न्नतहृदयः प्रज्या(ख्या)तपौरुपाखकौदालातिदा-वे(नगुण)गणति(ती)श्रेषिपक्षक्षितिपत(ति)लक्ष्मीस्वयंग्राहप्रकाशितप्रथा(वी)रपुरुष
- १८ प्रथमसत्यो(संख्या)धिगमः परममाहेश्वरः श्रीलरब्रहस्तस्य तनयस्तत्पादानुष्यातः सकलविद्याधिगमविहितनि-खिलविद्वण्यनमनः परितापातिशयः
- १९ सन्वसंपदा त्यागीदार्थ्येण विश्च(ग)तानुसंधानासमाहितासितपक्षमनोरथाक्षमन्यः(द्वः)सम्यगुपलक्षितानेकशास्त्र-कलालोकचरितगहरो(र)विभागोपि दक्षम(परम)

- २० भद्रप्रकृतिमम्(रप्यकृत्रिमप्र)श्रयविनयशोभाविभूषणः समरशतज्ञथपताकाहरणप्रत्यलो(यो)दश्र
- २१ स्वधनुःप्रना(भा)वधिरितया(परिभृता)स्रकीयलानि(भि)भानसकलक्ष्य(नृप)तिमण्डलाभिनन्दितशासनः परम-माहेश्वरः श्रीधरसेनस्तस्यानुबस्तत्पादानृथ्यातः सक्तरिता(सब्बरिता)
- २२ तिशयितसकलपूर्वनरपतिरतिमु(दुः)स्साधा(स्था)नामवि(पि)प्रसाधयिता दि(वि)श्याणां मृर्त्तिमानिवपुरुषका-रः श(प)रि(इद्ध)गुणानुरागनिब्भेरदित्तप्तय्विति(चितद्यत्ति)र्मनुरिव
- २३ स्वयमन्या(भ्यु)पपत्रः प्रकृति(मि)रिधिगतकलाकलाप(ः) कन्त(कान्ति)मान्निर्व्व(दः)त्तिहेतुरकलंक(ः)कुमुदनाधः प्राज्यप्रतापस्थगितदिगन्तरालाप्रन्यक्षितःवास्तराशिप
- २४ सततोसततप्रकृतिसुतिभ्यः(लप्रथ्वंसितथ्यांतराशिस्सततोदितस्सविता प्रकृतिभ्यः) परंप्रत्यप्(य)मन्वत्थेवक्त (त्त)मतित्रदुतिथप्रयोजनानुबन्धमागमपरिपूर्णं विद्धानः सन्धिविग्रहसमासनिश्चयनिपूर्णः
- २५ स्था(ने)नुरूपमादेशं दददुणब्धिद्धि(बृद्धि)विधानजनितसंस्कारः साधूनां राज्यसा(शा)लातुरीयतक्त्र(न्त्र)यो-रुमयोरिष निष्णातः प्रकृष्टविक्रमोषि क
- २६ बणामृष्ट(दु)हृदयो(यः) श्रुतवानप्यर्गवित(:) काम्तावि(न्तोपि) प्रशमी स्थिरसौहृदयोपि (हादाँपि) निरिस-तावे(शेष)दोषवत(:)उदयसमयसमुपजनितजनतानुरागः
- २७ परिवि(पि)हितमुबनसमस्थितप्राधितयालादित्पद्वितीयनामा परममहिश्वरः श्रीध्रुवसेनस्तस्य सुवस्तत्पादकमल-प्रणामधरणिकप
- २८ णजनितकीणलांक्छनललाटचन्द्रशकलः शिशुभावगु(ए)वश्रवणनिहितमत्तनां(मंत्रका)लंकारिवञ्चम(मा)मल-शुत्तविशेषः प्रदान
- २९ सलिलक्षालितात्रहस्तारविन्द(:)कन्यायाइवमृधुका(दुक)रत्रहणादमन्दि(न्दी)क्र(क्र)तानन्दिप(वि)भिःस्व(वै) सुन्धा(न्ध)रायाःकाम्मु(मु)
- कोधनुवेंदइवसंभावितारोषलक्ष्यकलापः प्रणतसामन्तमण्डलोत्तमाङ्गकृतचृडोक(धृतचृडार)का-
- ३१ यमानशासनः परममाहेश्वरःपरमभट्टार्कमहाराजाधिराजपरमे
- ३२ अर: चक्रवार्ते(तीं)श्रीधरसेनस्तियतामहभ्रातृश्रीचीलादित्यस्य शार्त्रपाणे-

PLATE II.

- १ (स्)तिस्यतामहकृतिश्रीशीलादित्यस्यशार्कपाणैरिवाङ्गजयोन्मनोरिभक्ति वन्धुरावयवकिष्पतप्रणतेत (ङ्गजन्मनीभ-क्तिवन्धुरावयवकास्पितप्रणतेर) तिधवलय्(या)दूरंत्पा(तपा)दारविन्दप्रवि(च)त्तया नसमणिकचा मन्दाकिन्येव
- २ नित्यमम्हितोत्तमाङ्गदेशस्यागस्यस्येव राजवेद्विश्वण्यमातन्त्रानस्य प्रवलधविष्यम् यदाः(श)सांवलयेन मण्डिः तककुभो नर्भास यामि
- ३ नीपतेर्विदम्पितम—(डम्बितालंड)परिवेषमप्डलस्य पयोदश्यामशिखरचूचुकविदसहाविन्ध्यस्तनयुगरु(ला-याः) क्षितेः पत्यः श्रीदेरभटस्थाङ्गजा(जः) क्षिती(ति)
- ४ पसंहतेरनुरागिण्याः शुनियशोंशुकथुतः स्वयंवरमालामिव राज्यश्रीया(श्रिय)मर्प्ययस्त्या(त्याः)कृतपरिष्रहः शौ-श्रीमप्रतिहतव्यापारम(मा)नम(मि)तप्रचण्डारिपुम
- ५ ण्डलं मेण्डलाग्रमित्रालम्बः मम(लम्बमानः) शरदि प्रसभमास्त(क्क)ष्टिशिलोमुषपा(खर्षा)णासन(ना)पादितप्र-पा(सा)धनानां परभुवां विधिवदाचरितकरग्रहणः पृथ्वेमेव विवि

⁹ This is a repetition.

- ६ भवणोज्वलेन श्रुतातिक्षेपनोद्धासितश्रवणः पुनः पुनक्केनेव रत्नालंकारेणालंकतश्रोत्र(ः) परिस्पुरत्कटकवि-कटकीटपक्षरत्नाकिरणमविच्छित्र
- प्रधा(दा)नसिललिनिवहावस(से)कविलस्ववविल्यंक्वरामिवाग्रपाणिमुद्दहर्म(न्) वृत्तविक्राले(शाल)रत्नवलयब-लिविलातटायमानभुजपरिष्वक्तिय(वि)श्वंभरः
- परमम्(मा)हेश्वरः श्रीध्रुवसेनस्तस्यात्रजोपरमहीपितिस्(स्प)शेदोषनाशनिषयेव लक्ष्म्या स्वयमितस्पष्टचेष्टमानिक-ष्टांगयधा(ष्टि)रितिवचिरतरचिरितग
- रिमपरिकलितसकलनरपतिरितप्रकृष्टानुरागरसे(स)रभसर (व)शीकृ(त)प्रणतसमस्तसामन्तचक्रचूडामणिमयूख-खचितचरणकमल
- १० युगलः प्रोहामोदारदोर्हण्डदलितद्विस(ष)द्वर्गदर्णः प्रसर्गः(र्ण)लटीयःप्रतापहोषिताशेषशचुवंदाः प्रणियसिम श्विसलक्ष्मीकः प्रेरितत्(ग)
- ११ दोस्थितसुदर्शनचकः परिद्वतवालकीङोनध(ः)कृतद्विजातिरेकविकमप्रसाधितधरित्रीतलोका(लःअं)गाकृतज-लग्नन्थो पूर्व्यपुरुशोत्तमः साक्षा
- १२ दर्भ इन सम्य(ग्) व्यवस्थापितवर्णाश्रमाचार: पृथ्वैराय्व्वीपितिमिस्नि(स्तृ)ष्णाळवळुव्धैर्य्यस्य(स्वा)पद्धतानि देवश्रक्षदेशनि तेषामण्य
- १३ तिसरलमन(:)प्रसरमुस(त्स)ङ्कलनानुमोदनान्यां परिमुदितत्रिमुवनाभिनन्दितोच्छ्तोत्कृष्ठथवलश्रमांच्यजप्रका-शितनिजवशो देव
- १४ दिजगुरूत्र्यतियतोर्हमनवरतप्रवर्तितमहोद्रंगादिदानव्यसनानुपञ्चातसन्तोष्रोपात्तोष (दा)रकीर्तिपंकिपरंपरादन्द्र-रितनित्वि
- १५ लदिव्यक्त(क्वक)वाल(:) स्पष्टमेव यथारर्थधर्मादित्यापरनामा परममाहेश्वरः श्रीखरप्रहस्तस्याप्रजः कुमुदण-(ख)ण्डश्रीविकासिन्याकलाव(त) श्रान्द्रकयेष
- १६ कीस्या धवालितसकलिद(ङ्)मण्डलस्य स्वण्डितागुरु विलेपनिपण्डश्यामलिवन्ध्यशैलिबिपुलपयोधराभोगायाः
 क्षोण्या(:) पत्पुः श्रीशीलगदित्यस्य
- १७ सुनुर्श्वनप्राल(ले)यकिरणा(ण) इय प्रतिदिनए(प्र)यर्द्धमानकाल(कला)वक्रवाल: केसरीन्द्रीशशुरिव राजल-श्मीमचलवनस्थलीमिये(वा)लंकुर्व्वाण: शिखण्डिकेतन इव
- १८ कीचमञ्जूडीमण्डता (नः)प्रचण्डशक्तिप्रभावश्चशरस्य(दा)गम इव प्रतापवानुत्रुसस्पद्मः संयुगे निदलप्(य)सम् (म्बु)धरानिव परगा(ग)जानुदाएवपतनवा
- १९ संतपां(न्नुदयपर्वतवनेवालातप) इव संत्रामे मुण्णलानिम्(भिमु)रवासामार्य्ष द्विश्(ष)तांपरममाहेश्वरः श्रीशी-लीदित्यः कुशली सर्वानेव संमाजापयामि(यत्य)स्तु वस्तीविदितम्
- मंथां मयां मांतापित्रो(:)पुण्याप्यायनाय आनंन्दपुराविनिग्गंतवलभीवास्तव्यत्रैविद्यशामान्य (सामान्य)गार्ग्यसगो-त्रअध्वर्य्युबाद्यणिकक्षक
- ६१ पुत्रज्ञांक्षणमगोपदत्तद्वीनाम * * * यसुराष्ट्रमुजो * * * शहपासास्यत्वांष्(लू)श्राम्रामे क्षेत्रं द्विसंदा-विश्यितं पञ्चाश्चद्विकभूपादावर्त्तशतपारिमाणं यत्रकं
- १२ खण्डं दक्षिणसीम्नि कुटुम्बिवावकमङ्गृष्टं विद्यत्पिषिकभूपादावर्त्तशतपरिमाणं यस्थाषाटनानि पूर्वतो देवसम्मस क्त(क्त)ब्रह्मदेयक्षेत्रं
- इक्षिणतः डाण्डासम्मामसीम अपरतः कुटुंम्बिभातकसत्क(क)क्षेत्रं उत्तरतःकुटुम्बिअज्जाससत्क(क)क्षेत्रं तथा द्वितीयसण्डं

- २४ पूर्व्यदक्षिणसोम्नि महत्तरजञ्ज्यह्नुकप्रकृष्टे विशस्त्रूपादावर्त्तपरिमाणं यस्य पूर्व्यतः **खष्ण्य**न्लु**कसत्क(क्त)क्षेत्रं** दक्षिणतः ब्राह्मण
- २५ दामिलसस्क(क)क्षेत्रं अपरतः जज्ज्यह्लुकसस्क(क)क्षेत्रं उत्तरतः जज्ज्यह्नुकसस्क(क)क्षेत्रमेवमिदाम-(दमा)घाटनविशुद्धं क्षेत्रं
- २६ सोद्रंगं सपरिकरं सभूतवातप्रत्ययं सधान्यहिरण्यादेयं सदशापराधं सेत्यद्यमानाविष्टिकं सर्व्वराजकीयानाम-हस्तप्रक्षेप
- २७ णीयं पृस्केपत्तदेवबसदेयरहितं भृमिन्छिद्रन्यायेनात्तनद्राकार्णविश्वतिसरित्यव्वंतसमकालीनं पुत्रपौत्रान्वयभोग्य
- १८ मुदकातिसग्गेंग धर्म्मदायोतिस्टष्टः यतोस्योजितया ब्रह्मदेयस्थित्या भुक्कतः कल(कृष)तः कर्षयतः प्रदि-शतो वा न कैश्चिद्वयासेधे
- २९ वर्त्तितव्यमागामिमद्रद्रपतिभिरस्मद्वराजैरन्यैर्व्य(व्यां) अनित्यान्यैश्वर्य्य(र्य्या)ण्यारेथरं केनुस्यं(मानुष्यं) सामा-न्यञ्च भूमिदानफलमवगच्छाद्भरया(य)म
- स्मद्दायोनुमन्तन्य(ः) परिपालियितन्यश्चेत्युक्तश्च यहिमार्न्यसुधा भुक्ता राजिभिस्सका(ग)रादिभ(भिः)यस्य
 यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं
- ३१ पानीह दारिस(द्य)न(भ)याचरेन्द्रैर्झनानि धर्मायतनीकृतानि निर्मुत्त(क्त)मात्यप्रव्र(ति)मानि तानि को नाम साबु(:)पुनराम(द)दीत ॥ षष्ठिवर्ष
- सहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति मृमिदा(दः) आष्छेता चानुमत्ता(त्ता)च तान्य(न्ये)व नरके बसेत् ॥ दृतकोत्रराजः.
 पुत्रध्रवसेन
- ३१ लिखितरि(मि)दं सन्धिविषदाधिपृ(कृ)तदिविरपतिश्रीस्कन्दभटपुत्रदिविरपतिश्रीमदनदिलेनेति ॥ सं३५२-भाद्रपदशु श्विदस्तो मम ॥ ॥ ॥

TRANSLATION.

HAIL!

From the camp of Meghavena where the beneficent and victorious army is encamped, Silàditya, who is like a ray of the new moon (?) with its kalâs ('digits' in the case of the moon and 'learning' in the case of Silâditya) growing daily, who beautifies the rajyalakshmî as the cub of a Kesari (lion) does the land of a forest on a mountain, who like the god with the peacock as his sign has a luminous crest for ornament, whose power and glory are very great, who is, like the commencement of the Sarada, adorned with padma (lotuses in the case of Sarada and great treasures in the case of the king) full of pratâpa (heat, and valour), who in battle destroys the elephants of enemies like big clouds, who like the rising sun on the Udaya mountain diminishes (takes) the life of enemies opposed to him in battle, and who is a great devotce of Sankara; ——the son of Siladitya, who had whitened all directions round, with his glory as white as the splendour of the moon that made the bods of dolars (flowers) bloom with beauty, and who was the lord of the earth with its wide expanse of the Vindhyachala dark with the smearing of Aguruchandana being daily cut (in its forests): - elder brother of Sri Kharagraha, whose straight body was embraced by L 7.

Lakshmi herself openly, as it were, with a view to free herself from the taint of the touch (of other kings), who surpassed all kings by the greatness of his most distinguished conduct, whose pair of feet were covered with the rays of jewels in the crowns of numerous warriors subdued and humbled with his kindness, who pounded his enemies' pride with (his) club-like long and valorous hands, who burnt the whole line of his enemies with his extending lustre, who bestowed wealth on those that loved (him), who with the very enjoyable sight of numbers relieved from accidental misery, free from childishness, ever respecting the Brahmanas, conquering the whole earth by unparallelled valour, was like Purushottama, the first god lying on the bed of the waters, with his Gadd and Chakra, who showed many child-like exploits, who ever respected Brahmagas, who compassed this earth only in one stride, who was like Dharma incarnate setting forth duties of the various varnas and Ashramas, who made his line illustrious by (floating) the white banner of religion hailed with joy by the three worlds, delighted with his satisfying and gratifying the minds of the gods and the Brâhmanas, who were deprived by former kings affected with avarice of the spiritual gifts (made to them) by the older sovereigns, who brightened all the quarters with the illustrious glory acquired by the habit of not being satisfied with making constant gifts of large and ascertained villages to Devas, the Brahmanas, and Guras according to their merits, who was thus significantly called by the other name of Dharmaditya, and who was a great devotee of Sankara; —elder brother of Sri Dhruvasena, who adorned with the white garments of fame had accepted as his own the large company of kings devoted to him and conferring on him as her chosen lord the garland indicating the choice, viz., Royalty, who possessed valour, unconquerable, and enough to bend down all his enemies (like मण्डलावं?), who in due order collected every autumn the annual tribute from the lands of the enemies adorned with arrows powerfully drawn on bows, whose hearing was lucid with the knowledge of the Sastras acquired even from early age, looking fine with various Varnas, whose ears had also the new superfluous ornaments of jewels, whose hand shone like a bright moss-rose being wet with the water poured from it in the act of giving constant gifts, and shining with various armlets, jewels and other ornaments, whose arms contained within them the whole universe being as it were the barriers to the rising occan, and who was a great devotee of Sankara; ——the son of Sri Derabhatta, who constantly bent down before his father in devotion. • • • • • (?) whose head was ever purified as it were by the very white waters of the Ganges of the rays of the jewel-like nails, proceeding from the feet (of his father), who showed much skill and wisdom like Agastya Mûni, who mocked the widespreading halo of the moon with the circle (disc) of his fame which was very white and which had spread in all directions, who was lord of the earth that had

Sahyadri and Vindhyachala for her breasts, the nipple (?) being made of their tops blackened by surrounding cloulds; ---son of Siladitya, who having a Sarnga bow in his hand appeared as if he were Krishna himself; --- brother of the grand-father of the most powerful Chakravarti Srî Dharasena, who was the son of the great Bhattarka and the king of kings, whose forehead bore a mark of the crescent moon being caused by the scar left by constant rubbing (of the head) with the earth before the lotus-like feet of his father, whose beautiful Sruti (ears, or particular knowledge of the Srutis) was pure on account of the ornaments of Vedic mantras put upon them from his very infancy, whose lotus-like palm was washed in its fore-part with water of Sankalpa for making religious gifts, who was a lover of the earth imposing very mild taxes. like an actual lover taking softly the hand of his young bride, who like the Dhanûrveda incarnate had all the targets within his ken, whose command was placed on their heads by princes like so many crest-jewels, and who was a great devotee of Sankara; ----son of Srî Dhruvasena, who meditated on the feet of his elder brother, who surpassed all his predecessors in good conduct, who in accomplishing things not done by others appeared as if he were an evident personification of purusartha, whose mind was full of love for virtues fully ripened, who was accepted by his subjects as another Manu, who had acquired much learning, who was like the moon without its spot all brilliant and the cause of all peace, who was like the sun that ever shines on his subjects the destroyer of all darkness even up to the ends of the quarters by his great lustre, who had the confidence of his subjects, who performed the highest deeds with a purpose, with motive to accomplish various ends and always in accordance with the Śdstras, who was well versed in matters of peace, war and reconciliation, who was highly refined by the advice of those who had grown old in giving proper advice at the proper place, who had mastered the (science of) politics and grammar, who though possessed of great prowess had a soft heart full of mercy, who though learned in the Sastras was devoid of vanity notwithstanding the knowledge of the Srutis, who though attractive was self-controlled, who though a steady friend drove off those who were wicked, who was otherwise called by the significant and well-known name of Bâlâditya (young sun) on account of his having filled the whole world with joy at the time of his rise (coronation), and who was a great devotee of Sankara; ---- younger brother of Sri Dharasena, who meditated on his (father's) feet, who was the great satisfaction of the learned by his acquisition of all sorts of knowledge, who broke down the spokes of the chariot of the desires of his foes not well arranged and irregular, with his strength, generosity and liberality, who was of a very pleasant disposition notwithstanding his close acquaintance with all the inner recesses of the world and of all the arts and

sciences, who was adorned with unartificial love and politeness, who had destroyed the spirit of rivalry in all his enemies with his arms confident and ready to snatch away (their) victorious standards in hundreds of battles, whose command was praised by all kings whose pride of being expert in the use of arms was humbled by the fame of his bow, and who was a great devotee of Sankara; son of Sri Kharagraha, who meditated on his (brother's) feet, who himself bore like a happy bull, only through the pleasure of carrying out his (brother's) desire, the yoke of beautiful and desirable Royalty placed upon his shoulders by his elder brother, who was another Upendra and full of love for him, whose equanimity was never disturbed by fatigue, happiness or love, who was free from the smallest tinge of the desire of insulting others, though his foot-stool was covered with the lustre of the jewels in the crest of numerous sovereigns bending down to the greatness of his valour, the only retaliation who would suffer was the bowing of those that were well-known for their proud exploits, in whom were collected all the pleasant qualities of the whole world, who forcibly drove away all the ways of the Kaliyuga, whose most noble heart was never affected by any of those blemishes that are always found in the mean, who proved himself to be the first of brave men by depriving innumerable hostile kings of their wealth with his great skill in wielding all kinds of manly weapons, and who was a great devotee of Sankara; ---- younger brother of Srî Silâditya, who was a meditator on his (father's) feet, who filled all directions with the lustre of his most wonderful qualities pleasant to the whole world, whose shoulders were brilliant with the clear lustre of numerous battles and with the lustre which accompanies a leader of armies, who bore the great burden of great desires, who though possessed of an intelligence highly purified by a knowledge of the higher and ordinary Vidyas was so placable as to be easily pleased with a good word from any one, who though possessed of a heart whose depth was impenetrable exhibited his most beneficent disposition by his many good deeds, whose fame spread all round by walking on the way of the past kings of the Satyayuga, who acquired the descriptive title of Dharmaditya for his enjoying wealth, happiness, and greatness all made more splendid by his never transgressing the limits of religious duty, and who was a great devotee of Sankara; -----son of Sri Dharasena, who had washed off all his sins in the waters of the Ganges of the rays proceeding from the nails of his (father's) feet, who was possessed of all good qualities, as if they were forcibly attracted to him by a desire for that greatness which was the source of the life of innumerable friends, who astonished all bearers of the bow by (his) natural strength and by his peculiar tact, who maintained all religious grants made by his predecessors, who averted all calamities destructive to his subjects, who was the common abode of Lakshmi and Sarasavati, whose strength was clever in

enjoying the wealth of his enemies snatched away from their side, who acquired pure royal fortune by his prowess, and who was a great devotee of Sankara ;---son of Sri Guhasena, who had washed off all his sins by bowing down at the lotus-like feet of (his) mother and father, who had shown his strength, his sword being his only friend, from infancy by cutting down herds of mad elephants of the enemies, the great brilliancy of the nails of whose feet was mixed with that of the jewels of the enemies' crowns bowed down by his prowess, to whom the word rajd was agreeably applicable in its full sense on account of his pleasing the hearts of his subjects by properly following the ways mentioned in all the Smritis, who surpassed Kâmadeva, the Moon, the Himalayas, the ocean. Brihaspati, and Kubera, in beauty, brilliancy, steadiness, deepness, intelligence, and wealth respectively, who cast off his own ends like a straw in being ever ready to give shelter to those who sought it, who pleased the hearts of learned men, relatives, and friends by giving them more than they desired, who was, as it were, a walking personification of the joy of all the world, and who was a great devotee of Sankara; ----grand-son of Sri Bhattarka, who had acquired glory by strong and incessant blows of the large and numerous army formed of his allies as well as foes forcibly subdued, who had secured the goodwill (of the people) by glorious gifts, respectful treatment and politeness emanating from his power, who had obtained royal fortune by the force of the line of subordinate crowned-heads, and whose line was not interrupted ;—proclaims to all concerned that for the spiritual welfare of his parents he has given a gift to Brâhmana Magopadatta son of Adhvaryyû Brâhmana Trivedi Kikkaka of the gotra Gargya who has immigrated to Valabbipura from Anandapura, (the modern Vaduagar?), being sacred on both sides, a field in two pieces (of land), in the village of Lûshû under · · · Salapûsûsthali in Saürastra measuring one hundred and fifty padarartas. One of them measuring one hundred and twenty pådåvartas situated within the southern boundary and tilled by Kutumbik Vâvaka is bounded on the east by the field of Devasarma received as a gift, on the south by the boundary line of the village of Dundasa, on the west by the field of Kutumbik Bhâtaka, and on the north by the field of Kutumbik (cultivator viz. a kuṇabi) Ajjasa; the other is thirty pådåvartas within the southeastern boundary (of the village) tilled by Mahân Jajjalluka, bounded on the east by the field of Jajjalluka, on the south by the field of Brahmana Damila, and on the west by the field of Jajjalluka. Thus it is given with all clear boundaries and with its surroundings and accompaniments, with what is brought to it by the wind, &c., with its grains and taxes and with the rights of forced labour, with the right of trying the ten offences, not to be touched by royal officers and with the exception of the portions formerly given to Devatas and the Brahmanas; thus is the whole given by what is called the Bhomichhidea nydya. This to be enjoyed as a religious gift by his sons, grand-sons, &c., and his descendants till the moon, the sun, the ocean, the earth, the rivers, and the mountains endure. None should obstruct its enjoyment or cultivation by himself or others. Future kings of his line knowing that greatness is fickle and human life is unstable and also knowing that the merits of this gift belong to them in common with him should respect and protect this grant. It is said that many kings such as Sagara, &c., have enjoyed the earth; (but) he who is the lord for the time being enjoys the fruits. What good man will resume even for fear of poverty the things given for charitable purposes considering them like things already consecrated to gods and which are like flowers once given and enjoyed out.

He who makes a gift of land lives sixty thousand years in Svarga, while he who resumes it or allows it to be resumed lives the same number of years in Naraka. Râjputra (prince) Dhruvasena is the dûtaka of this deed of gift. This order is written by Anahila Chief of the Diviras grand-sons of Scnapati Skandabhaṭṭa, the head of the Diviras, the negotiator of peace and war. The first of Bhâdrapada Sûklapaksha (bright half.) Samvat (Valabhi) 352. (This) is my hand.

VI.

Copper-plate grant of King Śildditya III. of Valabhi found at Devali near Taldja under Bhavnagar. Dated Valabhi Samvat 375.

The village of Devali where these plates were found is about three miles east of Talājā and about three-and-a-half miles inland from the sea on the south-eastern coast of Kāṭhiāvāḍ. The usual seal was missing when they were first received though they have got the holes intended for the rings to keep them together. The plates are preserved in the museum at Bhāvnagar and measure $14\frac{1}{2}$ " by 12" containing twenty-nine and thirty-one lines respectively written on one side only.

The grant was issued to a Brâhmaga named Trivedi Devila making a gift of the village of Moranjîja in Saürâshtra for the spiritual merits of the king's parents. The date of the grant is Samvat 375 (A. D. 694).

The composition is Sanskrit prose, but it is very incorrect there being hardly a line without a mistake of some kind or other. The character is Valabhi.

TRANSLITERATION.

PLATE I.

- १ ॐ स्वस्(स्ति) जयस्कैषांवारापु(त्यू)णींकप्रामवसकप्र(वासकात्प्र)सभप्रणतिमत्रणां(तामित्राणां)मैत्रकाणामतु-लप(ब)लसेपन(संपन्न)मण्डलाभोगसंसक्तप्रहारशतलब्धप्रतापो(पः) प्रताप(पो)पनत
- दानमानाक्वेबोपार्कित(ता)नुरामा(गा)दनुरक्तमैालभृत्यश्रेणीलललस(बलावासरा)रक्यश्रियः परममाहेश्वरश्री-भटाक्वादच्यिक्किसराजवद्यान्वत(वंदोमाता)पितृचरणारविद्यणाति
- प्रविधौताशेषकल्मयः शैशवाप्य(स्र)भृतिखङ्गाद्वितीयवाहुर(बाहुरे)व समदपरगजट(घटा)स्कोटनप्रकाशितसत्विनिक् कवः तत्वभावप्रणतारातिचृद्वारःनप्रभासंसक्तपादनः
- ४ रश्मिसंहातिः सकलस्मृतिप्रणीतमार्गसम्यप्(क्प)रिपालनप्रजाहृदयरंजनान्वर्धराजद्राव्देः रूपक्(का)न्तिस्यैर्यः गांस्भीर्यपु(कु)द्विसंपद्भिः स्मरश्चशांकाद्गिराजोदधि
- ५ विदशगुरुधनेशायितग(नतिश)यानः शरणागताभयप्रदानपरतया तृणवदपस्त(पास्ता)शेषस्वको(का)र्यफलः प्रार्थनाथिकार्यप्रदानानीन्दतसुद्धत्प्रणय(यि)हृदयः
- ६ पादचारीव सकलभुवनमण्डजा(ला)भागप्रमोदः परममाहेश्वरः श्रीगुह्सेनस्तस्य सुतस्तःपादनसम्यूखसं तानति(निः)सृतजान्हवीजलीषप्रशास्त्रिताशेषक
- ७ त्मषः प्रन(ण)थिशतसङ्खोपजीव्यमानसंपदूपलोभादिवाप्र(श्रि)तः सरभसमाभिगामिकीर्गुणैस्सहजशक्तिशिक्षा विशेषावेशापत(स्मापिता)खिलधनुर्धरः प्रथमरन(सर)
- .८ पतिसमतिसृष्टानामनुपालयिका(ता) धर्मदायानामपाकर्ता प्रजोपघातकारिण(णा)मुपष्टवान(नां) दर्शयित श्रीसरस्वत्योरं(रे) काथिवासस्वसंद्वतारातिपक्षलक्ष्मीप
- रिभोत(ग)दक्षाविक्रमो विक्रमोपसंप्राप्तविमलपार्थिवश्रीः परमभाहेश्वरः श्रीधरसेनस्तस्य सुतस्तत्पादानुध्याते
 स्तकलजगदानंदनाल्यद्भृतगुणसमृद्यस्थगितः
- १० समग्रदिङमण्डलः प(स)मरशतिबजयशोभासनाथमण्डतात्र(लाग्न)श्चतिभासुरतरांसपीठोद्द्(ध्यू)ढगुरमनोपुः (रय)महाभ(भा)र(:) सर्वविद्यापरापरविभागाधित(ग)मविमलमत(ति)रपि
- ११ सर्वत(ः)सुभाषित(षित)छखनोषि(लवेनाषि) सुखोषपाट(द)नीयपीरतोष(ः) प(स)मग्रलक(लोका)गाथ गाम्मीर्यद्वदया(यो)िष सुचरितात(ति)शयसुव्यक्तपरमकल्याणस्त्रभाव(ः) खिलीभृतकृतयुगन्दप
- १२ तिपक्षविद्योषनाधिगतोदप्रकीितः धर्मानुपरोधोज्यलतरीकृतार्थसुष्यसंपदुपसेवानिरुद्धधर्मादित्यद्वितीयनाम(मा)
 परममोद्धश्रर(:) श्रीद्यीलादित्यस्तस्यानुजस्तत्यादानु
- १३ ध्यातः स्वयमुपंद्रगुरुणोप्प(गुरुणव)गुरुणात्यादरवभ (ता) समिभित्वप्रणायामपि राजलक्ष्मी (क्ष्मी) स्कन्धासक्तः (क्ती)परमभद्र इव धूर्य्यस्तदाशासपादनैकरसतयेबोद्वहन् खेम(द)सुख
- १४ रितस्यामनायासितस्यत्वसंपितः प्रभावसंपद्वगी(शी)ङ्गतमृ(तृ)पातेशतागि(शि)रारबङ्गाय(यो)पगूदपादणिहोपि परावज्ञाभिभानरसानासिक्षितमनोवृत्तिः प्रण
- १५ तिमतां(कां) परित्यव्य प्रख्यातपौरुषाभिमानैरप्यरावि(ति)भिरनास(सा)दितप्रतिक्रियोपःय(:) कृतनिस्वि रूभुवनं(ना)मोदावेमलगुणसंहति(तिः) प्रसभविष्यदेतसकरु
- १६ विरुपि(कलिविरुपि)तगतिः नीचजनापि(धि)रोहिति(मि)रशेषैद्पिरनामृष्टाःगुन्नतहृदयः प्रस्थाता(त)पारुषास्न-भौशकातिसयः गणतिष(गुणतीर्थ)विषक्षक्षितिपतिरुक्षमीस्थयंग्रा

- १७ हप्रकाशितप्रविरम्(पु)रुषप्रथमसंख्याधिगमः परममहश्वर(माहेश्वरः) श्रीखरश्रहस्तस्य सुतस्तत्पादानुध्यातः सर्वविद्य(द्या)गमाविहितनिस्व(पि)रुविद्वजनमना(नः)परिस(तो)
- १८ प(षा)विशय(यः) सम्बसंपदा त्यागौदार्थ्यणाविगत(ता)नुसन्धानासम(मा)हितारातिषश्चमनोरथ(था)श्चमङ्ग(ः) सम्यगुपळाक्षेतमुकशाकृकळ(तानेकशास्त्रकळा)ळोकचरितगङ्गरति(वि)भागोपि परमभ
- १९ द्रमकृतिरकृत्रिमत्रअपे(पश्रयोगि)विनयशा(शो)माविभूषण(:) समरशतजयपताकाहरणप्रत्यलेा(यो)दग्रप(बा)हु-दण्डीवभ्यन्स(स्त)निश्चिलप्रितिपत्र(क्ष)दण्पोदयः स्वधनु(:)
- २० प्रमवो(भाव)पार्रम्त्(ता)स्वसै(कौ)शलाभिमानप्(स)कलनृपतिमण्डलाभिनन्दितशासनः परममाहेश्वरःश्री-धरसेनस्तस्यानुजस्तन्यादामुध्यातस्यच्चारिता
- २१ मि(ति)श्रवितसकलपूर्वनरपतिमातिदुस्याथा(थ्या)नामपिक(सा)ष्रविता विषयाणां मृत्तिमानिव पुरुषकाकः(रः) परिग्रहगुणानुरागनिर्भगरिचत्तवृत्तिः मनुदिव
- २२ स्त्रयमभ्युपपन्नः प्रकृतिभिराधिगतकलाकलापः कान्तिमनिधिति(मान्निद्वैति)हेतुरकलंकः क(कु)मुदनाथः प्र(प्रा)-ज्यप्रतापस्थगितदिगन्तरल(रालः)प्रश्यसं(सि)तध्यन्तरसि(ध्यांतसिशः) स
- २३ तते।दितस्त्रित्(ता) प्रकृतिभ्यः परप्रत्ययमर्थत्रन्तमतिबहुतिथप्रयोजन(ना)नुबन्धमागम्परिपृणे विद्रधानः सन्यि च(वि)ग्रहसम्(मा)सनिश्चयनिषुनः(णः) स्थानेनुर(रू)
- २४ पम(मा)देशददहणवृद्धिविधानजनितसंस्कारः साधूना(ना) राज्यता(शा)लातुरीयस्तर (न्त्र)बोरुभयोरापि निष्णातः प्रकृष्टिकमोपि करणामृदुहृदयः श्रुत
- २५ वानदृशा(प्य)गर्वितः कान्तोर्षि प्रशा(श)मी स्थिरसौदय्योपि(सौहाद्दौषि)निरसितो(ता) दोषवतामुदयसम्यसं-पृष्टजनितजनानुरागपरिषिद्दितभुष्रनसमर्थितभ्राथित
- २६ वालादिस्यदितीयनाम(मा) परममाहेश्वरः श्रीष्ठवसेनस्तस्य सुतस्तत्पादकमलप्रणामधरणीकपणीज(ज)नित्-किणलांछनललाटचन्द्रशक्लः
- २७ शिशुभाय एव श्रवणनिहितमौक्तिकाल(लं)कारः विज(भ्र)मामलभू(श्र)तिविवे(शे)पप्रदानसालिलक्षालित(ता) प्रहत्ता(स्ता)रिविन्दः कन्याया इव मृदुकर
- २८ प्रहणादमंदीकृतानन्दा(न्द)विधिव्येसुन्धराया(याः) कामुको धनुव्येद इययं(से) भावितादोषलक्षकलाक-लापः अणतसमस्तसमन्(सामन्त)मण्डलोत्तम(माः)
- २९ ङ्गमृतच्डारत्नोपमानशासनः परममाद्देश्ररः परमभद्वारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरचक्रवार्त्तश्रीधरसेनः

PLATE II.

- तरिपतामहभातृश्रीशीलादित्यस्य शाक्ति(शार्क्ष)पाणेरिवाङ्गजन्त(न्म)नो भक्तिवन्धुरावयवकत्थितप्रणतेरितिधव-लया दुरंतपादार्शावन्दप्रवृक्तका नलमणिवचा
- २ मंदाकित्या(त्ये)व नित्यममलीत(लितो)चम(मा)ङ्गदेशस्यागस्त्यस्येव राजपेदीक्षिण्यमभन्य(मातन्यान)स्य-प्रयलभ्यालिमा यशसो वलल(ये)नमण्डितककुभो नभ
- सियामिनीपतेर्विवडम्बित(ता)लंडपरिवेषमण्डलस्य पयोदस्यामिशिखरच्चुक्रवचिरसङ्खादिन्ध्यस्तनयुगायः(याः)
 क्षितेः पत्युः श्रीदेरमटस्याङ्गजः
- ४ क्षितिपसंहतेरनुरागिण्याः शुवियगङ्गुकङ्त (शुचियशोशुकभृतः) स्वयपरमलभव(स्वयंवरमालाभिव)राज्य-श्रीयमर्ण्यत्य(यंत्याः)कृतपरिप्रद्धः शोर्यमप्रतिहतव्यापरमनचित(व्यापारमानमित)तप्रचण्ड(ण्डा) रिवल

- ५ मण्डलपीमवेग्रिललपमानः(लाग्रीमवावलंबमानः) ग(श)रदि प्रसमम(मा)कृष्टशिलीमुखप(बा)णासनापा(पा)-दितप्रसम्बनानाप्रसाधनानां)पर (मु) बाविविध(बाविविव)दाचारितकरप्रहणः पूर्वमेव विविधवणींक्जलेन्भु
- ६ तातिशयमोद्धासितश्रवणः पुनः पुष(न)रुक्तनन(रुक्तेन)रत्न(त्ना)लंकारेण(णा)लङ्कतश्रोत्रः परिरुपुरद्विकटाकि-क(कि)टपक्षरत्नाकिरणमिशिच्छित्रप्रदानसलिलामि(नि)वहायसेकविलस
- ७ न(ऋ)वरीवलां बकुरीमदा(ला) अपनि(पाणि) मुद्दहन् धृतविद्यालरन्वे (रत्न)वलयजलि(ल)धिवेलातदायमान-मुजपरिध्वक्तविश्वम्भरः परममादेश्वरः श्रीधृवसेनस्तत्यात्रजो परमही
- ८ पातिस्पर्श्यदोपनाश्चनिष्यते छक्ष्म्यां स्वयमतिस्पष्ठचेष्टमाग्लि (क्षि)ष्टांगयष्ट्(ष्टि)रातिर(क)चिरतरचिरतगरिमपिर-न(क)लितप्(स)कलनरपितरिप्रकृष्ठानुरागातिरभसव
- श्रीकृतप्रणतसमस्तस्(सा)मंतचकचृडामिषमय्स्यस्यचितचरणकमलयुगल्(:) प्रोहामोदारदोर्देढदलितिहिषद्दगर्गदर्भप्रसप्तय्ययःप्रतापप्रो(पि)तारोष
- शत्रुवंशः प्रणय(यि)पसानिक्षिप्तलक्ष(क्ष्मी)कः प्र(प्रे)रितगरोक्षिप्तसुनि(दर्श)नचकः परिद्वतपद(बाल)किङोन्धाः क्षत्र(धःक्षत)द्विजातिर(रे)किषक्तमप्रसाधितधर(रि)जीतलोनंद्वीकृतजलस्ययो पृथेवु(प)
- ११ स्वीत्तमः पक्षाधर्म (साक्षाद्धर्म) इव सम्यन्यव(गृन्यव)स्थापितवर्णप्रमच(वर्णाश्रमाचारः) पूर्वैरप्यूर्वापातिभि स्वृष्णालवसुन्धेरया(वर्षा)न्यपद्धत (ता) नि देवश्रक्षदेयानि तेप (षा) मप्यतिसरट(ल)मनःप्रसरमरसं (मुस्य)क
- १२ लनानुम(मो)दनाभ्यां परिमृदितत्(त्रि)भुवनामिनन्दितोच्छ(च्छि)तोत्कृष्टधवलधर्मध्वजप्रकाशितानेअवंशो दे-वदे(हि)जगुरु(गुरुन्)प्रतियथा र्हमन्वरतप्रवातितमहोद्रगादिदानव्यसनानुष्जा
- १३ तस्य(सं)तोषोपाचोदारकीर्ति(ः) पत्तिपरंपरादनु(न्तु)रितनिक्षिलदिक्ककवालः स्पष्टमेव यथार्थभम्मादित्या-परनामा परममाहेश्वर(ः) श्रीखरग्रहस्तस्यात्रजन्मनः क(कु)मुद
- १४ प(प)ण्डश्रीविकासिन्य(कासिन्या) कलावतश्चंद्रिकयेव रण्या(कीर्त्या)धविततसकलिदकाडलस्य संडित(ता)-गुरुविलेपनप(पि)ण्डश्यामलिवध्यशैलविपुलपया(यो)धरामोगो(गा)या क्षोण्याः पत्य(त्युः)
- १५ श्रीशीलादित्यस्य सून(नृ)र्भवप्रालेयकिरण इव प्रतिदिनस(सं)वर्धमानकलाचक्रवाल: केसरीद्वाशिशुरिक-राजलक्ष्मीमचलवनस्थलीमिवालंकुर्व(वां)ण: शिखाण्डकर(केत)
- १६ न इन रचिमञ्जूडामण्डनः प्रचण्डशक्तिप्रतापश्च शरदागम इन प्रतापनानुलुसहा(दा)ईः संयुगे विदलयन्न-भोषरानिन परगजानुदयभूषरपनापला(ननेवाला)
- १७ न(त)प इव संत्रमी(ग्रामे) मुष्णत्रीभमुखानामयू(मार्यू)पि द्वित्रता(तां) परममाहेश्वरः परमभद्वारकमहारा-बाधिराजपरमेश्वरश्रीवप्यपादानुष्धा(ध्या)तः परमभद्वारकमहाराजाधिरा
- १८ जपरमेश्वरश्रीद्यक्तिस्यस्यस्यसुतस्यत्यादानुष्यातः श्लोभितकलिजलिजलिकह्ये(का)भिमृतम्जजनमहामद्दीमंडला-द्वा(लोद्धा)रवैर्यः प्रकटितपुरुषतम(योत्तम)तयाकिगुरु(कीला)ळजारमणोरह(ः)
- १९ परिपृरणपरीः पर इव धनमन्तिः (मूर्तिः) चतुसगरावरुद्धतिमपरिकराशाप्रदानसमयधनलवलपीरयसितुधम-भिमनुमानोपरलावितानिग्मनप्पवनयसा (चतुःसागरावरुद्धक्षितिमुपरिकराशाप्रदानसमयेघनैलावेलपुरीय-सेतुमिवाभिमन्यमानोऽपरलावितनीग्माणोप्ययसा)
- २० दितपारमैश्वर्यकाप(कोपा)कृष्टनिस्निङ्ग(य) निपातिवदिलितकरिकम्भप (कुम्भर्य) लीलुसत्प्रसृतमहाप्रतापव लप्र(पा)कारपरिगतव(ज)गन्मंडललब्धस्थतः(स्थितिः)विकटमि(मि)जदोर्दण्डाव
- २१ लेखिनासर(क)लभूवनाभीगजाज(त)मन्यास्कोटाभिभूतदुग्धसिन्धुफनपण्डवण्ड (फेनपिण्डपाण्डु) यशोवितातेन विद्यितातपत्र: परममाहेश्वरपरमभद्वारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीवण्य L. S.

- २२ पादानुष्यातः परमभद्दारकमहाराजाधिराजपरम(मे)श्वरश्रीशीलााद्दियदेवः सर्व्वनिवसमाद्वापयत्यस्तु वं(वः) संविदितं यपा मयामत्(थामयामाता)पित्रोः पुष्याप्यायनाय विञ्चु
- २३ दत्तप्पुरिविनिर्गतेतुं(वं)शकटवास्तव्यतचार्द्धविद्यसामान्यशाण्डिलसगात्रमैत्रायणीयमानवकसब्रह्मचारिब्राह्मणप-प्पपुत्रब्राह्मणदेविलाय
- २४ सुराष्ट्रेषु अन्तरत्रायां मोरंजिल्जग्रामस्सोपरिकरस्सभृतवातप्रत्ययरसधान्यहिरण्यादेयस्यदशापराधस्सोप्त (व)
- २५ द्यमानविष्टिके(कः)सर्वराजकीयानामहस्तप्रक्षेपणीयः पूर्वप्रचरेवत्रबादेयरहितो भूमिन्छिद्रन्यायेन चेद्रार्क्काण्णेव-क्षितिसरिरार्वतसम
- २६ कालीन: पुत्रपौत्रान्वयक्रमभीग्य उदकातिसर्गेण धर्मदायोः निख(स्सृ)ष्टः यतोस्योचितया ब्रह्मदेयस्थ(स्थि)त्या भुजतःकृततः कर्षयतः प्रदि
- २७ शतां (तो) वा न कैश्चित्रिषेषे वर्षितव्यमागामिभद्रनुपंतिशि(भि)रप्यस्मद्वश्चैरन्थेवा अनित्याने (न्ये)श्वर्या-व्यस्थिरं भानुष्यंस(सा)मान्यं च भूमिदानफलमवगच्छ
- २८ द्भिरयमस्मदायोनुमर पिरिपळियत(मन्तन्यः पिरिपाळियित)न्येश्चत्य(त्यु)क्तञ्च बहुाभेर्वसुधा भुक्ता राजिभस्स-गरादिभिः यस्य यस्य स्था भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं
- २९ फलं ॥ यानीह दारिप्र(य)भयाक्षरेंद्रैर्द्धनानि धर्मायतनीकृतानि ॥ निर्मुक्तमाल्यप्रतिमानि तानि को नाम साध्(पुः)पुनराददी
- त ॥ पष्टिवर्षसहस्त्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥ दूत-कोत्र राजपुत्र श्रीखरग्रहः ॥
- ३१ लिखितमिदं बलाभिकृतवप्पभोगिकपुत्रदिविरपतिश्री रथणेनेति सं. ३७५ ज्येष्ठव५ स्वहस्तोमम

TRANSLATION.

Om! Blessings. From the victorious camp at the village of Purnika, Sri Silâditya, who is devoted to the feet of Sri Bappa, who is possessed of valour capable of saving the globe of the earth from being overwhelmed in the waves of the boisterous sea of Kaliyuga, who having shown himself as the best of men is Purushottama, the lord of Lakshmi (in the case of Purushottama and wealth in the case of the king), who appears as if he were wealth personified (i. e. another Kubera) secretly filling the appalling cavities made by want, who when ordering to raise taxes from the earth surrounded by four occans believes it to be the bridge to the town of wealth of Kubera,* · · · † who settles his rule throughout the world surrounded by the walls of fire-like great glory that spread around emanating from the temples of the enemies' elephants torn to pieces with merciless blows of his sword drawn in anger, who has made as it were an umbrella on himself of his glory as white as the foam of the milky ocean agitated by the Mandara mountain and spreading wide in all directions and depending on his hands.

The sense here is not quite clear as it is; it reflects no credit on the subject of this calegy for the description makes him a heavy tax-gatherer.

[†] The line is not quite clear.

and who is a great devotee of Sankara;—son of Sri Siladitya, who was like a ray of the new moon (?) with its kalas (digits in the case of the moon and "learning" in the case of Siladitya) growing daily, who beautified the Rajyalakshma as the cub of a kesari lion the land of a forest on a mountain, who like the god with the peacock as his sign had a luminous crest for ornament, whose power and glory were very great, who was, like the commencement of the Sarada. adorned with padma (lotuses in the case of Sarada and great treasures in the case of the king) full of pratap (heat and valour), who in battle destroyed the elephants of enemies like big clouds, who like the rising sun on the Udaya mountain diminished (took) the life of enemies opposed to him in battle and who was a great devotee of Sankara; -----son of Sri Silâditya, who had whitened all directions round with his glory as white as the splendour of the moon that made the beds of dolars (flowers) bloom with beauty, who was the lord of the earth with its wide expanse of the Vindhyachala dark with the smearing of Aguruchandana being daily cut (in its forests); ---elder | brother of Srî Kharagraha, whose straight body was embraced by Lakshmî herself openly, as it were, with a view to free herself from the taint of the touch (of other kings), who surpassed all kings by the greatness of his most distinguished conduct, whose pair of feet was covered with the rays of jewels in the crowns of numerous warriors subdued and humbled with his kindness, who pounded his enemies' pride with (his) club-like long and valorous hands, who burnt the whole line of his enemies with his extending lustre, who bestowed wealth on those that loved (him), who with the very enjoyable sight of numbers relieved from accidental misery, free from childishness, ever respecting the Brahmanas conquering the whole earth by unparalleled valour, was like Purushottama, the first god lying on the bed of the waters, with his Gadd and Chakra, who showed many child-like exploits, who ever respected Brâhmanas, who compassed this earth only in one stride, who was like Dharma incarnate setting forth duties of the various Varante and Ashramas, who made his line illustrious by (floating) the white banner of religion hailed with joy by the three worlds, delighted with his satisfying and gratifying the minds of the gods and the Brahmanas, who were deprived by former kings affected with avarice of the spiritual gifts (made to them) by the older sovereigns, who brightened all the quarters with the illustrious glory acquired by the habit of not being satisfied with making constant gifts of large and ascertained villages to Devas, the Bråhmanas and Gurûs according to their merits, who was thus significantly called by the other name of Dharmaditya, and who was a great devotee of Sankara; --- elder brother of Sri Dhruvasena, who adorned with the white garments of fame had accepted as his own the large company of kings devoted to him and conferring on him as her chosen lord the garland indicating the

choice viz. Royalty, who possessed valour unconquerable and enough to bend down all his enemies (like भारतांत्र?), who in due order collected every autumn the annual tribute from the lands of the enemies, adorned with arrows powerfully drawn on bows, whose hearing was lucid with the knowledge of the Sastras acquired even from early age, looking fine with various Varpas, whose ears had also the new superfluous ornaments of jewels, whose hand shone like a bright moss-rose being wet with the water poured from it in the act of giving constant gifts, and shining with various armlets, jewels and other ornaments, whose arms contained within them the whole universe being as it were the barriers to the rising ocean, and who was a great devotee of Sankara;—son of Srî Derabhatta, who constantly bent down before his father in devotion

· · (?), whose head was ever purified as it were by the very white waters of the Ganges of the rays of the jewel-like nails proceeding from the feet (of his father), who showed much skill and wisdom like Agastya Muni, who mocked the wide-spreading halo of the moon with the circle (disc) of his fame which was very white and which had spread in all directions, who was lord of the earth that had Sahyadri and Vindhyachala for her breasts, the nipple (?) being made of their tops blackened by surrounding clouds; ----son of Silâditya, who having a saranga bow in his hand appeared as if he were Krishna himself: brother of the grand-father of the most powerful chakravarti Srî Dharasena the king of kings, whose forehead bore a mark of the crescent moon being caused by the scar left by constant rubbing (of the head) with the earth before the lotus-like feet of his father, whose beautiful ears (particular knowledge of the 'Sruties') were pure on account of the ornaments of Vedic mantras put upon them from his very infancy, whose lotus-like palm was washed in its fore-part with water of Sankalpa for making religious gifts, who was a lover of the earth imposing very mild taxes, like an actual lover taking softly the hand of his young bride, who like the Dhanurveda incarnate had all the targets within his ken, whose command was placed on their heads by princes like so many crest-jewels, and who was a great devotee of Sankara; -----son of Sri Dhruvasena, who meditated on the feet of his elder brother, who surpassed all his predecessors in (point of) good conduct, who in accomplishing things not done by others appeared as if he were a walking personification of Puruśartha, whose mind was full of love for virtues fully ripened, who was accepted by his subjects as another Manu, who had acquired much learning, who was like the moon without its spot all brilliant and the cause of all peace, who was like the sun, that ever shines, on his subjects, the destroyer of all darkness even up to the ends of the quarters by his great lustre, who had the confidence of his subjects, who performed the highest deeds with a purpose, with motive to accomplish various ends and always in accordance with the Sastras, who

was well-versed in matters of peace, and reconciliation, who was highly refined by the advice of those who had grown old in giving proper advice at proper places, who had mastered the (science of) politics and grammar who though possessed of great prowess had a soft heart full of mercy, who though learned in the Sastras was devoid of vanity notwithstanding the knowledge of the Studis, who though attractive was self-controlled, who though a steady friend drove off those who were wicked, who was otherwise called by the significant and well-known name of Bâlâditya (young sun) on account of his having filled the whole world with joy at the time of his rise (coronation), and who was a great devotee of Sankara; ----younger brother of Sri Dharasena, who meditated on his father's feet, who was the great satisfaction of the learned by his acquisition of all sorts of knowledge, who broke down the chariot of the desires of his foes, not well arranged and irregular, with his strength, generosity and liberality, who was of a very pleasant disposition notwithstanding his close acquaintance with all the inner recesses of the world and of all the arts and sciences, who was adorned with unartificial love and politeness, who had destroyed the spirit of rivalry in all his enemies with his arms confident and ready to snatch away (their) victorious standards in hundreds of battles, whose command was praised by all kings, whose pride of being experts in the use of arms was humbled by the fame of his bow, and who was a great devotee of Sankara;——son of Sri Kharagraha. who meditated on his (brother's) feet, who himself bore like a happy bull, only through the pleasure of carrying out his (brother's) desire, the yoke of beautiful and desirable Royalty placed upon his shoulders by his elder brother, who was another Upendra and full of love for him, whose equanimity was never disturbed by fatigue, happiness or love, who was free from the smallest tinge of the desire of insulting others, though his foot-stool was covered with the lustre of the jewels in the crest of numerous sovereigns bending down to the greatness of his valour, the only retaliation who would suffer was the bowing of those that were well-known for their proud exploits, in whom were collected all the pleasant qualities of the whole world, who forcibly drove away all the ways of the Kaliyuya, whose most noble heart was never affected by any of those blemishes that are always found in the mean, who proved himself to be the the first of brave men by depriving innumerable hostile kings of their wealth with his great skill in wielding all kinds of manly weapons, and who was a great devotee of Sankara; ----younger brother of Srî Silâditya, who was a meditates on his (father's) feet, who filled all directions with the lustre of his most wonderful qualities pleasant to the whole world, whose shoulders were brilliant with the clear lustre of numerous battles and with the lustre which accompanies a leader of armies, who bore the great burden of great desires

who though possessed of an intelligence highly purified by a knowledge of the higher and ordinary Vidyas was so placable as to be easily pleased with a good word from any one, who though possessed of a heart whose depth was impenitrable to all people exhibited his most beneficent disposition by his many good deeds, whose fame spread all round by walking on the way of the past kings of the Satyayuga, who acquired the descriptive title of Dharmaditya for his enjoying wealth, happiness and greatness, all made more splendid by his never transgressing the limits of religious duty, and who was a great devotee of Sankara; -----son of Srî Dharasena, who had washed off all his sins in the waters of the Ganges of the rays proceeding from the nails of his father's feet, who was possessed of all good qualities, as if they were forcibly enticed to him by a desire for that greatness which was the source of the life of innumerable friends who astonished all bearers of the bow by (his) natural strength and by his peculiar taet, who maintained all religious grants made by his predecessors, who averted all calamities destructive to his subjects, who was the common abode of Lakshmi and Sarasvati, whose strength was clever in enjoying the wealth of his enemies snatched away from their side, who acquired pure royal fortune by his prowess, and who was a great devotee of Sankara; -----son of Sri Guhasena, who had washed off all his sins by bowing down at the lotus-like feet of his father and mother, who had shown his strength, his sword being his only friend, from infancy, by cutting down herds of mad elephants of the enemics, the great brilliancy of the nails of whose feet was mixed with that of the jewels of the enemies' crowns bowed down by his prowess, to whom the word king was agreeably applicable in its full sense on account of his pleasing the hearts of his subjects by properly following the ways mentioned in all the Smritis, who surpassed Kâmadeva, the moon, the Himâlayas, the oceans Brihaspati, and Kubera, in beauty, brilliancy, steadiness, deepness, intelligence and wealth respectively, who cast off his own ends like a straw in being ever ready to give shelter to those who sought it, who pleased the hearts of learned men, relatives and friends by giving them more than they desired, who was as it were a walking personification of the joy of all the world, and who was a great devotee of Sankara; --- grandson of Sri Bhattarka who had acquired glory by strong and incessant blows of the large and numerous army formed of his allies as well as foes forcibly subdued, who had secured the good-will (of the people) by glorious gifts, respectful treatment and politeness emanating from his power, who had obtained royal fortune by the force of the line of · let this be known to you all that Manavaka Brahmachari Brahmana Devila son of Brâhmana Pappati residing at Vamsakata after leaving Vinchûdasapura, a Chaturvedi of the common Sandilyas Gotra and Maitrayani Sakha has been

granted by pouring down water and as a spiritual gift for the benefit of my parents the village of Moranjijja in Antaratrâ in Saurâshtra with meadow lands, other taxes, the dry and wet crops, juice, grains, gold and other revenues, power to try ten offences, the rights of forced labour and with a prohibition to all the state officials to interfere, and excepting any lands given for gods and to the Bråhmanas according to the Bhûmichhidra maxim (to be enjoyed) as long as the moon, the sun, the oceans, the earth, the rivers and the mountains endure and which may properly be enjoyed by his sons, grandsons and descendants. He may, therefore, enjoy it as a charitable gift is rightly enjoyed, or may cultivate it or cause it to be cultivated, or may alienate it; but none should object to it. All the future kings, my descendants and others, should accept this spiritual gift of ours knowing that power is flitting, human life is unstable and that the advantage of this gift of land is common (to all). It is said that many kings such as Sagara, &c., have enjoyed the earth; but he who is the lord of the earth for the time being enjoys its fruits. What good man pressed with poverty will resume the money given in charity which is like food already eaten and hence Nirmalya (without substance, properly not capable of being resumed). He who makes a spiritual grant of land lives for sixty thousand years in Svarga while he who resumes it or allows it to be resumed lives an equal number of years in Narka. In this affair the dûtaka is Rajyaputra Kharagraha. This is written by Devirapati Srî Haradhana son of Senapati Bappa-Bhojika. The 5th of Jyestha Krishnapaksha Samvat 375. (This is) my own hand.

VII.

Copper-plate found at Gopanath near Taldja under Bhavnagar.

The Valabhi grants as is well known were always written on two pieces of plates and they were for the sake of security joined together with rings. Thus they are generally found together; but the present plate is detached from its fellow; and the missing one being that in which the grant is generally described and the date given, it is plain that the really important portion is not in our possession. The first plate was found at Gopanath, a solitary Siva temple on a projecting point of the south-eastern coast of Kathiavad, being about fifty miles south of Bhavnagar. The plate measures 13" by 10" containing twenty-seven lines and giving a part of the geneology of the Valabhi kings. The composition is Sauskrit prose, the character being Valabhi.

TRANSLITERATION.

PLATE 1.

- स्वस्त(स्ति) वल्लभ(भी)तः प्रसमप्रणतामित्राणां मैत्रकाणामतुल्वलसम्पन्नमण्डलाभोगसंसक्तप्रद्वार-द्यतलब्ध
- २ प्रतापात्प्रतापोपनतदानमानार्ज्वोपार्विजतानुरागादनुरक्तमौलभूत्यश्रेणीवलावातराज्यश्रियः परममाहे
- ३ श्वरश्रीभद्राक्कांदव्यविञ्चन्नराजवैशान्मातृपितृचरणारविन्दप्रणतिप्रविधीताशेपकस्मपः शैशवात्प्रभृति स्युडुदिती
- ४ यबाहुरेव समद्रपरगज्ञघटास्कोटनप्रकाशितसत्त्रनिकषः तत्त्रभावप्रणतारातिनृडारस्रप्रभासंसक्तपा
- ५ दनस्य [र] रिमसँहतिः सकलस्मृतिप्रणीतमार्गसम्यक्परिपालनप्रजाहृदयरञ्ज (ञ्ज)नान्वर्थेराजशञ्दो रू. प्रकान्तिस्थैर्यगा
- ६ [म्भी]र्ययुद्धिसंपद्भिः स्मरजञाङ्काद्विराजोदधित्रिदशगुरूधनेशानातेशयानः शरणागतामयप्रदानपरतया तृ
- ७ णवदपास्ताशेषस्वकार्य्यफलः प्रार्थनाधिकार्यप्रदानानन्दित्वविद्वस्पद्धत्यणायिद्वदयः पादचारीव सकलम्
- ८ वन (म) ण्डलामीगप्रमोदः परमभाहेश्वरः श्रीगुहसेनस्तस्य सुतस्तत्पादनस्र(म) यूससन्तानविनिस्तजान्हर्षी
- ९ जलीचप्रश्नालितारोपकरमपः प्रणयिदातसहस्रोपजीन्यभानसम्पद्रपलोभादिवाधितः सरभसमागाभिकै
- १० (मृंगै) स्पद्दवाक्तिशिक्षाविशेषविस्मापिताखिलधन्द्र: प्रथमनरपतिसमितिस्धानामनुपालविता धर्मादायाना
- ११ मपाकर्ता प्रजोपपातकारिणामुपः ठवानां दर्शयिता श्रीसरस्वत्वोरेकाधिवासस्य सहतारातिपक्षकःभीप
- १२ रिभोगदश्वविक्रमो विक्रमोपसंप्राप्तविमलपार्त्थवश्रीः परममाहेश्वरः श्रीधरसेनस्तस्य सतस्तत्पादानध्यातः
- १३ सकलंबगदानन्दनात्यद्भृतगुणसमुदयस्थीगतसनप्रदिकांडलः समरशतविजयशोभासनाथमण्डलाप्र
- १४ द्युतिभासुरतरांसपाठोद् (व्यू)द्रमुक्मनोरथमहाभारः सर्व्वविद्यापरावरविभागाधिगमविमलमतिरापि
- १५ सर्वतस्सुभाधितळवेनापि सुखोपपादनीयपरितोषः सम (म्र)लोकागाधगाम्भीय्येहृदयोपि सुचरितातिद्यय 🌊
- १६ सुव्यक्तपरमकल्याणस्यभावः खिलीभृतक्क(त)युगनुपतिप्यविद्योधनाधिगतोदयकीचिद्धेभर्मानुपरीधो
- १७ ज्ज्वलतरीञ्चतार्थसुखसम्पदुपसेवानिरुद्धधर्मादित्यद्वितीयनामा परममाहेश्वर: श्रीशीलादित्यस्तस्यानुज:
- १८ तत्पादानुभ्यातः स्वयमुपेन्द्रगुरुणेव गुरुणात्वादरकता समभिलपणीवामिपराजलक्ष्मी स्कंधासक्तां पर
- १९ मभद्र इव धृर्यम्तदाज्ञासम्पादनैकरसत्यैत्रोद्वहन् खेदसुखरातिस्यामनायासितसस्त्रसम्पत्तिः प्रभावसम्प
- २० द्वशीकृतनृपतिशतशिरोदबच्छात्रोपगुद्धपादपीठोपि परावज्ञाभिमानरसानालिक्षितमनोद्वाचि: प्रणातिमे
- २१ कां परिसञ्यप्रस्यातपीरघामिमानैरप्यरातिभिरनासादितप्रति(क्रि)योपायः इत निखिलभुवनामोदिवमलगु
- २२ णर्लेहातिः प्रसमिविषटितसकलकलिविलासितगतिर्ज्ञीचजनाधिरोहिभिरदोधिद्वीषैरनामृष्टात्युन्न(त)हृदयः प्रख्यात
- २३ पौरुवास्रकौरालातिस्यगणातिस्य(तीर्थ)विपक्षक्षितिपतिळक्ष्मीस्वयंत्रहप्रकाशितप्रधीरप्रवप्रथमसंख्याधिन
- २४ मः परममाहेश्वरः श्रीखरमहस्तस्य तनवस्तत्पादानुभ्यातः सकलाविद्यागमविद्वितनिखिलाविद्वजन
- २५ मनःपरितोषातिशयः सत्वसम्पदा त्यागीदाय्येण च विगतानुसन्धानाश(स)माहितारातिपक्षमनी
- २६ (र)थाक्षभङ्गः सम्य(गृप)छक्षितानेकशास्त्रकलालोकचरितगह्बरविभागोापेपरमभद्रम(कृ)ति
- २७ (रक्क)(त्रि)मप्रश्रयाचेनयशोभाविभृषणः समरशतय(ज)वपताकाहरण (प्रत्य)लो(या)द्यवाहुदण्डावि(ध्वंसि) (नि) खि (ल)

TRANSLATION.

Hail! from Valabhipura. From Bhattarka, who had acquired glory by strong and incessant blows of the large and numerous army formed of his allies

COPPER-PLATE FOUND AT COPANATHA NEAR TALÂJÂ UNDER BHÂVNAGAR.

(FIRST PLATE.)

PLATE XXXII.



as well as foes forcibly subdued, who had secured the good will (of the people) by glorious gifts, respectful treatment and politeness emanting from his power, who had obtained royal fortune by the force of the line of subordinate crowned-heads and whose line was not interrupted, was descended his grandson Guhasena, who had washed off all his sins by bowing down at the lotus-like feet of (his) father and mother, who had shown his strength, his sword being his only friend, from infancy, by cutting down herds of mad elephants of the enemies, the great brilliancy of the nails of whose feet was mixed with that of the jewels of the enemies' crowns bowed down by his prowess, to whom the word rajd was agreeably applicable in its full sense on account of his pleasing the hearts of his subjects by properly following the ways mentioned in all the Smritis, who surpassed Kâmadeva, the moon, the Himâlayas, the oceans, Brhaspati and Kubera, in beauty, brilliancy, steadiness, deepness. intelligence and wealth respectively, who cast off his own ends like a straw in being ever ready to give shelter to those who sought it, who pleased the hearts of learned men, relatives and friends by giving them more than they desired, who was as it were a walking personification of the joy of all the world, and who was a great devotce of Sankara. His son was Sri Dharasena, who had washed off all his sins in the waters of the Ganges of the rays proceeding from the nails of his father's feet, who was possessed of all good qualities, as if they were forcibly enticed to him by a desire for that greatness which was the source of the life of innumerable friends who astonished all bearers of the bow by (his) natural strength and by his peculiar tact, who maintained all religious grants made by his predecessors, who averted all calamities distructive to his subjects, who was the common abode of Lakśmi and of Sarasvati, whose strength was clever in enjoying the wealth of his enemies, snatched away from their side, who acquired pure royal fortune by his prowess and who was a great devotee of Sankara; he had a son called Sri Silâditya, who was a meditator on his father's feet, who filled all directions with the lustre of his most wonderful qualities pleasant to the whole world, whose shoulders were brilliant with the clear lustre of numerous battles and with the lustre which accompanies a leader of armies, who bore the great burden of great desires, who though possessed of an intelligence highly purified by a knowledge of the higher and ordinary Vidyas was so placable as to be easily pleased with a good word from any one, who though possessed of a heart whose depth was impenetrable exhibited the most beneficent disposition by his many good deeds, whose fame spread all round by his walking on the way of the past kings of the Satyayuga, who acquired the descriptive title of Dharmâditya for his enjoying wealth, happiness and greatness, all made more splendid by his never transgressing the limits of religious duty, and who was a great devotee of Sankara; he had a brother called Sri Kharagraha, who meditated L. 9.

on his (brother's) feet, who himself bore like a happy bull, only through the pleasure of carrying out his (brother's) desire, the yoke of beautiful and desirable Royalty placed upon his shoulders by his elder brother, who was another Upendra and full of love for him, whose equanimity was never disturbed by fatigue happiness or love, who was free from the smallest tinge of the desire of insulting others, though his foot-stool was covered with the lustre of the jewels in the crest of numerous sovereigns bending down to the greatness of his valour, the only retaliation who would suffer was the bowing of those that were well-known for their proud exploits, in whom were collected all the pleasant qualities of the whole world, who forcibly drove away all the ways of the Kaliyuga, whose most noble heart was never affected by any of those blemishes that are always found in the mean, who proved himself to be the first of brave men by depriving innumerable hostile kings of their wealth with his great skill in weilding all kinds of manly weapons, and who was a great devotee of Sankara; he was succeeded by his son Srî Dharasena who meditated on his (father's) feet, who was the great satisfaction of the learned by his acquisition of all sorts of knowledge, who broke down the spokes of the chariot of the desires of his foes not well arranged and irregular, with his strength, generosity, and liberality, who was of a very pleasant disposition notwithstanding his close acquaintance with all the inner recesses of the world and of all the arts and sciences, who was adorned with unartificial love and politeness, who had destroyed the spirit of rivalry in all his enemies with his arms confident and ready to snatch away (their) victorious standards in hundreds of battles, whose command was praised.



PLATE XXXIII.





A STONE INSCRIPTION IN PRÂCHINA CHARACTERS.

This inscription is found at a village called Jharanavalli Gopa, which is situated to the south-west of the Gopa hills in Lalapur district of the Jamasaheb of Navanagar. It is about 36 miles north-east of Porbandar, a sea-port town on the western coast of Kathiavad. The inscription is to be seen on the left jamb of the door of a ruined temple near the village. The stone on which this inscription is cut measures $21^{\circ} \times 9^{\circ}$ and contains a single line in characters of the Gupta period. Nothing can be made out of it, though some Pandits are of opinion that the letters are bijus of some maintra. There is nothing in it to show the probable date of the inscription.

SURYA DYNASTY.

A Stone Inscription of King Allata in the Temple of Sarnesvar at Udeypore.

Dated Sumvat 1010.

The temple of Såraneśvara, where this inscription is to be found, is a Siva temple near the burning ground at Udeypore in Meywar. It is cut on a slab of fine white marble which is placed on two pillars in the front, outside the entrance of the Rangamandapa of the temple. On account of its being sheltered from the rains it is well preserved. It is of the time of Rånå Allata of the Sisodiâ tribe, giving a geneology of his family, and mentioning the building of a temple to god Muråri, i.e., Vishnu. This shows that the inscription must have been cut for some other temple of which no signs, however, are to be seen in the neighbourhood, and that, therefore, it must have been probably brought to this temple at some later period. It also mentions how the temple expenses are to be maintained. The stone measures 4', 4" × 9" and contains about six lines in old Devanâgari character. The composition is Sanskrit. It is dated Vikrama Samvat 1010, A. D. 963.

TRANSLITERATION.

१ उँ पांतु पद्मांगसंसर्गचंचद्रोमांचवीचयः । श्यामाः किलन्दतनयापूरा इव हरेर्मुंजाः ॥ (१) राज्ञी महा-लक्ष्म्यभिधानविश्वता तदंगजोप्यलुटमेदिनीपतिः । तदीयपुत्रो नरवाहनाभिधः सगुन्दलः सोटक-सिद्धसीलुकाः ॥ (२) सान्धिविग्रहिकदुर्लृभराजो मातृदेवसहितः सदुदेवः । अलृटाच्छपटलाभिनि-युक्तोविश्रुताविप

- मयूरसमुद्रौ ॥ ३ ॥ वसन्तराजाद्विजनगरुद्रौ समूत्रणौ मानपनारको च । रिषिः प्रमाता गुहियोग गर्ग स्त्रिविकमो वन्दिपतिश्च नागः ॥ ४ ॥ मियगधिराजो रुद्रादित्यो वज्रटिलम्बादित्यछन्नाः । अम्मुल संगमवीरसजोण्जाः वैश्रवणाविकमाक्तिम्मोदः (हाः) ॥ (५) संगमवेह्युकनागा जन्जेह्युकवासुदेवदुम्ब-टकाः यच्चक्याद्या दे
- ३ श्री तथा विणिग्देवराजश्च ॥ (६) प्रतीहारयद्य:पुष्पे कद्रहास्रोधराह्यः । धर्माः काष्टिकसाहारः श्रीध-रो वर्टाटस्तथा ॥ (७) हुणश्च कृषुराजोन्यः सर्व्यदेवोपि गोष्टिकः । कृतमायतनं चेद ममात्ये मम्मटे साति ॥ (८) पुण्यप्रवन्धपरिपाकिम(परिपक्तिम)कीत्त्रयोमी संसारसागरमसारिममं गभीरं । बुध्वाद्विराजशिखरोध्यमचीकरंत पोतायमानमि
- ४ दमायतनंमुरारेः ॥ (९) कर्णाटमध्यविषयोद्धवलाटटका अन्येपिकेचिदिह्ये विणजोविश्वन्ति । तैः किष्कृतंमभुरिपोः प्रतिपूजनाय दानंन केनिचदिपिन्यिमचारणीयम् ॥ (१०) द्रम्मभेकं करी द्याचुरणो रूपकद्वयं । द्रम्मार्थविश्वकं शृंगी लाटह्येगुलादको ॥ (११) एकादश्रीश्रुक्कदिनेऽखिलायःकन्द्र्यृतांस्याद्यिटकापणस्य । यूतंधराणामिपेपे
- ५ (टकें) स्यादेकैक शस्तेलपळं च वाणे ॥ (१२) राधनीतां गते माचे रूपकोय चतुःसरं । प्रसाहं मालिक कानों च दानमेतिदिह स्फुटं ॥ (१३) कार्तिकसितपंचम्यामग्रटनाम्मा सुसूत्रधारेण । प्रारब्धेदव-ग्रहं काळे वसुश्रून्यदिक्सक्ये ॥ (१४) दशदिन्यिकमकाळे वैशाले शुद्धसप्तमीदिवसे । हरिरिह नि-वैशितोयं घटितप्रतिमो वराहेण ॥ (१५) तथा निरूपिताशेषश्रामद्छुट (भूपति)ः
- ६ लेखितारी च कायस्था पालवेह्नुकसंबक्षी ॥ (१६) गोपप्रभासमिहिधरनारायणभष्टसर्वदेवाद्याः । अम्मकस-हिताः सर्वे निश्चितमित्र गोष्टिका होते ॥ (१७).

TRANSLATION.

Ом!

May the arms of Harij (Vishnu), black as the waters of the daughter of Kalinda (Yamunâ) and having the waves of the hairs shaking and bristling by their coming in close contact with the body of Padmâ (Lakshmî) protect you. The queen known by the name of Mahâ-Lakshmî; also her son Allata, the lord of the earth; his son called Naravâhana, with Guṇdala, Sodhaka, Siddha and Siluka; Durllabhrâja, the minister of peace and war; Sadudeva, with Mâtrideva; also the famous Mayûra and Samûdra (who were) appointed by Allaṭa and Achchhapaṭala; Vasaṇṭarâja, a Dvija, and Nâgarudra; Mâvasha and Nâraka with Bhûvaṇa; Rishi; Pramâtâ; Guhiśa, and Garga; Trivikrama, Vaṇḍipati, and Nâga; Rudrâditya, the chief of medical men; Vajraṭa Limvâditya and Chhanna; Ammula, Sangama, Virasa and joja; Vaiśravaṇa, Âvika and Bhaktimmoha,; Saṇgama, Vellaka and Nâga; Jajjelaka, Vâsudeva and Dunivaṭaka, headed by Yachchakya; so Devarâja, the local merchant; Yaśahpushṇa, a Pratîhâra*; Rudrahâsa and Râhaṭa†; Dharmma; Kâshtikasâhâra; Śrîdhara, and Vanriṭi; Itūṇa and also Kṛishurâja, also Sarva-

^{*} Pratîhâra, literally, a door-keeper; perhaps also the name of a clan of Rajputs who are now Padbiâra.

[†] Also the name of a clan of Rajputs.

deva, (being) guardians and Mammata (being) the minister, this temple was built. These (personages), whose fame had attained its full maturity by [the continuous series of their meritorious actions, having known the worthlessness of the unfathomable ocean of this world, made this temple of god Murari, produced from the summit of the king of mountains (the Himalayas), into a boat for crossing the said ocean. The gift fixed (or ordered hereunder) for the worship of the enemy of Madhu (Vishnu) should not be refused by the merchants of Karnata,* Madhyadeśa,† IAta,‡ and Takka, or by any other, who enter here, neither by them nor by any one else. An elephant should give one Dramma; a horse two pieces of silver; a horned animal one fortieth of a Dramma; from the shop of a seller of worn-out clothes and ornaments (?) one Tula and one Adhaka.** On the eleventh of the bright fortnight, a small pail (of milk) from the shop of confectioners; one bag from the gamblers, and a pala-fulff from every oil-mill, and at the end of a month, a silver-piece ## from the sellers of dressed-food (?). The sellers of flowers to present a four-stringed garland every day. This temple was begun by a clever carpenter, called Agrata, on the 5th of Kartika Krishnapaksha, 1008, and this Hari whose image is wrought by Varaha was installed here on the 7th of Vaišàkha Suklapaksha 1010. So the illustrious king Allata enjoined all this, and Pâla and Vellaka, two scribes (Kâyasthas) engraved it. Gopa, Prabhâsa, Mahidhara, Nârâyana Bhatta, Sarva-deva and others, with Ammaka-all these are certainly the Gostikas (custodians) here.

II.

A Stone Inscription of King Naraváhana in the temple of Náthá near Udeypore.

Dated Samvat 1028.

This inscription is placed in a temple called Natha's Mandir near Ekalingaji's temple about twelve miles from Udeypore on the way to Nathadvara. The

The district from Râmanátha to Śri-rangapaṭṭaŋa.

[†] i.e.,—the midland country, the country lying between the Himálayas on the north, the Vindhyâ mountains on the south, Vinasana on the west, Prayâga on the cast, and comprising the modern provinces of Allahahad, Agra, Delhi, Oude, &c.—Prof, Monier Williams.

I The district lying on the north of the Decan, comprising the Surat and Broach Collectorates.

[§] No certain information about this.

^{||} i.e., the owner of the animal.

[¶] A measure of weight of gold and silver=100 Palas or about 145 ounces troy.

^{**} A measure of grain, the 4th of a Drona, and equal to 4 Prasthas =16 kundavas = 64 Pasal = 256 karshas == 4,096 Mashas; or containing nearly 7 lbs. 11 ozs. avoirdupois. In Bengal an addaka is equal to two maunds or 164 lbs.

^{††} A Pala is a small ladle containing about 24 tolas.

¹¹ Not quite intelligible as to how it was taken.

stone is built up in the wall, and though inside the temple, has crumbled down in some parts and several of the letters are so mutilated as to make the deciphering very difficult.

There is nothing in the inscription—so far as it can be read—which can reveal to us the purpose of its making, though it mentions the names of Bappa Gohila and his son Naraváhana. The stone measures 2', $11'' \times 18''$ and contains eighteen lines written in old Devanâgari character, the composition being in Sapskrit verse. It is dated Vikrama Samvat 1028, A. D. 972.

TRANSLITEBATION.

ŧ	१ ९— तमाल कुलीनोदानाप्रपन्न : • • • • • •	
ą	~ ~ · · · · · · · · · · · · · · · · · ·	
3	३ प्रांजिल्देः ।	
Ì	¥ · · · दइति ।। यदीयं · · · कक्कितां कंपयत्यक्षमालां	• • • नयनमृकुलो •
	६ • • • प्रतः । अस्मित्रमृद्गुहिलगोत्रनरेंद्रचंद्रः श्रीवप्पकः क्षि	
_,	त हिणाणुक्षोदण्डकमो	* * * * * * • • • • • • • • • • • • • •
		• स्त्रीशुचिरत्नसंचयधतादेवीवशा-
Ę	पा काह ' गुहो ' '	' ' द्यस्याद्यापिमहां ' '
	•	्वरवाजायम्हा तजिबातकुलिशोपमभण्डलामः ।
•		
	द(१)त्यंद्विषामसहनो मृगळोचनानागिष्टोजनिष्टनरवाहनना (मभूपः	
2	८ • • • पुरोह्मिकत • वरापरागैः ॥ अग्रेसराध	शतमुजामालनाभवात च्छत्रध्वजाशु-
	कशिरोमणिमण्डलानि ॥ श्रप्तः पुरामुरभिदामृगुकच्छपृष्टे · ·	
9	९ वितान • • • चत्रोभृगुसहग • • • •	साधिकेनतायोन्मुखागरिसुतापतिम-
	प्रमेथम् ॥ मञ्ज्ञाद्वाय्व्यम्वनस्तनतटोत्तुंक्वतरङ्गोत्तरायस्मिन्मेकळकन्य	
१०	 श्रेषिवशुद्धयेकिमपरंपत्युर्वहीतंमुनेः । यत्यक्षंलकुलोपलक्षितकरः च्छायाः 	वतारं शिवः (१ कायावरोहणमतः पु-
	टमेदनं तदुब्दुद्ववालबङ्कलार्वालपुः । म	
११		
	कुचमुविरचयंतोद्दाममुक्तामणीनाम् ॥ अपिमहति नितम्बे मेखलां र	
१२	<u> </u>	दातवपुषः कुश्चिकादयोन्ये भस्मांगरा-
	गतस्वल्कजटाकिरीटलक्ष्माण आविरमवन्मुनयः पुराणाः॥ तेम्य	ਮੇਲ ' ' ' ' ' ' '
१३		गेल ' · · · · · · · · · · · · · · · · · ·
१३		
	३ · · · · • • • • • • शसमुद्रतात्ममहसः	भुद्धांतरा योगिनः शापानुप्रहभूमयो
	३ · · · शसमुद्गतास्ममहसः हिमशिलावन्धोज्यलादागिरेरासेतोरघुवंशकीर्तिपिशुनात्तीत्रंतपस्त	भुद्धांतरा योगिनः शापानुग्रहभूमयो • • • • • • • • • • • • • • • • • • •
१४	३ · · · · श्रसमुद्गतास्प्रमहसः हिमक्रिलावन्धोज्यलादागिरेरासेतोरघुवंशकीर्किपिशुनात्तीत्रंतपस्त ४ श्रीमदेकलींग · · · पादांयुजमहापूजाकर्म्मकुर्वेतु संयत	भुद्धांतरा योगिनः शापानुग्रहभूमयो

TRANSLATION.

Some four or five lines in the beginning are so much defaced that nothing can be made out of them. Then appears the name of king Bappa who is described to be like the moon among the kings of the Gohila dynasty, and like a jewel on the earth. After that some two lines are gone; they might have contained the names of some kings; because the succeeding line has it that some king had a wife like a mine of diamonds, whose son was king Naravahana who resembled Kârtika-Swâmi, son of Pârvati, and was possessed of great fortune having herds of elephants, whose sword was like thunder-holt, who could not bear the existence of an enemy, and who was dear to women having eyes like those of a deer. Then some portion is effaced and the part which can be read contains nothing of importance, nor does it bear any connection with any part above or In the ninth line it is said that (he or they) sought protection of Sankara, lord of Pârvati daughter of Giri, who favoured Bhrigu Kachchha by his presence and who is incomparable. It is a place where Narmadâ, daughter of Mekala is (flows) with high waves put in motion with the banks of hard breasts of the women of Latadesa bathing therein. Nothing can be made out of the next two lines except that (he or they) received the blessing of the lord the Muni-like Sankara. In the twelfth line it is said that there came Kusika and other munis, who, possessing knowledge, had pure bodies, took delight in Bhasma (ashes) and put ou the barks of trees and crowns of Jata (braided hair). next two or three lines mention the undoing of some curse but do not afford any clear meaning. In the next line occurs the name of Ekalingaji, who is to be worshipped.

It is then said that they caused to be built the temple of ' ' ' on the top of the mountain of Asvathama, which looked beautiful with rows of pinnacles that surpassed the lightening by the splendour of the beautiful gems pearls and, other precious stones set in them. The inscription concludes with saying that it was composed in Vikrama Samvat 1028 by Amrakavi, son of Adityanaga and the pupil of Sri Vedanga Muni, who was the medicine for the disease

of the Syâdvâd*, who always pulled down the theories of free-thinking and who was the thunderbolt to the mountains of pride of the Sugatast. The remaining portion contains the names of some persons, but these cannot be properly made out.

III.

A Stone Inscription in the Temple of Hastamaia at Udeypore in Meywar.

This inscription is to be found in one of the steps leading to the entrance of the temple of Hastamâtâ near a garden called Champâ Bâg about a mile north-east of the town of Udeypore. It is much mutilated and the latter portion has been entirely destroyed, which makes it wholly impossible to decide any probable date of the inscription as well as the name of the king in whose time it must have been written. There are in it two names of the Chitore kings, one of Saktikumâra and the other of Suchi Varmâ, his son.

The stone in which this inscription is cut measures $3', 2' \times 6'$ and contains six lines. The composition is in Sanskrit verses, and the character old Devanâgari.

TRANSLITERATION.

- भुरियो रिव सम्बरसूदनः पुरियोरिव बर्षिणवाहनः । जलनिषेरिव शीतश्विः क्रमादजनि शकिकु-मारत्वपस्ततः ॥ अविधारिव स्थितिलंधनभीदः कर्णाईवास्थिवितार्ण्णीहरण्यः । शंभुरिवारिपुरंकु-तदाधः (हः) श्रीश्चिवममंत्र (पो)******
- २ (म) नोहराकृतिरयं साक्षान्मनोमु (मू) रिव । को वानेन शरैविभिन्नहृदयो वीरोप्यवस्थांतरं नो नीतो न वशीकृतो न निहतः स्वाहांच न प्राहितः ।। सत्यद्मानि विकासयन्नरितमांस्यस्थन्दिशो भास यन्दोषास्थां क्षपवन्गुणान्प्रकटय(स्र)
- न्द्रसीक्तिकगणैदर्वावधु (धू)क्र्मूं (भूं)धिता । पश्यांगांकृतमप्यद्दो महिमतः रफीतान्यगोत्राकरोद्धृतानंततृरत्न
 मण्डनमियं भारं गुर्थ मन्यते ॥ कुले स तेषामभवत् परस्मादप्रात्थितात्थः रफुटिसिक्रूंद्धराजः । स्वतंधवर्गीरुपभुक्तदोषं दत्तं धनं******
- ४ स्नुरजायतायतभूजः पुण्यात्मनामश्रणीः ।। अद्याप्यात्मनि यहुणापमसकुच्छ्दावदातं जनो श्रोगीवैक-मनाः परं पदमिव ध्यायश्चयं तिष्टति ।। धीरत्वं मुसहायतां सरस्रतां स(दृ)त्ततां सत्यतां श्वात्वा यस्य कुरुगिनताञ्च स्******

^{*} The doctrine of the Jainas,

[†] The Buddhists.

I This letter can be read was as A the translation has adopted that reading.



A STONE INSCRIPTION IN THE TEMPLE OF HASTAMÁTÁ AT COENTORE IN MEYWAR.

PLATE XXXV.



TRANSLATION.

- 1. As (was born) Sambara-sûdana of Muraripu, Kârtikeya of Puraripu, and the Moon of the Ocean, so was born, in succession Saktikumâra of him. King Srî Suchivarman, who was, like the ocean, timid in transgressing his limits,* who bestowed, like Karna his gold on supplicants who burnt, like Siva, his foes***
- 2. He of charming appearace, (was) in reality like Cupid. What valiant person, whose heart has been wounded by his arrows, has not been carried to another state (viz. death), has not been brought to subjection, has not been killed and has not been made to obey his orders? Causing the lotuses, namely, good persons, to blow (thrive); dispelling fixe darkness, namely enemies; illuminating the directions; removing the love of vice like night; disclosing merits; * * *
- 3. the damsel—Earth—is adorned with men who are like pearls. Oh! Look at the earth: though she has accepted the ornament of many jewel-like men born in the mines of other prosperous families, she considers it a great burden. In their family was born one whose kingdom was evidently thriving and who did not ask another for wealth; what remained of his wealth after being used or enjoyed by his own relatives was given away * * *
- 5. king Śrî Râhileśvara, marked by the name of his father, implying discrimination or judgement, was raised to greatness. There was the famous Soduka born in the family of Chaülukya. He had a daughter, Mahimâ, the seat of greatness. She was his beloved (wife). Having eyes beautiful like the leaves of blown lotuses, having a face like the full moon, Śrî * * * *

^{*} হিমান, continuance or steadfastness in the path of duty, establishment of good order (in a government).

L. 10.

6. the king was formerly worshipped like the Sun* (or a friend) at every step by whom, loving; whose glory, by the touch of the rays of his favour, bloomed into greatness, who confronted no watery cloudst, and who was made the seat of prosperity by (him) delighted, though (living) far away. Seeing his abilities in the affairs of Government and his wonderful skill uninjured * * *

IV.

A Stone Inscription containing the genealogy of Sisodia Kings of Chilore in Meywar Dated Samuet 1339,

This inscription is cut into a black stone placed in the wall on the left side of Rasiāji's chhatri, which is near the gate at Chitore leading to Gaümukha. The history begins with the great king Bappa and takes us down to Naravarmā. As no impression of the inscription was received, but only a written copy it is difficult to say any thing about the stone itself, still it appears that it must be a very large one from the length of the Sanskrit verses numbering more than sixty. It is dated Samvat 1339. A. D. 1283.

TRANSLITERATION.

॥अश्नमः शिवायः ॥ दश्वदिधिकविलासं चारगीरं नसेंदुचुतिसाहितमिष्टवं सर्वलोकेष्वपूर्वे चरणकमल्युम्नंः -देवदेवस्य पायाद्भवनामिदमपायाच्छ्रीसमाधिश्वरस्य ॥१॥

विश्राणो विलसत्तृतीयनयनप्रोद्दामवैश्वानरञ्जालातापानिवर्त्तिनीभिव शुभा मंदाकिनी मूर्द्धीन कंटालंबितकालकृट विकृतिप्रश्वसिनी चादरात् पीयुषांशुकलाभिव त्रिनयनः श्रेयो विषत्तां सतां ॥२॥

विषमविशिष(स)शस्त्रं शक्तिराचा विलग्ना वपुषि विषदशोचिश्चंद्रमा मूर्कि मग्नः स्मरसमरविसर्पद्रप्येलोलस्य यस्य क्षितियरकटकांते सोवताचंद्रचुष्ठः ॥३॥

सिंद्रभूलीपटलं दधानं प्रत्यूददाद्दाय हुवाशनामं कुंमस्थलं चारगणाधिपस्य श्रेयांति भूयांसि तथातनोतु ॥४॥ प्रत्यिष्यामनयनानयनांबुधारासेवाद्भतः क्षितिभृतां शिरसि प्ररूढः खयः कुंठितारिकरबालकुठारधारस्तं श्रुपद्दे गुद्दिलवंशमणारशास्त्रं ॥५॥

तौर्थैभेदरकंदरैरिव मनोत्द्देशः पुरैः स्वःश्रियोळावण्यैरिव विस्तृतैः सितमणिस्वच्छैः सरोभिश्च यः । द्योमश्रीमुकु रैरिव प्रतिपदं स्कीतो जगत्यंगनासीद्यैकनिकेतनं जनपदः श्रीभेदपाद्यमिधः ॥६॥

बाह्य यत्र विलोद्भवा इव नरा गंधर्वपुत्रा इव स्वर्जाता इव धेनवश्च सुदृशो गीवीणकन्या **इव पंचास्या इव** शक्षिणो मणिरिव स्वरूछ मनो धीमता देश: सोयमनर्गलामरपुरीश्रीगर्वसर्वकृष: ॥७॥

अस्मिन्नागहृदाव्हयं पुरमिलालंडावनीमूषणं प्रासादावलिविभ्रमैदपहसव्हुभ्रांशुकेाटिश्रियं मुक्ताप्रौढमिव क्षितेः श्रिय इव प्रासादपेकेवहं क्रीडामृमिरिव स्मरस्य शाश्चनः शब्येव पीयुषजा ॥८॥

⁴ Mitra is both friend and sun here, and the metaphors, derived from these two significations, are blended—a poetical conceit.

[†] i.e., whose career was in no way obscured by clouds, but was brilliant.

जीयादानंदपूर्वे तिद्द पुरिमलाखंडसें।दर्थशोभि क्षाणीपृष्ठस्थमेव त्रिदश्चपुरमधः कुर्वदृश्चेःसमृद्धया यस्मा-दागत्य विप्रश्चतुरुदिधिमदीवेदिनिश्चिमयूपो वष्पाख्यो वांतरागश्चरणयुगमुपासीत(सिष्ठ) हारीतराश्चेः॥९॥ संप्राप्तान्द्रुतमेकालगचरणांमोजप्रसादात्मलं यस्मै दिन्यमुवर्णपादकटकं हारीतराशिद्दी बष्पाख्यः स पुरा पुराणपुरुषप्रारंभनिर्वाहनातुल्योत्साहगुणो वसृव जगित श्रीमेदपाटाधिषः ॥१०॥

सदैकिलिंगार्चनशुद्धवोधसंप्रातसायुज्यमहोदयस्य हारीतराशेरसमप्रसादादवाप वप्पो नवराज्यलक्ष्मी ।।११॥ निर्मित्रप्रतिपक्षसंबुद्धिरःसंपातिमुक्ताफलश्रेणीपूर्णचतुष्कभूषणभ्रतो निर्माय युद्धस्थलीः यस्यासिर्वरयांचकार पुरतः प्रोद्धतभेरीरयो विद्वेषिश्रियमंजसा परिजनैः संस्तृथमानोन्वहं ।।१२॥

तस्यात्मजः व त्रपतिर्गृहिलाभिधानो धम्माच्छशास वसुधां मधुजित्ममावः यत्माद्धी गुहिलवर्णनया प्रसिद्धां गोहिलयवंशभवराजगणीत्र जाति ॥१३॥

अहितहपतिसैनाशोणितक्षीबनारीहडतरपरिरंभानंदभाजः पिशाचाः गुहिलरूपितसंख्ये न स्मरंति स्म भूयः कुष्तिद्(ध)नानिदानं भीमसेनस्य युद्धं ॥१४॥

दुर्वारमार्राविश्वीखातुरनाकनार्रीरत्युस(त्त)वप्रणयितां गुहिले दधाने भोजस्ततो नरपतिःप्रश्रशास भूमिमुचैः प्रतापकवलीकृतदुर्व्जयारिः ॥१५॥

प्रजावितुरगहेषारावमाकर्ण्य यस्यासहनयुवतिस्रोकेकाननान्तं प्रयाति रुचिरवसनहारैः कटकाप्रावसक्तैर्धवस्यदिर-पस्रावाः कल्पनृक्षस्यमापुः ॥१६॥

केकी करमादकरमादनुसरित मुद्र कि मरालः कराली वाचालश्चातकः कि किमिति तरुशिखासंगतीयं यकोटः नेषा वर्षापनाली विलसीत भुवने किंतु भोजप्रयाणे लक्ष्यं नैवांतरिक्षं चलितहयखुरोध्धृतधृलीपटेन।१७। आसीचस्मादरातिष्टिरद्धनथटापरमरः शीलनामा भूमीशो वीरलक्ष्मीरितरसरमसालिगितरेमरमूर्तिः यस्मित्रद्यापि याति श्रुतिपथमसकृद्धिरमृति याति पूर्वे प्टथ्वाद्याश्चकवीत्तत्वमिद्धित ये भारते भूमिपालाः ॥१८॥

संपूर्वाखिलरोदसी अतितरां यस्याहिलोकांतरं यःशेषोऽगमदुक्कतस्य यशसः शेषः स भोगीश्वरः संजन्ने विशदसृतिह्यिजगतामाश्वारकंदाय च त्राणायामृतकंदरस्य कमलाकांतस्य संविष्टये ॥१९॥

एषविद्वेषिमातंगसंगादघवतीमिव असिधाराजलैः चिक्का जब्राह विजयश्रियं ॥२०॥

विस्कूर्ज्जदस्युग्रतरप्रतापस्तनुश्रिया निर्िजतपुष्पचापः यस्यारिवर्गेरानिवार्यमोजस्ततःश्रितीशोजनि कालभोजः॥२१॥ यस्यावंध्यस्यः स युद्धविषयः किं वर्ण्यते माहदौः खड़ाप्रेण कवंधयति सुभटान् यरिमन्कवंधा आपै गर्ज्जदीर-

करंकरांकवधृतो वि(वे)तालवैतालिकास्तालीस्फालमुदाहरांति च यक्षः खद्गप्रतिष्ठं निश्चि ॥२२॥

काशोकःक च चेपकः क तिलकः काम्रः कवाकेसरः क द्राक्षावलयव्यवस्थितिरिति प्रत्यांथनां वेदम्सु अत्यंतोद्वसितेषु यस्य भयतो दुर्गीतरादागतो वेलस्येण परस्परं विधुरितो दासीजनः पृच्छति ॥२३॥ विपदंतकरस्ततः क्षितेस्दियाद्यः प्रतिपंथिदुर्ज्वयः सुतिमानिव रक्तमेडलो नूपतिर्मेतटनामधेयकः ॥२४॥

दर्णाविष्टविपश्चमालयवध्वश्रोजपीटस्थले पार्थोशं विजयप्रशस्तिमलिखन्नेत्रोदाविदुच्छलात् प्राग्दुर्योधनवाहिनी-मतिरुपसिंहत्य दुःशासनप्रत्यार्थप्रातिपालितामुख्यशः कर्णे दथानश्चिरं ॥२५॥

बारंवारमपारका(वा)रिभिरयं संष्ठावयत्युद्धतः प्रांते मामिति सर्वदैव दधती तं मत्सरं शाश्वतं यत्सैन्याश्च(श्व) खुरोद्धतस्य रजसः साहाय(व्य)मासेट्वी क्षोणीयं परिपूरणाय जळघेरोत्सुक्यमाळंबत ॥२६॥

त्रिपुरांतकपादपंकजाश्रयसेवादरणे इडवतः भुविभर्तृमटस्तदात्मजः समभूदत्र विशाखविक्रमः ॥२०॥ एतक्रिस्वाननादो गिरिगहनगुद्धागाधरंश्वप्रवेद्यादापन्नोनागसद्य स्कृटीमति कथयामास भोगीश्वराय मामेर्भूमा(मामै-धीर्मा)रतोद्यप्रभृति कतिभिरप्यस्य राज्ञः प्रयाणेर्धात्री यात्री स्वमेषा तुरगखुरपुटोत्सावधृठिस्छ्छेन॥२८॥ कृत्वा धारानिपातं निविडपरिलसःकृष्टलश्मीः समंतात् संप्रामास्थानभूमौ विषममर्थेतुदां मृद्धि यस्यासिमेषः आश्चर्ये तद्यदेषां मदनसहचरीश्रीभृतां प्रेयसीनां सीमंतेभ्यो जहाराविरलक्षिमरं सौद्रसिद्ररेणुं॥२९॥ बभूय तस्मादयसिहनामा निदाक(घ)मार्त्तेडसमानधामा दिवातनेंदुपतिमानमास्येक्वाह यस्यारिपुरिधेवर्ग्यः ॥३०॥ कि वर्ण्याकिलसिहाविक्रमकथा यस्योज्जितै(गीजितेः)सेत्रासादपस्त्य भूधरगजाः संपेदिरे दिग्गाजाः(न्)

इंसीगांडमचंडधामराचिरा कीर्तिश्चिरं यस्य च क्रोडीकृत्य निषेवते खिळांमदं ब्रह्मांडमांडं शुचिः॥३१॥ निस्तृं(सिं)शत्रुट्यदस्ति(स्थि)प्रभवपटुकटत्कारताळेक्दारैनृत्यंतः स्कंधभेदच्युत्तर्धारधनैः स्निग्धकाळेयमाजः यत्संब्रामे कवंधा मुदितसहचरीसंगभंग्यामिरामैरानंदस्यमि(दि)रंगक्षितिसुद्दृदि समालोकिता स्वर्गिवर्गैः ॥३२॥

श्रितवतिह्नदशाधिपवारणं पिद्धरवाप्य सितातपवारणं भुवमथप्रशशास महावकः समरमुध्यिन मुजैकसहायकः।३३। तुरंगलालगन्तरावनारप्रवाहयोः संगममृद्धहंति अस्यप्रयाणे निस्तिलापि भूमिः प्रयागलक्ष्मी विभरावभूव ॥३४॥ यः पराक्रमसन्नाददापिते कोधपावके निस्तुं(सि)शसामिधनीभिष्जुंहाय समिधः परान् ॥३५॥ यस्यासिः प्रतिपक्षसेन्यविपिनप्रस्तारसंग्रावनभासभीदिरपारशैष्यंजलभेः कल्लोललीलां दधौ वंशेस्मिन् गुहिलस्य

मेघाविदिते भूपालच्डामणिश्रणिप्र(प्र)हभार्षितांद्रिः(घि)रभवत् लुमाणनामा नृषः ॥३६॥ आकर्ण्य पक्षगीगीतं यस्य बाहुपराक्रमं शिरश्चालनया शेषश्चक्रे कंपं परं मुवः ॥३७॥ शस्त्राणामशनिप्रहारमभितः स्वीकुर्वतां संगरे थातोस्माभिरयाच्य नाक्रमपरे संभेजिरे मौलयः प्राणांतश्चसित-

प्रसारितमुख्व्यक्तद्विजशेणिभिः शीर्षाणि दिपतामतीय जहसुश्चिमायि(नि)ने(ये)नामुना ॥३८॥ यः पृष्ठं युधि सर्वदोपि न ददी प्रस्थिनां नानृतं लोकानां वचनं मनो न हि परस्रीणां कदाचित्रमुः सत्रै-लोक्यजनाश्रयावृतिकृतः स्त्कीतियक्ष्या महाकदः स्वगुणोलुटो नरपतिः क्षोणं तताऽपालयत् ॥३९॥

यात्रिरतं(स्त्रि)शहतारिशोणितजळस्रोतस्थिनीपूरितो मध्ये तिष्ठति पश्चिमांबुधिरसावद्यापि श्रोणयुतिः एतसुष्क-

ररीजेतथुतिभरः सायं लिषामीश्वरः प्रातः प्रातस्दोते कुकुमस्तिः प्राचीमुखं मध्यम् ॥४०॥ अछुटस्य नृपतेरपकर्ते निःसहा रणमहीषु सपक्षाः तन्जेयंति द्यवरीरनुशैलं हर्षवर्णिततदीयचरित्राः ॥४१॥ गौरीनायकमैत्र-ह(ह)ष्टन्ह(ह)दयक्षेलोक्यसन्मानसकोडक्कीडिवविध(द)कीत्तिवरटो लोकाभिरक्षापरः सर्वाक्षीण-

निधीश्वरेगितवलनान् पृष्यैवर्जनैः सेवितो जातोऽस्मान्नरवाहना मुनि पतिर्गैहिहयवंद्यश्रियः ॥४२॥ सर्प्यस्तैन्यखुरोद्धतेन रजसा जनालकोपि(भं)कृतः पाथोधिः पुनरेव यस्य तुरगैर्लालाभिराष्ट्रावितः बृत्यारोपवि-रोधिवर्ग्यवनितावैधव्यदिक्षागुरुर्यक्षासीदिनिवार्यविक्रमभरप्रोद्धतवैरित्रजः ॥४३॥

समस्तिविद्वेषिजनैः प्रकीर्त्तितस्व स्थानशीर्व्यादि परोक्षविक्रमैः दृष्टेपि चास्मिन् खलु मुक्त धैर्वेरप्रेक्षितस्विध जनैः पलायितं ॥४४॥

यः स्थमप्रतिवद्धमंगलयदाः प्रस्तावनीयोजना
 कुर्वतः ॥४५॥
 देतेयानिव शत्रुन् हंतुं धर्मस्य वाधकानुमान् सर्वज्ञादिवतस्माच्छकिकुमारो नृपोजातः ॥४६॥
 भूमीभर्त्तरमुख्य भूमघवतः कौदीयदंभोतिना ये विद्वेष्टिमहीभृतः समभवन्नाछिन्नपक्षाः सुराः तं केचिद्विवृधाः
 श्रवैरपि तथा केचित्समुद्राश्रयैः केचिन्मत्तगजाश्रयैरपि पुनः संजातपक्षा नहि ॥४०॥

त्यागेनार्थिमनोहरेण कृतिनः कर्णोयमाचक्षते यं पार्थे प्रथमं(यं,ति वैरिसुभटाः शौर्थेण सत्त्वार्धकं यं रता-करमामान्ति गुणिनो धैर्येण मर्थोदया यं मेचं महिमाश्रयेण विबुधाः शंसित सर्धोनं(तमम्) ॥४८॥

मुक्तादामावदावयुतिभिरतितरो छोकमुद्धासयंत्म यः कंदः कोर्त्तिवल्लयाः सुरभिगुणभृतो विश्वविस्तारभाजः प्रोढ-प्रत्यायसनाविषमजलनिषेः शोषणेगस्त्यतुरूवस्तरमादाम्रप्रसादः समजानि विदितौ भेदपाटावनीशः ।४९।

१ अस्तुदानाः

भृगुपतिरिवदप्तः श्रत्रसंद्यारकारी सुरगगरित शश्वजीतिमार्गानुसारी स्मरद्दव रतिलोलप्रेयसीचित्तचारी शिक्षिरिव सवभूवजीस्त(वासक)सस्वोपकारा ॥५०॥

जटाधरः सर्वडेंदुः कराळः कुरकत्विति(कृत्तनः)भाति यस्य रणे पाणो खङ्गःकरणांतभैरवः ॥५१॥ तस्मिन्नुगरतैश्वर्ये गोत्रभिन्तुत्यर्धामण्णि उदियाय महीपृष्ठे शुचियम्मा महीश्वरः ॥५२॥

कयोगप्रसरत्तुरंगनख्रश्रुण्णैः क्षमारेगुाभर्येजा(ना)धायि तरंगिषीदिविषदामुघे(द्वे)लपूराकुला स्वच्लाम्मी नवसं-गर्सभृतमुदामानंदजैरश्रुभिः राजुणां पुनरेव संभृतश्रयाः(रोकजनितैः) पूर्णे (च)चक्रेक्षिणी ॥५३॥

गसमृतमुदामानदजरश्राभः राजूणा पुनरच समृतश्रयाः(शाकजानतः) पूण (च)चकाक्षणा ॥५३॥ पत्रैः पत्राचलोनां समजानि रचनाधातुभिः पादरागो भूलीभिः कंदराणां विज्ञदमलयजालेपलक्ष्मीरुदारा गुंजा-

भिर्द्धारवर्ष्ट्या यदरिमृगदशामित्यरण्योपे भूपासैंदिय्ये नैव नष्ट शवरसहचरीनिर्विशेषं गतानां ॥५४॥ यद्यात्रासु रजस्तानुः क्षितिरियं मदाकिनीवारीषु स्नात्वा दीव्यभिवाकरोदिति रवेविवं स्पृशंती मुहुः एतेनैव यदि क्षितीशक्षिरैरस्यैरहंतर्भिता संप्रामेषु तदा दुनीतु भगवान् मामेष भासांपतिः ॥५५॥

वाद विवासक्षित्रस्वरहतात्र्यता वजानमु तदा युनातु समान सावायातः ॥५५॥
ततः प्रत्यिमां सार्थवज्रपातोषमः प्रभुः नरवस्मां महीपालो वसूत्रातुलविकसः ॥५६॥
ब्रह्मांडमांडोदरसंचरेण अमोदाविदु-छुरितामलओः अपारविस्कारसमुद्रवेलाखेलाकरी कीर्तिरमुध्यराकः ॥५७॥
उद्योगे नरवस्मणः स्थगयति क्षोणीरजोमंडले सामस्थन पलायिताः शिशुकुलस्योचैवियोगागिनना प्राक्षादेषु
सम्बिजतस्य भयतो दंदस्यमानाश्चिरं कांतारेषु तु वैरिकेरवदद्यः स्वास्थ्यसमासेदिरे ॥५८॥

त्रस्यदिकपालभालस्थलावेपुलगलस्वेदपूराज्यसेकस्भीतज्यालावलीढाक्षितिवलयगतारातिदुर्घोरचकः यस्य क्रोधान-लोयं गगनपरिसरं गाहते भानुभंग्या संग्रामापास्तदेहान्नीशतुमिव पुरोद्वेषिणः स्वर्गभाजः ॥५९॥

याविद्वश्वप्रवेशोधायतकरिनकरी तिष्ठतश्चंद्वसूर्यो यावत्युण्या पुनीते विमलजलवहा जान्हवी सर्वलोकान् यावद्वर्तुं नियुक्ता भुवि गिरिपतयस्तावदीशप्रतोल्यां नद्यास्कीर्विद्याला गुहिलकुलभवासत्प्रशस्तिछलेन ॥६०॥ अनंतरवंशवर्णनं द्वितीयप्रशस्तौ वेदितव्यं ॥ वेददामां कविश्वके प्रशस्तिद्वितवीमिमां आत्मनः कीर्त्तिविस्कूर्ति-समार्गतिमिवापरां ॥६१॥

सज्जनेन समुस्कीणां प्रशस्तिः विपल्पिनामुना संवत् १३३१वर्षेआषाढशुदि२शुक्ते पुष्ये निःपन्नाः श्रीरस्तु शुभभवतु ॥॥

TRANSLATION.

- 1. Bow to Srî Ekalingaji; bow to Siva. May the two lotus-like feet of Srî Samâdhîśvara, the god of gods, which give great pleasure, which are of a fine white colour, which are bright with moon-like nails, and the like of which is never seen in all the worlds, protect this world from calamity.
- 2. May the three-eyed Sankara, who bears Gangâ on his head as if it were (kept) there to pacify the heat of the blaze of the very furious fire issuing freely out of the third eye, and who bears an auspicious digit of the moon that has nectar-like rays, as if to destroy the effect of the Kâlakuṭa (poison) located in the throat, bless all good men.
- 3. May Chandrachûda who while rolling in the pride of having, on the slope of the Mountain, defeated Smara, has his powerful arrow—the first Sakti (Parvati)—joined to his body and the blazing moon to his head, protect you.

- 4. May the fine temples of Gagapati, which are covered with a large collection of *Sindura* (red lead) and which therefore are as brilliant as the fire to burn difficulties give (you) many blessings.
- 5. I describe the Guhila Vamsa, (dynasty and bamboo-plant) extending in innumerable branches, growing over the head (or top) of all kings (or Mountains), fed with the flow of water from the eyes of the wives of the enemies, and on which has been rendered blunt the keep edge of the axe-like swords of enemies.
- 6. The beautiful Mevâda-deśa, covered over with places of pilgrimage that give pleasure to the mind and are like the caves of the Mandarâchala Mountain, with large cities that bear the beauty of the wealth of heaven, with lakes that are as pure as white jewels and are as it were the looking-glass of the heavenly Lakśmi, and which is the sole abode of female beauty, stands prominent.
- 7. The horses of Mevada are as if dug out of mines, the men are as if the sons of Gandharvas, the cows are as if brought from heaven, the beautiful-eyed ones are as it were the damsels of paradisc, those who bear arms are like lions, and the minds of intelligent persons are like jewels. Thus this country sets at naught all the pride of the free city of the gods.
- 8. In this (country) there is a city called Någahrida which is the ornament of the land of Håkhanda and which rivals the glory of the horns of the moon with its rows of palaces, which is, like a large (invaluable) pearl of the earth, like a lotus, the palace of Lakshmi, like the play-ground of Kāmadeva, and like a bed of the moon, made of nectar.
- 9. May the city (of Någahrida) be victorious, which adds to the beauty of the Hákhanda, and which has, even while on earth, humbled the city of the gods by its great wealth; coming from which the Bråhmana Bappa, who had given up all love for this world, established the Yajnastambha in the Vedi of land situate amid the four oceans, and worshipped the two lotus-like feet of Hâritrâsi Muni.
- 10. Haritrasi gave Bappa a fine golden anklet which he had got as a wonderful fruit of the favour of the lotus-like feet of Ekalingaji. Hence, Bappa, who was fitted by his energy to carry out all that was intended by the old sage (Brahma), became lord of Sri Medapaţa-deśa.
- 11. Bāpā Rāvala acquired new royal fortune by the great favour of Hāritarāsi, who has just got the Sāgujya-mukti (a kind of emancipation of the spirit whereby it becomes one with the universal spirit) by the light received from always worshipping Ekalingaji.
- 12. Whose sword chose as his bride the wealth of his enemies without any effort, having as ornament the courtyard filled with pearls fallen from the heads

of his enemies' elephants which were split open, with drums beating in advance, and with the battlefield as the place of kindling the sacred fire, being ever praised by his followers.

- 13. His son Guhila, who was as glorious as Vishnu ruled his territory with justice. So the line of kings descended from him bore the well-known name of the Guhila dynasty.
- 14. The pisachas experiencing great joy at the close embrace with their wives fattened on the blood of the armies of hostile kings, do not, when the Guhila king conducts a battle, remember the fight of Bhimasena, the cause of the destruction of the Kurus.
- 15. When king Guhila lent himself to the pleasures of enjoyment with the women of heaven who were made desirous by the irresistible arrows of Kamadeva, Bhojaraja, who made a morsel of his enemies difficult to overcome, in the fire of his great bravery, ruled the land.
- 16. The trees of *Dhava*, *Khadira*, and *Poldśa* became like *Kalpa* trees by the points of their thorns catching the fine clothes and necklaces of the females of his enemies who fled into forests on hearing the neighing of his swift horses.
- 17. Why has the peacock become all of a sudden joyful? Why has the goose become mad? Why is the Châtaka chattering? and why is the Bakota getting to the branches of trees? This is not a line of clouds of the rainy season but it is a coating of dust covering the sky, raised by the hoofs of horses of Bhojarâjâ while marching.
- 18. His son was king Silå, who was a destroyer of thick clouds in the form of the numerous dephants of his enemies, whose blithe form was full of the mettle exciting to enjoyment of the Lakshmi of his brave enemies? Even now when his name finds its way to our ears, it makes us forget the name of other Chakravarti-kings of Bhartakhanda like Prithu and others.
- 19. His immense fame after filling all the lands and skies, sent a part of itself to the next world. This part took the form of the purely brilliant Sesa, the support of the three worlds, the protection of the cave of nectar, and the bed of Vishnu.
- 20. He took Jayaśrî after bathing it with water from the edge of (his) sword as if it were polluted by touching the Chândâlas (out-castes).
- 21. His son was king Kâla-Bhoja, whose great prowess was shining in all sides, who surpassed Kâmadeva in comeliness of body, and who was possessed of valour irresistible by his enemies.

- 22. How can those like me describe the battles in which even headless bodies deprive heroes of their heads with the sword—battles of him whose wrath never remained without seeking out its object and whose glory situated in the blade of his sword is every night loudly sung with clappings of hands by the bard-like Vetâls, making a roaring sound and bearing about them skulls of warriors.
- 23. A crowd of maids-servant coming from some fort to the houses of his enemies totally deserted on account of his terror, being astonished and afraid of one another ask where is the aśoka tree? where is the champa tree? where is the tilaka tree? where is the mango tree? where is the keśara tree? and where are gone the Vineyards.
- 24. His son was king Manttata, who destroyed the miseries of the world, who could not be conquered by his enemies, and who with his devoted counsellor was as brilliant as the sun with his red disk.
- 25. He the Påatha destroying at the begining, with great anger, Duryodhana-Vāhini (army defficent to fight with; the army of Duryodhana), protected by Dussana pratyarthi (enemies not easy to control; the enemy viz. Dussasana) and thus conveying for all eternity his gloy into Karna (the ear; Karna) wrote the praises of his victory with the ink of tears dribbling from the eyes of the wives of the proud kings of Målvå on the slabs of their breasts.
- 26. The Earth, which was angry since a long time with the ocean as it quite lawless, often wetted her skirts with its vast water, now became desirous of filling it up with the aid of the dust thrown up by the hoofs of the horses of his army.
- 27. His son was Bhartrbhata, who was strongly devoted to the worship of the lotus-like feet of Sankara, and who was on this earth as brave as Kârtika-Swâmi.
- 28. The sound of his voice, reaching the abode of the Någa, piercing through mountains, forests, and the deep recesses of caves, told Seśanâga distinctly that he should not be afraid of the weight of the earth on his back, as after a few marches of this king from today, the earth dug out by the hoofs of horses will, in the form of dust, be all sent up to the sky.
- 29. It is quite wonderful that his cloud-like sword of thick and shining black lustre while pouring showers (throwing its edge) on the heads of enemies in the battlefields, should have washed away the thick dust of Siūdura from the Simanta of the wives of his enemies, as beautiful as the consort of Kamadeva.
- 30. His son was Aghasimha, who was as brilliant as the sun of hot summer. The wives of his enemies bore faces like the moon by day.

- 31. How is the tale of the bravery of that lion to be told, whose loud roaring terrifies away the elephants in the form of kings, to the elephants residing in the directions, and whose white fame beautiful with its pleasing lustre encircles* the globe of the whole of this Brahmanda like a female swan hatching her egg.
- 32. The crowd of gods, who looked beautiful in company of their cheerful wives, saw with pleasure on the beautiful heart of the earth the headless trunks keeping time in their dance with the crackling sound caused by his sword passing through the bones, and bearing the tough flesh besmeared with thick blood flowing from the cuts on their shoulders.
- 33. On his receiving the white *Chhatra* from his father who had ascended to Indra's elephant, (king) Mahâyaka, whose only assistant at the head of battle-fields was his own hand, ruled the earth.
- 34. When he marched, the saliva from the mouth of the horses and the rut from the temple of elephants flowing together on the earth gave it the beauty of Prayâga.
- 35. Who, in the fire of anger, kindled with the breath of valour, made offerings of the fuel of his enemics with the mantras of his sword.
- 36. Then in this Guhila dynasty known for its glory like the cloud (?) became the famous king Khumana, whose sword has assumed the beauty of the waves of the immeasureable ocean of bravery having gained notoriety by washing away whole forests of the army of enemies, and whose foot appeared beautiful with the rays issuing from the rows of gems in the crown of kings.
- 37. Sesanaga hearing the exploits of his arms sung by the wives of nagas, moved his head, in consequence whereof the whole earth trembled.
- 38. The heads of enemies confronting his blows like those of the thunderbolt, cut off by him in battle, as it were, laughed at Brahma showing the teeth in the act of opening the mouth for giving up the last breath, saying that they had attained to heaven and other lofty places in spite of him.
- 39. Then king Allata full of all virtues ruled the earth, who, though giving everything, did never give his back to the enemies in battles, nor his word in vain to the people, nor his mind to other women; who was like a root on which rests the creeper of fame and who is the support of the three worlds.
- 40. This sea on the west which was filled by the rivers of blood of the enemies killed by him with his sword still appears red in the middle. The sun,

^{*} The kings all left their dominions and went to the skirts of the earth for habitation.

L. 11.

whose brilliancy at the sunset appears coloured by the lotuses in this sea, rises in the east every morning with a saffron-hue giving beauty to the eastern horizon.

- 41. The enemies of king Allata being impotent to show their contempt (towards him) in battlefield treat the Bhilla women disrespectfully who describe his actions with pleasure in each of the mountains.
- 42. His son was Naravahana or Kubera, whose heart was much pleased with (his) friendship with the lord of Gaüri (Sankara), whose pure swan-like fame sports in the beautiful Mānasa (lake Mānasa, and minds) of the three worlds, who is ready to defend his subjects, who is lord of all the undiminished treasures, who is powerful, who is served by holy men or yakśas, and who is the lord of the fortunes of the Guhila dynasty.
- 43. The horses of his army throwing up dust by their hoofs made the sea a mere pool of mud and filled it over again with the saliva from their mouths. He took up the profession of a preceptor to initiate the wives of his numerous enemies into widowhood by destroying the multitude of his enemies with his irresistible valour.
- 44. All his enemies, who related their own exploits behind his back to their wives when they sighed, fled away having lost all patience at his bare sight without even waiting for their family-members.
 - 45. (Almost the whole of this sloka is lost.)
- 46. From him all-knowing · · · Saktikumāra like Saktikumāra born of Sankara to destroy the demons who were lawless and great obstructors of religion.
- 47. He, the Indra of this earth, deprived the Mahibhritas (kings and mountains), who were his enemies, of their pakins (allies and wings) with his Kaüieyambholi (Vajra-like sword). They never regained their allies or wings even with the assistance of the gods, oceans, and elephants mad with rut.
- 48. He the bestower is considered by those who have gained their object to be Karna, by his valorous enemies to be Arjuna for his valour and strength, by the meritorious to be the ocean with respect to his patience and habits of living within bounds, and by the gods to be the mount Meru on account of his splendid glory.
- 49. Of him was born Amraprasad, the lord of the land of Medapata, who was like the root of the creeper-like fame, as white and brilliant as a necklace of pearls spreading light in this world, full of fragrant properties (virtues known everywhere) and extending through the world, who was like Agastya in drying the difficult sea-like forces of his enemies, and who was well-known.

- 50. This king was like proud Parsurama in destroying the Kshatriyas, was like Brihaspati in following the ways of morality, was like Kamadeva in living in the hearts of women desirous of enjoyment, and was like king Sibi in obliging all who came under his protection.
- 51. In the field of battle his hand holds the beautiful sword, which like Kalpanta-Bhairava, bears the well-known braid of hair on its head, has the beauty of the digit of the moon, is formidable, and cuts down the cruel.
- 52. When this king, who was like Indra, attained peaceful greatness (died) then rose the lord of this earth——Suchivarma.
- 53. The dust raised by the hoofs of whose horses marching actively, caused confusion in the celestial Ganges by making its waters rise above the banks. He filled with tears of joy the eyes of those who were pleased with his visit, and with tears of grief those of his foes.
- 54. The beauty of ornamentation in the case of the wives of whose enemies reduced to the condition of mere forest-women was not lost even in forests; for the leaves served for the leaf-like marks on their fore-head, the (dust of) minerals dyed their feet, the dust in the caves acted on their bodies like the besmearing of sandal-wood, and the creepers of Gunjas (abrus precatorius) acted like necklaces.
- 55. In whose marches, the earth, with its body of dust washed in the celestial Ganga, touching the disc of the sun, appeared, as it were, to swear to the effect that if any other king had so satisfied her (the earth) with blood the god sun might burn her.
- 56. His son was king Naravarmå, who was like a stroke of the thunderbolt to his numerous enemics, who was powerful, and whose exploits were great.
- 57. The fame of this king covered with drops of perspiration by travelling through the (Brahmânda) universe, refreshes herself by playing with the waves of the immeasureable deep.
- 58. When the energy of Naravarma covered the people with the large quantity of dust from the earth, the wives of enemies, who fled away from their palaces on account of increasing danger, and who were burning with the great fire of separation from their children, found their rest only in forests.
- 59. The fire of the anger of this king, fed by the butter-like perspiration ozing out from the fore-heads of the terrified Digpâlas, and encompassing the whole of the circle of his enemies on this earth, wanders through the sky in the form of the sun to destroy those of his enemies who have gone to heaven by giving up the ghost in battle,

60. May the wide-spread fame of the Gubila dynasty stand for ever in the form of this eulogy in the *Iśapratoli** as long as the sun and the moon, whose rays are raised to wake the world, endure, as long as the sacred Gangâ flowing with its pure water, sanctifies all people, and as long as the mountains are commanded by God to support the earth.

Further account of the dynasty will be found in another Eulogy. Poet Veda-Sarma composed these two eulogies—the best fruit of his fame. Sûtradhâra Sajjana engraved this inscription. It was completed on Friday the third of Ashāḍa Suda of the year Saṃvat 1331, the Nakshtra being Pushya. May there be prosperity and good.

∇ .

A Stone Inscription of Achalesvara Mahadeva on Mount Abu. Dated Samvat 1342.

This inscription is found in the wall of a verandah in front of a room called the *Matha* of Pujāri Bāvā, to the south of the temple of Achaleśvara Mahādeva near Achalagadha on Mount Ābu. The stone in which the inscription is cut is a square piece of black marble and measures 2'11' by 2'11' containing forty-seven lines. It is very well preserved and gives the genealogy of the Sisodiā kings of Chitore beginning with Bappa Rāvala and ending with Samarasimha, in whose time the eulogy appears to have been inscribed. It mentions the building of a Matha with a golden flag-staff by king Samarasimha, who was the pupil of an ascetic called Bhāvaśankara. The date of the inscription is Samvat 1342 Corresponding to A. D. 1285.

The composition is in Sanskrit verse written in Devanagari character.

TRANSLITERATION.

- र गिडा। उँ नमः शिवाय प्यानानंदपराः सुराः कति कति ब्रह्मादयोऽपि स्वसंवेद्यं यस्य मदः स्वभावविद्यदं किचिद्विदांकुर्वते मायामुक्तवपुः स्वसंगतभवाऽमावष्रदः ग्रीतितो लोकानामचलेश्वरः स दिशतु श्रेयः प्र
- २ भुः प्रत्यहं १सरगार्थं स्वतनुं हुताशमनिशं पद्मासने जुब्हतः प्राणैः प्राजाने नीठलोहितवपुर्यो विश्वमूर्तेः पुरा दुष्टांगुष्टनखांकुरेण हठतस्तजोमयं पंचमं छित्रं भागृशिरः करांबुजतले विभ्रत्सवस्ना
- यतां २अव्यक्ताक्षरितभिरश्वनिजपस्त्यक्तम्यक्रमांश्रमः स्वं देहात्सितिमानमुङ्क्तितमा दानांनुसंवर्षितः यत्कुं-भाचलगस्तपांति वितनोत्यद्यापे भृगवजः प्रत्यूहापगमोन्नतिर्गजमुखो देवः स वोऽस्तु श्रिये
- ४ २किंच श्रुम्यद्वारिधिदार्यमाणशिखरिश्रेणीभ्रमङ्गतलं त्रुट्यद्वयोमदिगतसंहतिपतद्वृद्वांडभांडास्थाते कल्पांतस्य विपर्ययेऽपि जगतामुद्देगमुर्वेदिशस्थिष्ठियनमद्भुतं हनुमतः पायादपायान्य नः ४शाखोपशाखा

^{*} Prateli means threshold or some such thing.

- ५ कुलितः सुपर्वा गुणोचितः पत्रविभूषितांशः इतास्पदो मूर्द्धनि भूधराणां जयस्युदारो गुहिलस्य वंशः ५ यद्वंशो गुहिलस्य राजभगवनारायणः कीर्त्यंते तस्सत्यं कयमन्यथा तपस्तयस्तं संश्रयंतेतरां मुक्तेः करिपतवेत
- ६ सः करतलब्यासक्तदंडोज्यलाः प्राणत्राणियः श्रियः समुदयैन्यस्तापहस्ताः सदा ६ मेदःक्रेदभरेण दुर्ज्यन-जनस्याष्ट्रावितः संगरे देशः क्रेशकथापकर्षणपटुर्यो वप्यकेनोचकैः लावण्योत्करानिर्जितामरपु
- रः श्रीमेदपाटाभिधामाधत्तेस्म स एम दोषनगरश्रीगर्वसर्वेकपः ७ अस्ति नागहृदं नाम सायामिम्ह पत्तनं चके तपासि हारीतराधिर्यत्र तपीधनः ८ केपि झापि परप्रभावजनितैः पुण्यहिविभिर्विभु प्रीणिति ज्वलनं हिता
- य जगतां प्रारम्धयागक्रमाः अन्ये प्राणिनरोधनोधितमुक्ताः पश्यंति चात्मस्थितं विश्वं सद्विजनस्थळीषु मुनयो
 यत्राप्ततत्त्वोदयाः ९ अस्मिन्नेय वने तपास्तिनि जने प्रायः स्वलद्वंधने वृत्तांतं भुवनस्य योगिनयतः
 प्रत्यक्षतः पश्यति हा
- रीतः शिवसंगमंगिवगमाध्यातः स्वसेवाङ्कते वणाय प्राथिताय विद्धिनिलयो राज्यिश्रयं दत्तवान् १० हारीता-किल वणकाँ अधिकलयव्याजेन लेभे मदः क्षात्रं धातृनिभादितीर्थं मुनये ब्राइंग स्वसेवाछ
- २० लात् एतेऽचापि महीमुनः क्षितितले तद्वशसंभूतयः शोभंते सुतरामुपात्तवपुषः क्षानः हि धर्मा इव ११ वन्पकस्य तनयो नयनेता संबभूव रूपतिर्मृहिलाख्यः यस्य नामकलितां किल जाति
- ११ भूभुजो दश्रति तत्कुलजाताः १२ यस्पीय्षमयूजसुंदरमतिर्विद्यासुधालंकृतिर्निः प्रत्यूह्विनिर्जितस्मरगतिः प्राका-स्यरम्याकृतिः गांभीयोजातिसंभृतस्य जलधेर्विस्कोटिताहंकृतिस्तरमाद्गीज
- १२ नरेश्वर: स समभूत्संसेवितश्रीपतिः १३ शीछः सशीलकरवालकरालपाणिभें भुवेन तदनु प्रतिपञ्चलक्ष्मी उत्साहमावगमकं पुलकं द्धानी वीर: स्वयं रस इव स्फुडवद्धदेहः १४ चोडस्त्रीर
- १३ तिलंडनः कुलरूपश्रेणीशिरोमंडनः कर्णाटेश्वरदंडनः प्रमुकलामैत्रीमनोमंडनः तत्सूनुनैयमर्मनर्मसचिदः श्री-कालमोजः क्षमापालः कालकरालककेशधनुदैडप्रचंडोऽजनि १५ छाया
- १४ भिर्वनिताः फलैः सुमनसः सत्पत्रपुंजैर्दिशः शाखाभिद्विजवर्गमर्गलमुजः कुर्वन् मुदामास्पदं तद्रशः प्रवलां-कुरोऽतिरुचिरःप्रादुर्वम्वावनीपालो भर्तृभयक्षिविष्टपतरोर्गर्वाभिहत्तां ततः १६ मुष्टिप्र
- १५ मेयमध्यः कपाटवश्वस्थलस्तदनु सिंहस्नासितम्थरमत्तेमो भूपतिर्जयित १७ तज्जन्मा स महायिकः स्वभुक्षयोः प्राप्तिकसाहायिकः श्रोणीभारमुदारमुन्नतिशर धत्तेस्म मोगीश्वरः यक्नो
- १६ घानलविरकालगमहासि प्रत्यार्थिनोऽनींथनः प्रांचत्यक्षपरिग्रहाकुलिथयः पेतुः पतेगा इव १९ खुंमाणस्य ततः प्रयाणवियति क्षोणीरजोदुर्दिने निस्त्रिक्षोतुष्ठरः सिषेच सुभटान् घारा
- १७ जलेरुव्यलेः तन्नारीकुचकुंकुमानि जगलुश्चित्राणि नेत्रांजनैरित्याश्चर्यमहो महस्तु सुधियामदाणि विस्फूर्जदि १९ अलुटोऽजनि ततः क्षितिपालः संगरेनुकृतदुर्जयकालः यस्य वैरिष्
- १८ तनां करवालः क्रीडयैव जयाते स्म करालः २० उदयति स्म ततो नरवाहनः समितिसंद्धतभूपतिवाहनः विनयसंचयसोवेतदांकरः सकलवैरिजनस्य भयंकरः २१ विकमिष्कृतिकेश्रप्रतिभ
- १९ टनीतेस्तथा गुणस्कीतेः कीर्तिस्तारकजैत्री शक्तिकुमारस्य संजब्ने २२ आसीत्तते नरपतिः शुचिवर्म्मनामा युद्धप्रदेशरिपुदर्शितचंडभामा उचैर्महीभरशिरःसु निवेशितांग्नेः शंभो
- २० विशास इव विकाससमृतश्रीः २३१वछाँके शुचिवर्म्मणि स्वसुकृतैः पौरदरं विश्वमं विश्वाणे कलकठाकेन्नर-वध्सर्गातदोर्धिकमे माद्यन्मारविकारवैरितरुणीगंडस्थलीगांडुरैबंझांडन
- २१ रउम्मेणा धविलतं क्रुभ्रेयंद्योभिस्ततः २४जाते सुरस्त्रीपरिरमसोख्यसमुःसुके श्रानरवर्म्मदेवे ररक्ष मूमीमथ कीर्तित्वमा नरेश्वरः सकसमानधरमा २५ कामधामनिकामतापिनि तपेऽमु

- २२ भिमन्द्रपे सागिणि स्वःसिधोर्ष्जलसंप्लुते समयति स्वर्त्धांकवामभूवः दोदिवद्ययमग्नविरिवसतिः क्षाणिश्वरो वैरटश्वके विक्रमतः स्वर्पाठविलुङन्मृक्षीश्वरद्वेषिणः २६ तस्मिन्नुपरते साद्ये निहताशेषविद्विषि वैरिसि-
- २३ हस्ततश्चके निजं नामार्थवद्भवि २७ ब्युडोरस्कस्तनुर्मध्ये द्वेडाकंपितमूधरः थिजयोपपदः सिंहस्ततोऽरिक-रिणोऽयधीत् २८ यन्मुक्तं हृदयांगरागसहितं गौरत्वमेतहिषकारीभिर्विरहात्ततोऽपिसमभूत् किंकणिका-
- २४ रक्षमः धत्ते यस्कुसुमं तदीयमुचितं रक्तस्वमाभ्यतरे बाह्ये पिजरतो च कारणगुणब्रामोपसंबर्गणं २९ ततः प्रतापानळदग्धवैरिधितोश्चमौत्यमौतीरसेन दृषोऽिरिसिंहः सकलासु दिशु लिलेख वीरः स्वयसःप्रशस्तिम्
- २५ ३०लोचनेषु सुमनस्तरुणीनामंजनानि दिशता यदनेन वारि कल्पितमहो वत चित्रं कञ्बलं हृतमरातिबधूनां ३१ रुणोत्तमांगोपलकांतिकृष्टप्रकाशिलाद्यपदपीटः अमृदमुष्मादध चोडनामा नरेश्व-
- २६ रः सूर्यसमानधामा ३२ कुंभिकुंभविलुठत्करवालः छंगरे विमुखनिर्मितकालः तस्य सूनुरय विक्रमसिंहो वैरिविकमकथां निरमार्थात् ३३ मुजवीर्यविलाखेन समस्तोष्धृतकंटकः चक्रे भृवि ततः क्षेम क्षे-
- २० मसिंहो नरेश्वरः ३४ रक्तंकिचित्रिपीय प्रमदपरिलसस्पादिविन्यासमुग्धाः कांतेस्यः प्रेतवश्वो ददाते रसभरो-द्गारमुद्राकपालैः पार्व पार्व तदुचैमुदितसहचरीहस्तविन्यस्तपात्रं प्रीतास्ते ते पिशा-
- २८ चाः समरमुति यशो यस्य संव्याहराते ३५ सामंतासिंहनामा कामाधिकसुंदरसर्वशरीरः भूपाछोऽजनि तस्मा दपद्वतसामंतसर्वस्वः ३६ षोमाणसंतातिवियोगविरुक्षरुक्षमां सेनामद
- २९ ष्टविरदो गुहिलान्वयस्य राजन्वती वसुमतीमकरोत्कुमारसिंहस्तते। रिपुगतामपहृत्य मृय: ३७ नामापि यस्य जिष्णोः परबलमथनेन सान्वयं जक्षे विक्रमदिनीतश्चर्युर्वपतिरमृत्मथनार्षे
- २० होऽथ २८ कोशास्थितिः प्रतिभटक्षतज्ञं न भुक्ते कोशं न वैरिक्षिराणि निर्पायमानः संप्रामसीमानि पुनः परि-रभ्य यस्य पार्गि दिसंश्रयमवाप फलं कैपाणः ३९ शेषनिःशेषसारेण पद्म
- ३१ सिंहेन भूभुजा मेदपाटमही पश्चात्पालिता लालितापिच ४० ध्यादीर्णवैरिमदसिधुरकुंभकूटनिष्ठ्यूतमीक्ति-कमणिस्तुटवर्णभाजः युद्धप्रदेशफलिकासु समुल्लिलेख विद्यानयं स्वमुजवीररसप्र
- २२ वंधान् ४१ नड्लम्, लेक्खेवाँ हुलक्ष्तीस्तु हुकक्षेन्यार्णवक्कंभयोतिः आस्मिन् सुराधीशसहासनस्थे ररक्षः भूमीमध जैत्रासिंहः ४२ अद्यापि संघकवश्रुक्षिरावमत्तसं शृणमानरमणीयरिरंभणेन आ
- ३३ नंदमंदमनसः समरे पिशाचाः श्रीवैत्रासिहभुजिवकममुद्देशणंति ४२ धवळवितस्य यशोभिः पुण्येभूमंडलं तद-मुं विश्विताहितभृशशंकस्तेजःसिंहां निरातंकः ४४ उतं
- २४ मौक्तिकवीजमुक्तमभुवि त्यागस्य दानांबुभिः सिक्त्वा सहुरुसाधनेन नितरामादाय पुण्यं फलं राहाऽनेन कृपा-णकोटिमटता स्वैरं विगाह्य श्रियः प्रश्नात्केषि विवादिता दिशि दिशि
- ३५ रकारा युवोरासयः ४५ आधकोडवपुः कृपाणविलसहर्श्नकुरो यः श्रणान्मग्नामुद्धरतिस्म गुर्वनसम्द्रीमुबैस्त रुकार्णवात् तेजःसिंहसूतः स एव समरः श्रोणीश्चरप्रामणीराधन्ते विलक्षणयोर्धु
- ३६ रमिलागोले बदान्योऽधना ४६ तालीमिः स्फुटत्यैतालरचनासंजीवनीभिः करद्वद्वोपात्तकवंधमुग्यश्चिरसः सैनर्त्रयेतः प्रियाः अद्याप्युबदराक्षसास्तवयदाःखंडं प्रातेष्ठं रक्षे गार्वेति प्रति
- ३७ पक्षशोणितमदास्तेजस्विसिहात्मज ४७ अप्रमेयगुणगुंपकोटिमिर्गाढवद्धवृपविष्रहाकृतेः कीर्त्यते न सकला तव स्तुतिर्प्रथगौरवमयात्ररेश्वर ४८ अर्बुदो विजयते गिरिह
- ३८ बैदैनसेवितकुलाचलरतं यत्र घोडशविकारविषाकेरुङ्कितोऽकृत त्रषासि वसिष्ठः ४९ ह्रेशविशविमुक्तदांत-जनयोः सद्भुक्तिमुक्तिप्रदे लक्ष्मविष्माने पुण्यजन्तुतनयासं
- ३९ सर्ग्गपूर्वात्मिन प्राप प्रागचलेश्वरत्वमचले यस्मिन् भवानीपतिर्विश्वन्यप्तिविभाव्यसर्वगतया देवश्वलोपि प्रभुः ५० सर्वसीदर्श्वसारस्य कोपि पुंज इयाद्भुतः अयं यत्र

१ भी, २ सी. ३ इत, ४ व. ५ वा.

- ४० मठित्तष्ठत्यनादिस्तापसोचितः ५१ यत्र कापि तपस्थिनः सुचरिताः कुत्रापि मर्त्याः कचिद्रीर्वाणाः परमास्म-निर्वृतिमित्र प्राप्ताः क्षणेषु त्रिषु यस्याद्योद्रादिमर्बुदेन सहितां गायं
- ४१ ति पौराणिकाः संघत्ते स खलु अणत्रयमिषांक्षेलोक्यलक्ष्मािमिह ५२ जीर्णोद्धारमकारयन्मठिममं भूमीश्वर आसर्णादेवः श्रीसमरः स्वभाग्यविभवादीष्टो निजश्रेयसे किचारिम
- ४२ न्यरमास्तिको नरपतिश्रके वसुभ्यः कृपासंश्विष्टः शुभभोजनस्थितिमपि प्रीत्या मुनिभ्यस्ततः ५३ अच्छेश्रदं-डमुचैः सीवर्णं समरभूपालः आयुर्वायुचलाचलमिह हष्ट्रा कारयामास ५४
- ४३ आसीद्भावाग्निसामेह स्थानाधीराः पुरा मठे हेलोन्मूलितसंसारत्रीजः पाशुपतैर्वतैः ५५ अन्योन्यवैरिवरहेण-विशुद्धदेहाः स्नेहानुबंधिद्धदयाः सदया जनेषु अस्मिन् तपस्यति मृगे
- ४४ द्रगजादयोऽपि सत्त्वाः समोक्षितविमोक्षविधायितत्त्वाः ५६ शिष्यस्तस्यायमधुना नैष्ठिको भावशंकरः शिय-सायज्यस्यायाय कुरते दुष्करं तपः ५७ फलकुसुमत्तम्-
- ४५ दि सर्वकाळं वहंतः परमनियमनिष्ठां यस्य भूमीरुद्योऽनी अपरमुनिजनेषु प्रायशः सूचयंति स्लिछित्तविषयदः त्तरर्वदाद्रिप्रस्ताः ५८ राज्ञा समरसिंहेन भावशंक-
- ४६ रशासनात् मठः सौष्णदंडेन सहितः कारितोऽर्बुदे ५९ योऽकाषीदेकिस्मिन्नवनिविदेतश्रीसमाधीशवक-स्वामित्रासादबृदे प्रियपट्तनयो वेदशम्मी
- ४७ प्रशस्तीः तेनैषापि व्यथायि स्पुटगुणविशदा नागरज्ञातिभाजा विष्रेणशिषविद्वज्जनहृदयहरा चित्रकृटस्थितेन ६० यावदर्गृदमहीधरसंगं संविभात्तं भगवा
- ४८ नच्छेशः ताबदेव पठतामुपजीव्या सत्प्रशस्तिरियमस्तु कधीनां ६१ लिखिता शुभचंद्रेण प्रशस्तिरियमुख्वला उत्कीर्णा कम्मीसिंहेन सुवधारेण धीमता ६२
 - सं॰ १३४२ वर्षे मार्गशुदि १ प्रशस्तिः कृता

TRANSLATION.

- 1. Aum! Aum! Salutation to Siva. May the lord Achalesvara, whose person is free from mundane illusion, who produces in his devotees dislike for worldly existence, and whose greatness, by nature clear and capable of being known by himself alone, even Brahma and many other gods, absorbed in the pleasures of contemplation, have a slight knowledge of—glaciously confer on the people final beatitude every day.
- 2. May he—whose body is dark-red (viz. Siva), who, in times of old emanated from the universal Spirit when it was incessantly offering, in the *Padamāsana-posture, to his own form—Agni or the sacrificial Fire—the vital airs (as oblations) for the sake of creation, and who bears in the palm of his lotus-like hand the fifth luminous head of the Creator (Brahmā) cut off violently with the forepart of the nail of his wicked thumb,—protect you.

o पद्मातन is a particular posture in religious meditation, sitting with the thighs crossed with one hand resting on the left thigh, the other held up with the thumb upon the heart, and the eyes directed to the tip of the nose,—Prof. M. Williams.

- 3. May the elephant-headed god, whose greatness consists in the removal of obstacles and on whose hill-like temples a swarm of bees,—numbling their prayers in inarticulate accents and in deep buzzings, setting aside all other labour and work, and nourished by the fluid cozing out of the temples (in the rutting season) being desirous of removing blackness from their bodies,—is practising penance up to this day, be for your welfare.
- 4. May the marvellous jumping of Hanûmân over the ocean,—during which the earth is quaking on account of the ranges of mountains* torn asunder by the surging ocean, during which the union of the sky with the earth is being broken (by his jumping), during which the universe is in the state of falling down, and which intensely causes construction to the world even though it is not the time for its final dissolution,—protect us from calamity.
- 5, Victorious is the noble dynasty† of the Guhilas, which is full of branches and sub-branches, which consists of good members ‡, which is worthy on account of good qualities,? the shoulders || of (the members of) which are adorned with the feathers (of the arrow), and which has taken up its position at the head of kings ¶.
- 6. That the dynasty of the Guhilas is celebrated as the Venerable Nåråyana amongst kings is true, otherwise why do the kings,—who hold the staff of freedom (given to them by the lord Guhil, as also salvation by Nåråyana), ** who appear glorious on account of the staff (of royalty or of sannyasta) which they hold in their hands, whose minds are devoted to securing the safety of their lives, and who have given up plundering with the rise of fortune,—always flock round it for protection?
- 7. This country which was, in battle, totally sub-merged in the dripping fat (medas) of wicked people by Bappaka, which has skilfully banished the very name of misfortune (from its precincts), which has excelled paradise itself by

^{*} The oceanic mountains are meant here.

[†] There is a double-entender on the word IN which means "dynasty" as well as "Bamboo." All the crithets in the text are susceptible of a double interpretation and their meanings as applied to "Bamboo" are where necessary, given in the foot-notes below.

[†] पनन, the division of a dynasty or the joint of a bamboo.

[§] Tw, quality or the bow-string: the bamboo is "fit for the bow-string" and the text may also mean that the kings were "well up in archery."

Or "whose parts were adorned with leaves."

TOr "which (viz., the bamboo) has taken root on the summit of mountains."

⁶⁰ Freely: "who resolutely defended the poor or had sufficient strength of mind to take measures for the salvation of their souls." The latter half of the verse applies to the kings seeking shelter of the Guhil as also to persons seeking of Nåråyana final absolution from the bonds of pain.

its excessive splendour, and which has deprived all other cities of the pride of their glory bears the name of Srî Medapâţa.

- 8. Here there is a large town named Någahrida where Hårîta-råsi, whose wealth was austerities, performed penance.
- 9. Where some, who have begun a series of sacrifices for the benefit of the world, propitiate, in some places, the great (or powerful) Lord Agni with the oblations of their merits produced by their superior powers, (while) other sages, who have known happiness from the retention of their Pranas, having experienced the rise of Truth, see, in retired or lonely spots, the whole universe as located within themselves.
- 10. In this very grove, where ascetics, whose fetters (of worldliness) are for the most part loosened, see, as it were before their eyes, through the strength of yoga, the incidents of the world; Harita who was an abode of the Siddhis and who became united with Siva (Universal Spirit) after the relinquishment of his body, granted regal fortunes to the famous Bappa in return for services rendered.
- 11. Assuredly from Brahmâ-like Hârita, Bappaka obtained, in the shape of an anklet, the luster of a Kshatriya,* and gave the sage, his devotion his own Brâhmanical lustre†. Thus even till now, the descendants of that line, shine on this earth, like Kshatriya-hood in human form.

आनन्दपुरसमागतविप्रकुलानन्दनोमहीदेवः । जयतिश्रीगृहदत्तःप्रभवःश्रीगृहिलवंशस्य ॥

L. 12.

o i. e., Kshatriya-hood.

[†] i. c., Brahman-hood or rather the merits (punya) he had obtained as a Brahmana which he supposed himself to be at first. A tradition tells us :- "When Siladitys the last king of Vallabhi, who was begotten on a Brahmani by Sarya, was killed by his enemies, he left behind him a widow. Pushpavati, who was pregnant. When she heard of her husband's death, she was on Arasur fulfilling a yow at the temple of Amba Bhavani. The bereavement broke her heart and she resolved on passing the rest of her life in the jungles there. In course of time she gave birth to a son in a cavera (guha) and to commemorate this incident she called him Guhaditya. Having entrusted this young child to Brahmanas to be educated after the manner of kings, she became a Suttee. When Guhaditya grew up, he became king of the Bhills of Bhander, and being brought np by the sacerdotal class, he and his son, Bâpâ Ráol,---hecame Brâhmanas in their habits and modes of life. Thus it was that Bâpâ Râol happened to serve Hârita. Muni when he was performing his austernies. Harita had been given a golden ring by Ekalingaji when he had propitiated the god by the rigidity of his austerities. The sage in his turn gave the ring to Bapa Rael when he had pleased him by constant attendance. At the time of receiving the gift the Råel remarked that he did not know what to do with the gold ornament which, he said, besitted a Kehatriya only. Where upon Harita endowed him with the lustre of a Kshatriya, and he on his part gave up unto him his Brahmana-ship." The following couplet from Ekalingaji Mahatmya of Maha-Rana Kumbha-Karna is quoted here in support of the above. :-

[&]quot;Victorious is Śrî Guhadatta, the founder of the Guhils Race, the delight of the families of Brâhmanas and come from Anandapura (Wadhwan=Vardhamâna)."

- 12. The son of Bappaka, a master in politics, became king (and was) called Guhila; the race bearing whose name is verily continued by kings born in his family.
- 13. Of him was born King Bhoja whose intellect was as brilliant as the rays of the nectar-producing moon, whose ornament was the ambrosia of learning, who had restrained the course of Love without any obstacle, whose form was very lovely, who broke the pride of the ocean possessed of depth and greatness, and who worshipped the Lord* of Lakshmî.
- 14. After him Sîla, who was good-natured, whose hand was terrible with a sword, equally powerful with him, who was like the sentiment of Heroism itself distinctly incarnate, and who exhibited horripilation indicative of the emotions of energy, enjoyed the wealth of his enemies with (the prowess of) his hand.
- 15. (Then) was born his son, King Srî Kâlabhoja, who broke the hearts of the Choda-women,† who was the head-ornament of a number of noble princes, the chastiser of the lord of Karnata, who gratified the mind with the love he had for the skill of a good ruler, who was intimate with the essence of politics, and who was terrible with his bow as merciless and dreadful as that of Death himself.
- 16. Then was born in his family King Bhartri-bhata, who delighted women by his protection (lit., shade,) the Pandits with presents (lit., fruits,) the regions of space with his sword (lit., leaves,) and the class of twice-born‡ with arms (lit., branches), who was possessed of arms as powerful as the bolts (of gateways), was a powerful scion (lit., off-shoot), and was very beautiful, and who thus deprived the heavenly tree (Kalpa-vriksha) of its pride.
- 17. After him came the victorious king, Sinha (lion), whose (slender) waist could be measured with a span, whose chest was as broad as the leaf of a door and who was the terror of wild elephant-like kings (in the case of the lion the terror of the mad elephants roaming on mountains).
- 18. Born of him Mahâyika, the lord of kings, possessed of the only assistance obtained from his own arms, whose mischievous enemies unable to curb their senses, rushed forward and fell like butterflies, into the flame and sparks of his flery wrath, bore the great weight of the earth with his head ever held up.
 - 19. Then the sword of Khummana, like a cloud in his sky-like march,

[•] Viehnn

[†] Chola or Choda----a people in Southern India on the Coromandel Coast, in the province now called Tanjora.

[‡] A double entendre meaning Brahmans and birds.

bathed the brave warriors with pure showers (dropping) from its blade, on a day (rendered) cloudy (as it were) by the dust (raised) from the earth (by his army); and at the same time, washed off the Kunkuma (saffron) on the breasts of their wives variegated (or speckled) with the collyrium of their eyes: this wonder even upto now the minds of the intelligent fills with astonishment,

- 20. Of him was born king Allata who imitated indomitable death in battle and whose terrible sword vanquished, as it were in sport, the army of his foes.
- 21. Of him was born Nara-vâhana who carried away the chariots and horses of kings in battles, who worshipped Siva with great reverence, and who was the terror of all his enemies.
- 22. Then the fame of Saktikumara, who baffled the politics of all his enemics and who shone with his good qualities, became star-conquering.*
- 23. As Viśākhat (was descended) from Sambhu whose footsteps rested on the summits of lofty mountains, (so) from him who held under his foot the heads of all princes, was descended the king called Suchivarman whose fierce valour was displayed before his foes on the battle-field, and whose glory was increased by his exploits.
- 24. When Suchivarman attained, in heaven, by his own merits, to the glories which belong to Indra, and when the exploits of his arms began to be sung by the wives of the Kinnaras with their melodious voice, Naravarman whitened (or illumined) the universe with his brilliant fame which was as white as the checks of the young wives of his enemies (agonizing) under the pangs of mad love. \$\frac{1}{2}\$
- 25. When king Naravarman became anxious to have the company and embraces of the celestial damsels, king Kîrtivarman, who resembled Indra, protected the earth.
- 26. The king having taken pleasure in penance excessively rigid and having plunged (himself) in the waters of the river of heaven, (and) sporting with the celestial damsels? king Vairața, pulling down the abodes of his enemies with his two arms made for a long time through his valour the heads of his enemies roll under his foot-stool.
- 27. This king having died, after reducing all his foes, Vairi-sinha (=a lion to his enemies) made his own name full of significance on this earth.

o i. e., surpassed the stars in brilliancy. It reached so fer and wide.

[†] Kârtikeys, the god of war, was called Višâkha, because the deity was reared by Višâkhâ, the asterism, personified.

[!] Their husbands being dead.

[§] i. c., having died.

i. e., he did not belie his name,

- 28. Then did Vijaya-sinha (lit., Sinha preceded by [the word] Vijaya), who was broad chested and slender in the waist, and who made the kings tremble (before him) by his (lion-like) roar, kill his enemics who were like (so many) elephants.
- 29. Has the appearance of the Karnikara* been produced from the golden colour covered with the (red) cosmetics on the breasts of the wives of his enemies both removed by them (in their widow-hood) on account of their separation (from their husbands)? For, its flower fitly wears its reduces inside and its yellow tinge outside—thus resembling the qualities of the cause.
- 30. The valiant king Ari-sipha then wrote on the regions of space the culogies of his own glory with the ink made out of the smoke (rising from the corpses) of the hostile kings who were burnt by the fire of his majesty.
- 31. Oh! how wonderful the water created by this man, for while it supplied collyrium to the eyes of good men, washed it off from those of the wives of his foes.
- 32. Then from him descended king Choda whose lustre equalled that of the sun and whose foot-stool of gold was illumined by the great light of the gems on the heads of kings.
- 33. Then his son Vikrama-sinha (lit., "valour-lion,"), whose sword played upon the heads of elephants, and who was like death incarnate to his oponents, supplied (matter for) the history of his exploits against his foes.
- 34. Then did king Kshema-sinha, extirpating all seditious persons by the feat of his powerful arms, bring security on the earth.
- 35. The wives of goblins, having drunk some blood, and maddenned, with their foot faltering under intoxication, give it to their husbands in skulls emitting large quantity of blood; the goblins, in their turn having repeatedly drunk of the cup-held in the hands of their delighted female companions, and being highly delighted, sing loudly his glories on the battle-field.
- 36. Of him was born the king of the name of Sâmanta-sinha, all whose features were more beautiful than Cupid's, and who deprived his neighbouring monarchs (sâmantas) of everything.
- 37. Then Kumara-sinha, recovering the lands which had gone to (=been taken by) the enemy, once more gave them a (real) king and made his army, whose splendour had been dimmed (=tarnished) by its separation from the

^{*} The name of a tree-Pterospermum acerifs olium.

[†] By killing their husbands.

discendants of Khumana, such as knew no separation from the dynasty of the Guhilas.*

- 38. Then succeeded the victorious king Mathana-sigha who humbled his fees by his prowess and whose name became possessed of its etymological significance; by his killing (lit., churning) the armics of his enemy.
- 39. The sword while in the scabbard does not taste the blood of hostile heroes and while drinking their blood does not reside in the scabbard, but when grasped by the hand of this king on the field of battle its blade tasted of both.
- 40. The land of Medapâța was afterwards protected and also tenderly festered by king Padma-siņha who possessed all the strength and virtue of Sesha.
- 41. On the tablets of the battle-field this learned king engraved the songs (celebrating) the sentiment of heroism of his own arms in bold letters (formed by) the pearls scattered from the numerous broken frontal bones of his enemy's furious elephants.
- 42. He having occupied the (heavenly) throne along with the monarch of the gods (Indra) & Jaitra-sinha, the prowess (lit., splendour or good fortune) of whose arms rooted out Nadula, and who was the sage Agastya of the occan-like arms of the Turushkas protected the earth.
- 43. Even now the goblins, whose minds are glutted with pleasure on account of the embraces of their wives who are reeling by being intoxicated with the blood of the armies of Saudhaka, sing, in battle, the exploits of the arms of Srî Jaitra-sinha.
- 44. Then did Tejas-sinha, full of health, striking great terror into (the hearts of) his enemies, brighten the earth with his sacred glories.
- 45. By this king, roaming about, of his own accord, after the manner of ploughmen, was sown the seed of pearls in the excellent land of liberality, and, watering it with the water of gifts, was reaped the fruit of merit in abundance by the help of excellent preceptors, and, having immersed himself in good luck**,

[•] From this it appears that Kumara-sinha, the fifteenth in descent from Khomana must have red his forces in person to the field of battle which during the time the descendants of Khomana uled were entrusted to the command of military generals only.

[†] i. e., he did not belie his name.

[‡] i. e., the blood as well as the scabbard by being pierced into the body of his enemies.

[§] i. e., having died.

The Turks.

[¶] As to the age of Jaitra-sinha the following is found engraved on a pillar in the temple of Ekalingaji: संवत १२७० वर्षे महाराजाधिराज श्री जैवालहदेवेष

^{**} i. e., having become fortunate.

indescribable large heaps of glories were afterwards spread (lit., increased) in every quarter of the globe.

- 46. This same munificent Samara, the son of Tejas-sipha, and the leader of kings (who was himself) the pristine (incarnation of the) Boar, whose ploughshare was, as it were, his shining tusk, and who rescued, in an instant, the submered land of Gurjara from the ocean-like Turushkas, now bears on the earth the yoke borne by Bali * and Karna.*
- 47. The shouting Råkshasas, who are intoxicated with the blood of thy enemy, (and) who cause their wives, holding the heads severed from the dead bodies in both their hands, to dance by (setting up) clappings (of the palm) which give life to the performances of the distinctly sounding Tûrya and Tâla, sing, even now, oh son of Tejasvi-sinha! (the praises of) thy sword full of glory (and) renowned in battle.
- 48. Oh lord of men! through fear of lengthening this composition are not recited (here) all the praises that are due to thee whose body has, by a number (crore) of immeasurable merits strung together, been closely assimilated with that of Vrisha.‡
- 49. Victorious is the lofty Mount Arbuda, the jewel of the (seven) principal mountains (of the earth), worshipped of gods, where, freed from the consequences of the sixteen vikdras, Vasishtha performed his ansterities.
- 50. On which Achala (mountain) the abode of Lakshmî, which gave to the people who had become infatuated by their absorption in worldly cares and to those who had curbed their passions good enjoyment and salvation (respectively), (and) which has sanctified itself by its contact with the holy Ganges, it the lord and husband of Bhavânî, though a chala (wandering) god on account of his omnipresence clearly perceived by his pervading the universe, became, in olden times, Achaleśvara.
- 51. Where, like a wonderful mass of the essence of all excellence, stands, from time without beginning, this cloister fit for ascetics (to live in).
- 52. Where at some places ascetics, at some places well-behaved mortals, (and) at some places gods obtain absorption in the Supreme Being during the

These were renowned for their munificence.

[‡] Vishau, or Virtue personified as a ball.

[|] viz., that on the head of Siva.

[¶] i. e., a stationary god,—also, the lord of the mountain,

three moments*; (and) whose primeval origin the mythologists sing along with (that of) the Arbuda, that same (Matha or cloister), during (these) three moments, verily bears, here (on this mountain), the fortunes of the three worlds.

- 53. King Sri Samara, the leader of monarchs, directed by the force of his good fortune, got this Matha repaired for his own final beautitude; and then again touched by mercy, this very pious King gladly made, by means of money, even good provision for feeding the munis.
- 54. Seeing that life here (in this world) is as flitting as the wind and the lightning, King Samara caused a high golden staff† to be made for Achalesvara.
- 55. There was formerly in this Matha a superintendent of the place, by name Bhâvâgni, who had easily rooted out the seeds of his secular life by means of Pasupata vows.‡
- 56. While this man was practising austerities here, even animals like lions, elephants and others, freed from bodily impurities by forgetting their mutual antipathies, with hearts replete with affection, and full of mercy towards human beings, became desirous of the truths that lead to salvation.
- 57. His pupil, this Bhâvaśankara, a permanent Brahma-chârin, ∂ at present performs severe austerities to acquire absorption in Siva.
- 58. These trees growing on Mount Arbuda always show, by bearing fruits and flowers in abundance in all seasons, to the other munis, the devotion to the highest vows, of him from whom inclinations to sensual pleasures have dropped off.
- 59. This Matha on the Arbuda, was endowed with a golden staff by King Samara-sinha at the advice of Bhâvasankara.
- 60. (It was) Vedaśarmå, the son of Priyapatu, who composed the inscriptions of the numerous temples in Ekalinga of Sri Samādhiša-Chakra-Svāmi renowned in the three worlds; (and) by the same Brāhmana, residing in Chitra-kūṭa and belonging to the Nāgar caste, was composed this (inscription) also, excellent on account of its manifest merits, and charming to the minds of all learned men.
- 61. As long as the lord Achalesa keeps his residence on Mount Arbuda, may this noble Prasasti afford livelihood to the poets reciting it.

o viz., the morning, the noon, and the evening.

[†] For the dhvaja or banner.

[‡] i. e., vows relating or sacred to Pasupati or Rudra as worshipped by the Pasupata School of Nakulisha Charya.

[§] Naishthika—a perpetual religious student or Brahman who continues with his spiritual preceptor even after the prescribed term of study is expired and observes the vow of chastity.——Prof. M. Williams.

62. This splendid Prasasti was written by Subha-Chandra and engraved by the intelligent lepidery Karma-supha.

This Prasasti was made on the 1st of the bright half of (the month of) Marga in the Samvat year 1342.

VI.

A Stone Inscription in the Temple of Ekalingaji, near Udeypore in Maywar.

Dated Samuat 1485.

This inscription is engraved in a marble slab built up in a wall facing the eastern wall of the Siva temple of Ekalingaji situated about twelve miles from Udeypore on the way to Nåthadvåra. The inscription gives a part of the genealogy of the Sisodia kings of Chitore and then mentions that the last king there—called Mokalasimha caused to be built a temple to Sankara on Mount Chitrakûta at a great cost. He also made a grant of the village of Dhanapura yielding revenue sufficient to defray the expenses of the temple. It is dated Sanvat 1485. A. D. 1429.

The composition is in Sauskrit verse the character being Devanâgari.

TRANSLITERATION.

उनिमः शिवाय सिद्धार्यामरसुंदरीकरलसत्सिदूरधाराक्णश्रीगंडलस्थलमंडलीयुगलसद्दानांबुपूरोज्यलः संध्याऽभ्रह्य-रिताश्रसानुनिपतवाकापगौषद्वयः। स्वर्णोर्वीमृदिव प्रयच्छत् शिवं देवो गजास्थोऽन्ययं ॥१॥

वेदावागिति शिष्टतामुपगता यः कर्म्मणामीक्षिता साक्षी तस्रतिमूः पुनर्मवति सत्सिद्धार्थसंदर्शनः जास्यैवैषु विनश्चरेषु सकलं दाता विविक्तं फलं देवः स्वास्तिकरः परः स सततं स्तादेकलिंगामिधः ॥२॥

भूमीभृत्स्वयमोति नरिथितिरियं गुर्ध्वी नगा बंधवो विध्योगस्त्यचरित्रतो न चिक्रतः प्राध्यापयत् ब्राह्मणान् कन्या मान्यतमा मद्दोत्सवविधावित्येकमंत्रोक्तितो यामानी(न)य दर्खनाय गिरिजा विध्यालया सावतात् ॥३॥ कालिदीतटकुंजबद्धवस्रतिः सेयं प्रिया राधिका समर्जव्या ननु सक्मिणी न भवती हुं चारुहासिन्यसि ॥ गुक्तं नासि

कलावती सुविदितं त्वं सत्यमामेऽन्यया नोक्तासीति विनिन्दुकोक्तमुदितश्चेषोच्युतः पातु वः ॥४॥
रक्तारन्यायोऽन्ववायो गुहिलनरपतेरस्ति जाग्रव्यस्तिभूतांतरायो वसतिरिहः युगे धर्म्भकमोदयस्य ॥
दाश्रवागानुरागे स्थिरविमलनिधौ मूरिमोगोनभागां भूयोऽनूनां विधक्ते सपदि शतमर्खा यत्र संभूय
शक्तः ॥५॥

वाक्सेतोरचळन्मतिदिशि दिशि प्रख्यातमानोन्नतिर्निर्वात्रस्वनवाहिनीपरिवृतो नानाधनैकाकरः ॥ अत्यक्तक्षिति-विग्रहो मुनिकथागीतादिगोत्रस्थितिर्विष्योगेषुरवंभुता वितनुते यस्योपपन्नश्रियः ॥६॥

वंशे तत्रारिसिंहः श्वितिपतिरजनि क्षप्रनक्षत्रलक्ष्मीवोश्चादश्चोरूपक्षमा बहुलजरजनीष्यंसभास्वद्गभस्तिः ॥ विष्या-वष्यप्रदोषस्फुरदमरखनिव्यक्तरस्त्राकरस्यात् स्फारश्रीमेदणटश्चितिवलयवलहुग्धपाथोदचंद्रः ॥७॥

- नरपतिररिसिंहः शस्त्रशास्त्रोपदेष्टा वितरणरणकर्णो विश्वविख्यातवर्णः । स्कुरदमलगुणोवः पुण्यगुण्योक्ष(गण्यात्र)नामा नयविनयविवेकोद्यानपुरकोकिलः सन् ॥८॥
- विभ्यस्तिहपदादमुष्य सकरी नूनं मधोनो यतो वाजी सत्रहविस्ततोऽप्यरमुवं नोचैःश्रवा गच्छाते। आह्तः कथमेतुः बाहनमृते देवाप्रणीवृत्रहा मेधवाहनमातनोदयमतः सद्धोमधूमोद्भवं ॥९॥
- कीर्तिः कौतुकिनी दिगंतमगमत्कर्प्रप्रोज्वला खेलंती निजवासिविभ्रमवद्यादालिगिता दिग्गजै: । श्रीसंभी-निधिगाहनं तु विधिना कृत्वादरादुरियता ब्रह्मादीननुधीक्तुमुत्तमगुणस्यास्य प्रगल्मा दिवं ॥१०॥
- बिशिष्टजनसंगती व्यतरदेकलक्षं यतस्ततोऽधिकतरं यशोलभत भोजभूमीपातिः ॥ अयं कथमदःसमः कविभिरुच्यते वाददद्विशेषविधिनान्यदं विविधलक्षभोजानिष ॥११॥
- निर्जीडों न महेश्वरो नकठिनो नाचेतनश्चितितं दातानेकगर्वाश्वरः परिवृदों नो भारती दुर्भगा // सेनानीर्न विपक्षसंगतिरतो नोचैःश्रवा वा हयो नारामः कतिचित्तरः कथमदःपूर्य्यासधूर्य्या दिवः ।/१२॥
- श्र्रः स्टतवागनूनविभवो वंशावतंसः सुतस्तस्य न्यकृतरत्नसानुगरिमा हम्भीरवीरो जयी ॥ विख्यातः स्मर-रूपजित्वरवपुर्त्त्रश्मीनिवासान्युतो वाग्देवीचतुराननो रिपुकुरुण्लोषोग्ररूपो महान् ॥१३॥
- हम्मीरः किल वैभवोचितविधिर्दित्सुः सहस्रं गवामित्याकर्ण्य जनश्रुतीरविश्वचीनाथौ भयं जन्मतुः ॥ शश्रुत्त-द्रहासिरिश्रतान्मुरारिपोः श्रुत्वा सहस्रं पुनर्धेनृनां समुपागतावितमुदा तदानमेवेक्षितुं ॥१४॥
- कर्णोदीनतिशस्य दिग्जयविधावादाय दिखांडस्रोदेडं द्रमपास्य कालमसकृदाता स्वयं दक्षिणां ॥ इत्याकण्ये जनभुती: परिभवं स्वं शंकमानोतकृत् दृष्टुनक्षमते प्रजामनु न ये यसिमन्मही शासाति ॥१५॥
- प्रासादमासादितशातकुंभकुभं वसदेवमचीकरशः ॥ अचीलनत्सागरकल्पमल्पेतरत्सरश्च्तवनीभिरिद्धं ॥१६॥ संग्रामग्रामभूमौ सदिदमसिलता संगता पंचशाखे सच्छाये स्यामलांगी क्षतजजलवलत्पृष्टिरिष्टप्रचारा ॥ चित्रं स्ते विकोशा कुसुममतिमहत्कीर्तनीयं दिगंते धान्नामाता निर्तातं दलयति नियतं वारणांगे पतिती ॥१९॥
- हम्मीरवीरो रणरंगधीरो वाड्याधुरीतींजतकोकैकीरः ॥ धराधवालंकरणैकहीरस्तत्तद्वतीमृथितिर्धिधुतीरः ॥१८॥ एतत्पाणौ कृपाणी द्विपदसुपवनाहारतोषं दधाना कालाकारोरणीव स्पृरति सचिकतं वीक्षिता भीतिहेतुः ॥ नाधःकार्ये कथंचिददाति बहुमता नोविभीते विपक्षात् स्वर्गे वासं खतानां वितरित रमते न द्विजिब्हेन चित्रं ॥१९॥
- पायेषायं सुपीनः परमटक्षिरं तन्महीगर्भजातः खङ्गः कालः कुतीयं कथिमयमपरा कीर्तिरत्युज्वलास्य ॥ एके-नास्नायि नुनं स्ट्दरिवनितानेत्रतीयंजनाक्ये तासामुद्रतितेयं मृदुभुजवलयस्वछन्णैरजसं ॥२०॥
- उच्चत्मौदम्रतापानलमुपितमहाविषयशेषो विवस्तान्पश्चादुद्दामकीर्तिच्छुरिततरतनुः शीतरिक्सलमेति ॥ शके रूपांतरं स्वकलयति स वपुर्मेदभीतो रणक्ष्माधीरे हम्मीरवीरे घ्नति परसुभटान् संगरे समुखस्थान् ॥२१॥
- कुर्वन् पद्मे जनुः स्व विधिरिति विधिष्टग्टष्टसृष्टाग्रदिष्टो मोपकेजन्मदोषं व्यजगणदत्तुलं तस्य रक्तेतरस्य मृत्वा हम्मी-रदेवक्षितिपतियशसः स्वच्छवर्णोपमेयो गता पुण्योपमानं दिशि दिशि सुचिरं सत्कवीनां मुखेषु ॥२२॥
- भैरी गौरीशहासादिपिरुचिरुचिश्चंदनाचंद्रतो वा कांत्या कर्णाटकांताशितदश्चनचतुष्कानुमेया सुगेया ॥ शेषस्था-शेषवेषस्फुरदमृतस्चश्चारुसींदर्श्यधूर्य्या कीर्त्तिर्यस्येदुमूर्त्तः किल चरति दिशाश्रांतविश्चांतयात्रा ॥२३॥
- तस्मात्क्षेत्रमहीपतिः समभवत् ख्याता गुणांभानिषिः शौर्यौदार्य्यमहत्त्वसत्त्वमहितो धम्मौ वपुष्मानिव ॥ शक्राद्धौ-सनमाजि येन जनके रत्नाकरालं कृतिर्भूभुंता जितपूर्वराजगरिमप्राप्तप्रभाशालिना ॥२४॥
- हृदि निनिद्दितरामो योऽस्त्रविद्याभिरामो मदनसदृशमूर्त्तिविश्वविख्यातकीर्त्तिः ॥ समरदृत्तिविषक्षो लीखयाद-त्तरुक्षो नयनजितसरोजः प्रक्रियाकांतमोजः ॥२५॥
- संप्रामे दंतिदंतज्वलनकणमुचि प्रोल्लसद्वीरयोधस्कारोन्मुक्ताशुशालीनिविडकविलताशेषकाष्टांतराले ॥ जिल्ला दुर्गी समग्र नरपतिमद्दितं साधुवादस्य सम्यकस्तमं योऽधाद्धरित्र्यामरिकुलपतगश्रेणीचंडप्रदीपः ॥२६॥ र्. 13.

- आक्रांतादृष्पुंगवेन विलसदासा चतुर्मिः पदैः सम्यग्वीक्षणपालिता नवनवप्राप्तप्रकर्षोदया ॥ प्रासोद्धामरनै चिकीय बहुशो रत्नान्यनर्ध्याणि गौः शूरे कीर्त्तपयोधरा शतमस्ये यरिमन्मही शासति ॥२७॥
- कीर्तिक्षीरोदपूरे बहुविधविषदप्रोल्लसदीचिमाले कृष्णः शेतेऽस्यखङ्गः सुखमुक्समरे शेवमासाय शत्रोः ॥ दश्येवे राजदंसा दिश्चि दिश्चि न ततो मानसे लीयमानाः ॥ सीदत्यक्षा विलक्षाः स्कुरति न कमलोन्मे वितापेक्षित्रैणः ॥२८॥
- अस्यासिः कालरात्रिः स्कृरित किल भवन्मजलेवैरिणां यः स्वछप्रोद्धासिवेश्म प्रभवदह्मियं भूतराजोस्तापं ॥ पद्मोद्वोभो न चैषां भवति विघटते चक्रयोगा नियोगाङ्कृरि जागाति भीतिः पतिति निजययो नो-जिसतः यंक्रपातः ॥२९॥
- भ्रातः करणतरो किमात्य मणवन् हेमाचल श्रूयतां कर्त्तुं क्षेत्रमहीपतिः प्रयत्ते दानानि पुण्याशयः । वर्त्तेऽहं तु करे गृहांगणभुवि स्वं वर्त्तसे नित्सशः क्षीडार्थे यदि वा ददाति हि तदा वक्तुं क ईष्टे जनः ॥३०॥
- इत्यं दानकथा मिथो विजयते जितामणिस्वर्गवीमुख्यानामपि दानशास्त्रविलसन्नाम्नाममुख्य प्रभोः ॥ उन्मील-ं च्छरदंबुजामलदलस्यच्छायताक्षिरपुरत्कोणस्थायुक्तिमत्रवैरिपरिषत्संपद्विपद्वत्संनः ॥३१॥
- माद्यद्वेतं इच्डं स्थानिभरिवगर्थे विदेषां पुण्यराधिर्धन्यः क्षेत्रः धितीक्षः प्रतिभटनृपतिक्ष्माकराकृष्टदृष्टिः ॥३२॥
- मूर्च्छालं तु जडीमवर्ष्कुतिपथं संशुष्कितैकत्वचं मीलार्त्तं (१) च मुहुर्म्मुहुः शिथिलितं यातं न वा सुस्थितं ॥ दारि-द्योपहतं विवोधयति यद्शाहिदष्टं यथा जाप्यं कर्णपथाश्चितं स्विमलं यत्वाममंत्राक्षरं ॥३३॥
- तत्स् तुः किल लक्षसिंहरूपतिः ख्यातो गुणमामणीरुद्यदानपःलार्जुनद्वययशोवल्शस्तत्व्धातरः (१) ॥ यत्तेजःशिखिनो विपक्षवनितानेत्रांत्रुजातद्युतेः काष्ठांताक्रमणं झटित्यनुदिनं नाभृद्विचारास्पदं ॥३४॥
- रामः किञ्जितदृष्णः सुभरतो रामानुरागास्पदं शत्रुप्तः किमु लक्ष्मणोदयभरः सुग्रीवदृद्धांगदः ॥ ताराबल्लभ उत्तरेमन यपुषालंकारमासादनो योरामायणनायकैकतनुतां दृष्ट् विधात्रा कृतः ॥३५॥
- दानादुद्दामसामा शरणगतजनत्राणपाणाणसीमा भीमासीमैकधामा शतमसपुरतो विद्विषा गीतनामा ॥ अक्षामा-रामदामा मस्तपुरविरुसद्भूमधूमोधसामा सह्यदमारोपरोमा धरणीसुरतदर्ह्यक्षसिद्दः स धीमान् ॥ ३६॥ दैरिश्चोणीद्रमचिद्वरदमदनुदः सिहतः शुद्धसारादारादुद्दीतकीर्त्तरपुराभिषक्षातिनिर्णीतमृत्तेः । दाने माने ऋषणे
- यद्यसि महसि वा साधुवाण्यां कृपाण्यां वीराह्यक्षक्षितीशाज्जगाते नीह परः ख्यातभक्तिः सुभक्तिः ॥३७॥ भीतिप्रीतिभुजाजितानि बहुशो रजानि यजादयं दायदायममायया व्यतनुतः ध्वस्तांतरायां गयां । तीर्यानां कर-
- माकल्य विधिनान्यत्रापि युंक्ते धनं प्रीढमावनिवद्वतीर्थसरिष जामचर्शोभोरुद्दः ॥३८॥
- संप्रमिषु गतागतानि विद्यलुश्चं परैर्लाश्चेतो दस्वा लक्षमपि स्वयं वितनुते संतोधमञ्जेक्षणः ॥ कुर्वाणः किल कानकीमपि तुलां तद्दंडविंगच्छलालुश्चं स्वांतनुमातनोदिति तृपो लक्षप्रथोजायत ॥३९॥
- शाने हेम्नस्तुलाया मखभुनि बहुधा शुद्धिमापादितानां भास्वज्ञांदूनदानां कुतुक्तिजनभरैस्तर्किताराश्योस्य । संमामे लुंठितानां प्रतितृपमहत्तां राशयस्ते किमेते विषयं वधुं समेतुं किम् समुष्णताः साधुहेमाद्रिपादाः॥४०॥
- **रुद्धारोपपदांदाकाधिपकरव्यत्री**सवज्जीवनां धीरोम् मुचदर्ज्जुनीमिव गर्या मायाविमुक्ताद्ययः ॥ धर्ममेश्वास्य समस्तलोकामदितः काष्ठौ परामागतो निःसक्वीकृतधर्मगराजवसतेः एकालयासकानः ॥४१॥
- मंतुर्या ननुनाभविक्छ द्वला पूर्वेति गर्वे तु यामुख्य क्षोणीपतेर्धुवं कृतवती गर्वासिहणोः पुरः । तस्यास्तस्य मुदानुद्रौ विद्धता धीरेण दत्तापरा सीमानादधिकाधिकीकृतविधिस्सदी वियद्वीटिका ॥४२॥
- र्षक्याद्धं कथमीशते कविजना दानानि नानाविधान्यस्थाकृष्टसमस्तराष्ट्रवसुधावित्तस्य चित्तेत्रतेः ॥ छञ्जा नोदिकते वनीयकगणान्दत्वा नयस्कीत्त्रयेत्यात्रं प्राप्य मुदान्वितः सुणहुन्तां स्वर्णे समारोपयेत् ॥४३॥

- तस्य स्मानलयं नयेन नयतः संतोषमायुष्मतः समृतः स्मरसंदरो गुरुरतः पुत्रः सुधीमोकलः ॥ शच्यामूभृति दारणं वितनुते यत्तरकुमारः पुरः सर्वज्ञोऽस्ति यतस्ततो चलभुवो नाथस्तु पित्रा कृतः ॥४४॥
- श्रीसादा बहुराः समुज्ञतियुजः क्षोणीभुजा कारिताः शुद्धयम्पूर्द्धसु राजमानकनकप्रस्कारकुंमश्रियः। नायंद्रा नु शिरस्सु हाटकपटानाथाय लोळस्सुधाः पातुं नाकमिवोत्थिता मस्रभुजां पियूषपानीत्सुकाः ॥४५॥
- अंगाः समाप्तमंगाः स्मृतघनविष्टपाः कामरूपा विरूपा वंगा गंगैकसंगा गतविरुद्मदो जातसादा निषादाः ॥ चीनाः संप्रामदीना स्वलद्धिधनुषो भीतिशुष्कान् तुरुष्का भूमीपृष्ठे गरिष्ठे स्फुरति महिमनि स्मापते-मोंकलस्य ॥४६॥
- मूर्पि सिंद्ररेखा शतमस्वधनुषा राजमाना गर्भारं कुर्वतः शब्दमुचे रदश्चिचपला स्निम्धतन्वीकचाभाः । संग्रा-मग्रामयाता रिपुकरिजलदा प्राप्तकालोपयोगा यस्येषुप्रांतभिज्ञाः सलु राधिरजलं भूरि वर्षतिसद्यः॥४७॥
- अस्य प्रोडप्रयाणक्षणरणरिकहेषमानोरुमानस्फुरुर्जद्गर्वार्ववर्यक्रमणमरभवद्गिरुधाराधकारः ॥ नादां नेता वि-वस्वानिति त विरमत ध्वस्तनेत्रप्रकाशः स्वानश्चानस्ववर्णान्यदि परिचिन्ते तस्यमाग्यं महीयः ॥४८॥
- वासो नाशासु भास्वत्करकविरक्वा भासितास्वस्य वैरात् पारावारांतरायादापि नहिगमनं दूरमस्मादकस्भात्॥
- सेवाहेबाकमेवाचरत बहुमतं दत्तवित्तं नितातं मंत्रोऽमात्मेरकारि प्रतिविमनसदो भूपतेमॉकलस्य ॥४९॥ सुद्रप्रौढारिवर्गप्रिवतपुरवलङ्गभभूमप्रचारैध्मंब्रह्मांडमांडोदरमातेविपुलं वीश्य दक्षेषु मुख्यः ॥ कीर्त्या लेप
- सुधोत्यं कलयति बलवान् दिग्वधृक्तिकरीमिस्तारातद्वितुवृद्यच्छुरणबहुरुचा योवरेणावृतामिः ॥५०॥
- नेता पातोत्तराशा ययननरपार्ते .लुंठिताशेषसेनं पीराजं कार्तिवर्ध्वाक्रुसुममुरुमार्तयोकरोत्संगरस्थः ॥ पर्छाशकार्ति-
- वार्त्ता कलयति कलया कीर्तितां यस्य हेलां पंचास्यस्येव माधद्रजदलनदचेलुंलिया रंकुभंगं ॥५१॥ अपन्य स्थिता वर्षा करणि वस्तरिकां करणार वर्षे प्राचनिको वस्तर विकेशसम्बद्धार्थाः ॥ औरो
- आरूढ: सविता तुलां कलयित द्राङ्नीचतां कन्यया दूरं मुक्तपरिग्रहो बहुच्चा चित्रोलसद्धस्तथा(या) ॥ धीरोपं पदमुक्तमं तु विधिना प्राप्तो तुलां गाहते कन्याभिन्नियतेतमां क्षितिभुजां श्रीमोकलस्मापातिः ॥५२॥
- यानत्राणमनामनागापि मनोरन्यूनर्नातिवतो नो जानाति निजयतापमतुर्छ सिंहो यथा विक्रमं ॥ मन्ये भास्व-रहेमराशिमिषतो थाता तुरुायामधादेतस्मादापि सोगमच गुरुतामग्रापि जानाति कि ॥५३॥
- ह्या हाटककोटिक्टमतुलं दानाय मानाधिकं सद्यः शोधितमुद्गतैकमतयः संशेरते शाब्दिकाः । शक्षप्राधित-
 - े हेमदे सुरतरी कि कि वृ चितामणी हेमादी शक्लीकृते किमु तुलाशब्दस्तु संकेतितः ॥५४॥
- दीव्यत्तद्वीरतुंगतर(तुंगोत्तर)तुरगवरवातजातोरुवातक्षुस्यत्तरभोत्थरेणुश्चतनयनरुजाः व्यप्रसूताः खरांशोः । मंदायंते गतेश्वास्ततद्दववनितावीरेणां तद्दिनानां यामाञ्जानंति दीर्घानावितयविरुदे मोकलेंद्रे रणस्थे ॥५५॥
- को वा नो वेद विद्वांश्वरमयुगकलावेकपादेव धर्माः खंजन्भ्रष्टावलंबः किलचरतु कथं पीनपंके जनेस्मिन् । सेायं सद्वरायाष्ट्रं बहिरवाहिरयो गुद्धसारोपपत्रं आप्य श्रीमोकलेंद्रं प्रविद्याति विपुलां मंडलीं पंडितानां ॥५६॥
- नूनं दूर्तविधावधानमः अभुजामोशः सुमेदं पणं गण्यस्तत्र मनस्विनां व्यवयतः श्रीमोकलक्ष्मापतिः । तादक्षाः कथ्-मन्यथावनितले हेम्नाममा राशयो नैषां दानविधाम्(व)मुख्य च मनःपाडाकलापि कचित् ॥५७॥
- बन्हाबन्हाय सर्प्यः पतननतरुची भूमधूमायमाने दूर्नाधामक्षिपक्ती(कि) कथमुपकुरुते यागभागी मधीनः।
 पुण्येनास्येव जाने दिनमणिरयते सन्कराणां सहस्रं विश्वत्सद्योस्ततंद्रः स्थगव(य,ति विधिना योगमरूणां सहस्रं ॥५८॥
- आरह्मामलमंडलं कृततुली यः पुष्करबोतनः पुण्यश्रीः स कथं तथा प्रथमतो गण्यो न तेजस्विनां । तिःपैका करलालिता बसुमती सद्राजहसायते बधुनामुद्रयस्ततस्तदृदये स्यास्प्रपदामौचितिः ॥५९॥
- भाराबारस्य वेळातटनिकटमनुप्राप्तशैळाधिवासा शत्रुश्चेणी समग्रा निवसति सततं भीतभीता निवातं। वेछं गात्रातदीया यदि भवति तदावाजिराजीस्वुराग्रनुद्धःस्माध्िकषारा स्थलयति जलवि पारयानायं तस्याः ॥६०॥

आसायातिथिमाश्रयं त्रिजगतां श्रीद्वारकानायकं प्रातादं रिचतोपचारमकरे। ब्रूमीपतिमांकलः । देवेनांबुजवांघवेन चिकतं योबोक्षितः शंकया विष्याद्वीगिरिसत्तमस्य नियतं मुक्तस्य वाग्बंधनात् ॥६१॥

यस्य प्रत्युप्तिकम्मद्रवद्श्विलमहाधातुसमारधाराधातक्ष्मातापशुष्यद्गलिविलविलसहोललालः फणीन्द्रः । व्याच्छेस्पष्ट मिष्टं ध्रुवमयमधुना भाष्यमामाध्य शिष्यं सश्रीभर्त्तुः पुरस्ताज्जयति खगपतिमीकलेंद्रस्य कीर्त्तिः ॥६२॥ सीद्धं नेशः पश्रोधिः क्षणमपि विरद्धं द्वारकानाथकस्य प्रेम्णा पादोपमुलं स्वयमुपगतवान्यस्तडागछलेन । नोद-

न्याकुंभयोनेरतिपतितरामंतरणैनमेष्यन् शापांतं मे विद्यध्यादयमिति विनयाद्विध्य एवानवद्यं १६३॥ विध्यस्कंषैकवंधुर्मजितितितमरादंधुतानीतसिधुर्नीरक्षीङसुरंप्रीप्रसमकुचतदाबातसीदत्तरंगः। संतुष्यत्तोयजन्नुविधन-दनदीवेगसंरोधितंतुः सत्सेतुर्नेतरस्य स्कृरतिवसुमतीसिद्विहेतुः सकेतुः ॥६४॥

अमुष्य धरणीभृतो विषयमध्यवर्ती महादरीवृतवपुष्टयाविवृतदूरगैभीरतः । महोदर इवापरः परमनोनगम्यांतरः पवित्रतरकोत्तेनो जयति चित्रकृटाचलः ॥६५॥

जायंतां नाम कामं कुलजरणिभृतः सप्तश्यगोषर्गुंगा वैचित्र्याचित्रक्र्यं तुलयितुमनलं तीर्थभूतप्रदेशं । माभूवजी-ज्ज्ञीरिण्यो मदरितजनुषो गीचगा मानशोंडः शृंगे यः श्रीरवारांनिषिमधिततरामुद्यदेभोजवासं !!६६॥

उद्दामग्रामानिर्यद्(ज्स)रमरकणिकाजातसेकातिरेकाकिरधन्छालप्रवालग्रमनवुद्तराभोगसून्प्रस्तात्। मध्वासारादपा-रादुपदतजनुषो दाववन्देक्षिराघे विश्वद्राची वनानि प्रसभपरिभयं नेह शैले विदेति ॥६७॥

ष्टतस्मिन् सरिदस्ति निम्मेलजला यस्यां निवापांजलावुन्मिलत्तिलजातपातकवलव्यमाः शफर्यश्रलाः । क्रीडा-संभ्रमिदिस्मृतान् सुवहुदो मञ्जद्वधृनामद्ये वक्राकांतिविलोपिकज्जलकणांश्रेतुं स्फुरंति स्कुटं ॥६८॥

लंकार्कि नाम दुर्गै जलनिधिरविता यत्र साकालकाका भावट्कालेविवर्गैरापि गलितमदैयांश्रियेताविमानी । यो धत्ते श्रीरवारानिधिमुपरि परै राजहंभैरगम्यस्तर्दुर्गै चित्रकूटो जयति बसुमतीमंडनं मूरिमूमि: ॥६९॥

साभाग्यकमहौषधिर्भगवती यस्मिन् भवानी स्वयं जागीत प्रियसंन्निधानवस्तिः साध्वीजनानां गुरुः। देवः सोषि समस्तनाकरमणसिंतानदानवजप्रश्च्योतन्मकरंदाविदुसुराभिप्रस्कारनृत्यांगणः॥७०॥

सेवाहेवाकदेवस्तुतहरचरितप्रोह्मस्तावसपत् सयः स्विद्यद्भवानीकृतसुखसवनस्थारसैारभ्यकारि । यद्वारि प्राति-भाव्यं वहति मृगदशां मञ्जतीनामजसं पातिवत्ये समतात् समधिकसुभगं शातुकस्वेपि शक्षत् ॥७१॥ गिरिः कैलासो यद्दशमुख्यभुजोच्छ्वासमिदिनादलन्मूलस्थानात् प्रभवति न नाट्यं विषदितुं । प्रदेशप्राग्भारप्रकृ

तिरमणीये तदधुना समिद्धेशः श्रीमानिह वसति गौरीसहचरः ॥७२॥

एकैकशावतावत्कृतिमुधितमहासर्वकर्माणमनं कृत्वा प्रासादमाशामुखमुकुरमितव्योमसीमानमस्य। यस्याशेघोपचारथ-मधनमुद्दिता(भददान्मोदमानो वदान्यो) (धी)रः श्रीमोकलेंद्रो धनपुरमुचितं ग्राममायामसीम ॥७३॥ अब्दे बाणाष्टवेदक्षितिपरिकालते विक्रमांभोजनंधोः पुण्ये मासे तपस्ये सवितरि मकरं याति जीवे घटस्ये। एखे शुक्केतरोरिमन्सुरगुरुदिवसे चार्यमक्षेतृतीयातिथ्यां देवप्रतिष्ठामयमकृततरां मोकलो भूमिपालः ॥७४॥

उन्मीळवागयात्रीयतसुरतरुणीगीतसंब्रामधामा सुत्रामा यावदीष्टे त्रिदशपुरपरीपाळनस्पष्टनीतिः । पर्वायोपात्तम्प्रा स्फुरतिदशशती शेषम्द्रां च यावरप्रस्फाररुपाररुपारवतु वसुमती मोकलेद्रस्य बाहुः ॥७५॥

अमिद्रशपुरवातिर्मदृविभ्णोस्तनृद्धवः । नाम्नैकनाथनामायमलिखत्कृतिमुज्वलां ॥१॥

अनेकप्रासादै: परिवृतमतिप्रांशुकलशं गिरीशप्रासादं व्यरचयदन्नैरनुचरै:। मनाख्यो विख्यातः सकलगुणवान् वीचलसुतस्ततः शिक्षी जातो गुणगणयुतो वीसल इति ॥२॥

अतिष्रयस्तैरखिलप्रशस्तिवर्णेर्नवर्णेन बाद्दिः कृतेये: । श्रीमत्समाधीश्रमहेश्वरस्य प्रासादतोसौ चिरजीयमोस्तु ॥३॥ विद्यापरसुतः शिल्पी मनाख्यः सूत्रधारकः । तदात्मजेन वीसेन प्रसस्तिरियमुत्कृता ॥४॥

चिराधरमुत्कीणां प्रशस्तिरियमुज्यला । लिलेख बीशलः शिल्पी समाधीशप्रसादतः ॥५॥

संवत् १४८५ शाके १३५० वर्षे माघ शुक्त ३॥

TRANSLATION.

- 1. & 2. May the god Ganapati give you eternal bliss, Ganapati who appears beautiful with the great flow of the fine water of Mada from his two round temples red with the beautiful Sindura poured by the wives of gods, whose desires are satisfied; and who thus shines like the golden mountain (Mera) with two currents of the heavenly river falling from its peaks brilliant (red) with the evening clouds. (Through whom) the Vedas have become respected as Vâch (the word); who witnesses all Karmas as Sâkshipurusha the representative that looks to their being true and accomplished; and who, moreover, is the giver of the fruits of those Karmas that are by nature perishable, may He Ekalingaji, the Highest, be always for your welfare.
- 3. May that Girija residing in the Vindhya protect you; Girija who was caused to be brought for being worshipped only by the use of this secret word (message) viz. the upholder of the earth (Mount Vindhya) is not himself able to move up (to you) his size being so unwieldy; nor can any of his relatives go, they all being immovable mountains, nor would he send any Brahmanas, being led to suspect them all from the intrigue of Agastya——and yet a virgin (like you) is necessarily to be adored in the great festivity (here).
- 4. May Achyuta saying the following words capable of a concealed and pleasant double entendre protect you! ——that Râdhikâ living in a grove on the Yamunâ is not to be remembered, nor Rukmiui, for you are the one with pleasant smiles; it is proper you are not well versed in artfulness, oh Satyabhâmâ I have not in all this told you a lie.*
- 5. The family of king Guhila is very just; its fame is known all over; its difficulties are destroyed; and it is the abode of thriving *Dharma* (religion) and *Karma* (actions) in this Kali age. (It seems) as if Indra completes again his century of sacrifices, having exhausted the former one by enjoyment, by taking birth in it (the family) devoted to the performance of sacrifices.
- 6. He, full of all prosperity, with whom the Viudhyâchala stands as a fit brother, both with their minds never swerving from the bond of their promise (his own word, in the one case; and the word pledged to Agastya as to remaining in a particular posture, in the other), with the loftiness of their sublimity widely known; surrounded with various noisy Vähinis (armies in the one and rivers in the other case); the sole mine of wealth; having never abandoned Kshiti-

[•] The cause for not remembering Rådhikâ and Rukmini is really the cause why they are to be remembered, and Satyabhâmâ is not to be remembered, for, that cause is not in her. That this is the real meaning of his speech is conveyed to Satyabhâmâ by saying that it is well she is a simpleton so as not to penetrate to the depth of the remark.

- vigraha (1. Battle on earth, 2. Earthly body); and with their primal Gotrasthiti (1. continued line, 2. the act of supporting the earth) celebrated in the songs of Munis.
- 7. In that family was born king Arisimha, who had eyes powerful enough to gaze at the lustre of planets in the form of brave Kshatriyas; who was the brilliant Sun able to dispel the darkness caused in the nights of Bahula (dark half of the month as applied to the sun, and blood-shed in battles as applied to the king); and who was the Moon on the ocean of milk encircling the bounds of the land of Medapat—ever resplendent in splandour on account of the brilliant mines of immortal jewels shinning under the eternal twilight on the Vindhya.
- 8. Arisimha was a king who was master of the art of using arms, who was like Karna in making gifts and in battle-fields, whose greatness was known throughout the world, who possessed bright pure virtues, whose great name was worthy of being included in the first rank of the meritorious, and who was like a male *Kokila* in the gardens of justice, modesty, and politeness.
- 9. As the elephant of Indra is afraid of this lion he does not go to the place of the Yajna; and as the object to be sacrificed is a horse, Uchchaisśravas (the horse of Indra) also does not go there. So how can Indra, the destroyer of Vritrasura, and the leader of the Devas (gods), go there without his conveyance, to supply which he (Arisimha) sent to heaven clouds of smoke issuing from meritorious Yajuas.
- 10. His fame as bright as the flood of camphor went, curious of knowing, to the end of the quarters and was, while sporting in her natural playfulness, embraced by the quarter-elephants (i. e. they became white because they thus came in contact with the great white spotless fame of the king). Then having washed herself with proper ceremony in the Kshirasâgara (which also became white through her contact), she went to heaven, bold as she was, to tell her high virtues to Bhrahmâ and other gods (who also are white).
- 11. Bhoja Raja acquired great fame as he used to give a lac of rupees whenever he met a well-known man; but how can this king who makes gifts even of thousands of such Bhojas every day be ever compared by the poets with him?
- 12. The Maheśvara (wealthy man) here is not devoid of modesty, nor is he hard (to please) and immovable; there is no one who speaks with great humility; the Senāni (commander of the forces) is not Vipakshasangati in consort with the enemy, the horse is not with its ears erect (i. c. proud, mischievous); and the garden is not with a few trees. So this city connot be compared with heaven, where the Maheśvara (Sankara) is immodest, hard (to please) and

would not give without being asked, where the lord Indra is master of only one cow; where the meritorious become very humble in speech when their merits are exhausted; where the Senani is *Vipakshasangati* (has for his conveyance a peacock); where the horse is Uchchaisśrava (with ears erect); and where the garden contains only a few trees.

- 13. His son was Hamira a great hero, who was a brave man; who was of truthful and endearing speech; whose splendour was great; who was the crest of his family; who rivalled the gravity of the jewel-topped mountain (Meru?); who was a great conqueror; whose body surpassed (in beauty) the known beauty of Kâmadeva; who was Achyuta for having Lakshmî in his place; who was Brahmâ for having Sarasvati with him; who was Ugrarupa (Sankara) for burning the families of his foes.
- 14. Hamira who performed glorious deeds made Sûrya and Indra fearful when they heard it rumoured that he intended to make gifts of one thousand Go (cows, rays, or eyes). (But) on being told by Vishnu privately and frequently that he was making gifts of one thousand cows, (and not of rays nor of eyes) both of them went to see with great delight the gifts made.
- 15. When he heard from the people that Hamira would surpass king Karana and others in making conquest in all directions, would exact fines, would drive away death, and would then make gift of Dakshina (gifts of money, the south), Yamaraja was afraid that he would be defeated and deprived of his Dakshina (the south)* to make a gift of it. So as long as he (Hamira) ruled over the earth neither he (Yama) nor his messenger was able to look at his subjects.
- 16. He caused to be made a temple where the gods reside and which is surmounted with golden pinnacles; and also caused to be dug a lake as large as a sea surrounded by gardens of mango-trees.
- 17. The creeper-like sword destroying elephants in its sweep and uncovered in the battle-field, clinging round the tree of hand giving a fine shade, nourished with the water of blood, sparkling and greatly known for its brilliancy, produces a very large flower (of glory) worthy of being known to the ends of all directions.
- 18. King Hamira is such a hero as does not lose his patience on the pleasure-ground of battle-field, whose sweetness of speech puts into shade that of the peacock and the parrot; who, being like a diamond, gives beauty to other kings; and who has made the sea-coast appear charming by making gardens on it.
- 19. The sword in his hand is like the destroyer in the form of a black female-snake, which lives upon the wind of the lives of enemies; which

o It being the abode of Yama,

causes danger even to those who look at it; which never hites in the lower part of the body; which, being worthy of great respect, is never afraid of the enemy (the eagle in its case); which sends the persons hitten to reside in heaven; and which never plays with a snake, (that is, an informer). This is wonderful!

- 20. How is it that his sword and fame, that have grown fat by drinking the blood of heroes, his enemies, and that are brought forth from the womb of his land, are such that one is black, while the other is the whitest. It is so because the sword has bathed in the water of tears mixed with soot from the eyes of the wives of the enemies; while the other (fame) is frequently polished with the powder of the Kankanas (wristlets) on their delicate wrists.
- 21. The Sun at first being deprived of lustre by the rising splendour of his great valour and being left only with his disc, assumes afterwards, being covered with (his) great fame, the form of the cold-rayed one (the moon). This appears as if the sun assumes another form being afraid of his body being pierced (through by many dead warriors passing through it) when brave Hamira kills on the field of battle his heroic enemies standing in front.
- 22. Vidhi producing himself in a lotus and ordered at the beginning of creation by Vidhidrik who did not regard being born of mud as any great fault in him other than red (?) will, now that he has become an object of comparison with the spotless whiteness of the glory of Hamira, be a well-known standard of comparison with poets in all quarters.*
- 23. The well-sung glory of him (Hamira) whose form is like that of the moon, known all round as whiter than the smile of Sankara, or Chandana, or the moon, as rivalling in beauty the rows of the white teeth of the women of Karnatakadesa, as surpassing the immortal beauty of all the forms of Shesa, stands at rest, being wearied with travelling in all the directions.
- 24. His son Kshetra, the lord of the earth, was an ocean of virtues, was worshipped for his bravery, generosity, greatness, pure virtues, and was well-known as an embodiment of religion. He who looked handsome on account of the greatness of kings previously conquered by him, came in enjoyment of the earth adorned with jewels, when his father got possession of half the throne of Indra.
- 25. He has trust in Râma from his heart; he is well-versed in the art of using arms; his body is like that of Kâma; his fame is known throghout the world; he destroys his enemies in battles; he makes hundred thousand gifts as a mere pastime; his eyes surpass the lotus; and he is far superior to king Bhoja in good works.

^{*} The meaning of this verse is not clear and is very doubtful.

- 26. Who, the lamp to the family of his moth-like enemies, planted on earth as it were a column of praises, worshipped by all kings, having in battle mastered the whole fort-battle where the tusks of clephants emitted fire, and where the intervals of directions were all filled up with the close line of swift arrows darted valorously by brave excited warriors.
- 27. When he, who was brave and was like Indra in this world, ruled the earth, the handsome-looking Dharma pressed it (earth) with his four feet and preserved it well. Thus this earth having newly acquired its greatness became like the cow of the gods and produced many jewels, and milk, in the form of glory.
- 28. His sword like Krishna became possessed of Shesa (the remainder of the territory) and lay happily on the rising flood of the Kshirasagara-like fame, which was boisterous with numerous rising waves. Then the Rajahamsas (kings) who suffered in their wings (whose allies were destroyed) and who found their rest in the Manasasarovara (who no more thought of their kingdoms) were not to be seen in any direction (were no more heard of); and did not desire for the blooming of the lotuses (they did not desire for change in their condition).
- 29. When his sword comes upon his confederate enemies like a Kâlarâtri (night of Kâla) their splendid house appears to be horrible for being infested with serpents, and excites terror as if haunted by Bhutarâja (the lord of the Bhutas); they are unable to form their armies in fighting array; their forces are separated as it were at his will; a great terror is spread; they lose their ways; and they cannot help falling as it were into mud.
- 30. Well, brother Kalpavriksha, what do you say? Well, Hemâchala, hear me, I am always in the hand of Kshetra, the lord of the earth, who actuated by holy desire makes constant gifts; and you are in his courtyard. Now if he were to give, both of us away in pastime who can dissuade him from doing so!
- 31. The gifts made by this king, in the moving corners of whose eyes which are as pure and as large as the perfect petals of a blooming lotus of the Sarada Ritu, exist, good fortune for his numerous friends and misfortune for enemies, are spoken of among themselves very highly by Chintamani, Kamadugha and others whose names stand conspicuous in the Dânasâstra (books relating to gifts).
- 32. Kshetra, the lord of the earth, whose very sight attracts the lands and revenues of his opponent kings, and who is a treasure of wealth and spiritual merits, does not mind the hordes of his enemies in battle where the steadiest of the heroes lose their presence (of mind) on account of the loud noise of the delighted *Bhutas*; where the opposing armies are covered with numerous arrows thrown from brilliant bows; where the stakes are (their) lives; and which is unique in itself,

L. 14.

- 33. The Vedamarga (the religion of the Vedas) who was insensible and growing benumbed, whose skin was withered, who was contracted and distressed, who was very weak and staggering, and who was much reduced, wakes (from that state) like a man who is bitten by a se pent, on bearing the charm of his name (king's name), which is worthy of being recited and kept constantly filling the ear.
- 34. His son called Lakshasimha, who is first among the virtuous, and who on account of the fruits received for his brilliant gifts is like a Matalli tree supporting the creeper of glory which is equal to that of both the Arjunas (Kârttavîrya and Madhyama Pâṇdava), is a well-known king; the spreading in all directions of the fire of whose valour casting its lustre in the waters issuing from the eyes of his enemies, is no longer a subject of doubt.
- 35. Is he not Râma, for he is Jitaduśana, (Râma conquering Duśana, and he destroying his own defects); Is he not Bharata and Satrughna, for he has his love centred in Râma; Is he not Lukshmana, for he is full of mercy; Is he not surrounded by Angada, Sugriva, and Vâli, the lord of Târâ (because he has bright armlets, has got a fine neck, and has as fine a body as the planet, i.e., moon), and is he not depriving violently Lankâ of its wealth (because he adorns himself with ornaments). It seems Brahmâ has created him to see all the characters of the Râmâyana combined in one.
- 36. This Lakshasimha is very famous for his gifts; he is like a stone barrier protecting those who seek his protection; he is the alode of a terrible swordt; his name is sung by his enemies before Indra; he is surrounded by numbers of ever-green gardens; he is adorned with the Sâma Veda which causes much smoke to issue in Yajnas; his body is covered with small hair indicative of good fortune; he is like the Kalpa tree on this earth; and is very intelligent.
- 37. There is no one so pious and famous and so well-built on this earth as the brave king Lakshasimha, and known for his gifts, honours, swordsmanship, fame, splendour, sweetness of speech, and the use of the dagger;—he, who is a destroyer of the madness of the enemies' mad elephants, who is stronger than the lion, whose fame is sung far and wide, and whose beautiful body can really be compared with that of Aśvinikumâra.
- 38. He, whose lotus-like fame is known in tanks built with large stones, freed Gayâ from difficulties, by frequently paying many jewels without any show, acquired by him, the lover of good morals. In the same way he uses his wealth in relieving other places of pilgrimage also from imposts &c.
- 39. He the lotus-eyed, is seen by his foes going at the head of one laksha battles; satisfies the lotus-eyed ones even by giving a laksha; and making scales

of gold has weighed himself one laksha times, as if under pretext of the form of its stick*(?); for these reasons he is known by the name beginning with Laksha.

- 40. When a large quantity of purified gold was brought on the holy ground of Yajna for a Tulâdâna (gift of one's weight in gold) it was imagined by curious persons whether it was the heap of splendour robbed of the hostile kings in battles; or the revered mountain Hemâdri come to see his brother Vindhyâchala.
- 41. He, who was steady and had a heart free from frauds, liberated Gayâ like Arjuni (Draupadi) whose life was troubled by the levies taken forcibly by different share-holders; he has made the habitation of Dharmarâja tenantless, and is the abode of Lakshmî, and has his extensive charities worshipped by all people.
- 42. When formerly the *Tuld* (the balance used for weighing the king in; and the sign of the zodiac) prided itself on its superiority over all others of its kind, before this steady king, who cannot bear the pride of any one, he caused to be made another *Tuld* more respected and honoured than the other, and thus sent it (the first) to heaven (where it stands, still, as a sign of the zodiac).
- 43. How can poets enumerate the different kinds of gifts of this nobleminded king, who attracts the wealth of the lands of all countries (to himself); who never becomes agitated by the (sight of) numerous kings, who never gives out what he gives, and who delighted on seeing the deserving, adds more gold into the balance already overflowing with it.
- 44. He, who satisfied all the world round with his justice, and who was long-lived, had a son Mokala, who was devoted to his elders, who was as beautiful as Kâmadeva, and equally intelligent. As he was like *Kumâra* in breaking down the *Bhubhrit* (mountains and kings) by his prowess, and forwardness, and as he was all-knowing, his father made him the lord of the *Achalabhu* (mountain-land).
- 45. This king caused to be built many places whose high and clear tops appeared beautiful with fine and large golden pots (pennacles); these looked like the best of elephants ready to start for heaven with golden pots on their head, as if desirous of drinking the ambrosia of the gods.
- 46. When the great glory of Mokala, the lord of the earth, shone forth on the face of the earth, the kings of Angadeśa being vanquished sought shelter of thick leaves (viz. forests); the kings of Kâmarudeśa lost their beauty; the kings of Vangadeśa gave up their pride on hearing his voice and betook themselves to the Ganges; the kings of Nishâdadeśa saw in him their destruction; the kings of Chinadeśa were humbled in battles; and the kings of Turaska, whose bows fell down, were parched up with fear.

Or does it mean under pretext of, as it were, fixing the scales for presuming to weigh him (?)

- 47. It is a wonder that the clouds in the form of enemies' elephants, which look beautiful with the rain-bow of Sindura on their heads, whose roaring is loud and awful; in which flash lightning in the form of tusks which are as black as the oiled hair of a woman's head, being, in their time, pierced with his arrows, immediately pour down much blood (instead of water)!!
- 48. When his best horses neighing sweetly, showing their pride with great honour, in battles marched along, their heavy steps raised columns of dust causing darkness, which deprived the sun the destroyer of that darkness of his eyesight; he should indeed rest satisfied, considering himself fortunate that he can make out his own horses, whose colour has also been changed.
- 49. His adversaries and their ministers thought that they would not be able to escape his wrath even to the end of the directions, as they are illuminated with the beautiful brilliant rays of the sun; nor would they be able to fly from him as the ocean lies like a barrier; so it is good to do homage to King Mokala and always pay him (tribute) money.
- 50. He, who is the first among the wise and who is strong, causes to be plastered the vessel-like Brahmanda, which in its middle appears to be (dark) light-coloured on account of the spreading of a large quantity of smoke issuing from the burnt cities of his numerous strong enemies, by the directions, his maids-servant, that are surrounded with gifts, with (his) brilliant glory, which appears more so, for having white specks of stars on it.
- 51. He, who is a leader, a protector, intelligent, and fond of battles made king Piroza of the north who was humbled with his army, a flower to adorn his glory, his wife. The lords of villages, talking of this exploit naturally compare it with the crushing of a deer in mere sport by a lion fond of tearing the temples of mad elephants.
- 52. The Sun when he enters into the (Libra) Tulâ has to sever his connection with Kanyâ (Virgo) that appears beautiful with the Chitrâ and Hasta (Nakshatras), and thus attains a lower position; but when king Mokala, who is a steady man, enters into the Tulâ (balance) he ever attains the highest position and marries many kanyâs (daughters) of other kings.
- 53. He who is mindful of protecting his marching armies, and whose observance of morals is not a bit less than that of Manu, is not conscious of his own glory as a lion is not of his own strength. I believe Brahmâ puts it in the form of shinning gold in the balance against him, but he still hangs lower and lower! Is he conscious even of this!
- 54. The grammarians who were all struck with the same idea began to doubt on seeing millions of gold prepared for gifts far in excess of the actual

weight, whether the word Tulâ is used in respect of Surataru that gives gold on being prayed to by Indra, or in respect of Chintâmani, or in respect of a piece of Hemâdri.

- 55. The wives of his enemies seeing the day-time much prolonged imagine, when Mokala who acts upto his word is engaged in battle, that the horses of the sun much slowly on account of the confusion caused to the driver by the injury received in the loss of his eyes by the particles of dust raised from the earth by the tossing of the hoofs of numerous, prancing, tall, and excellent horses of his heroes.
- 56. What learned man does not know, that in the last of the Yugas, viz. Kaliyuga, Dharma (Religion) being on one leg has lost all support, and could not consequently walk among the decietful. (But) He enters into Sri Mokalendra, and through him into many assemblies of the learned;—Mokalendra, who is fit to support him on account of his good descent which is like a stick to him, who is pure both externally and internally (at heart), and who is strong.
- 57. Really Indra, while playing with dice with Sri Mokala, staked Mount Meru, and Mokala the clever and intelligent won it; for otherwise whence these large quantities of gold on the face of the earth, which he gives away without feeling a single pang.
- 58. When by the pouring of ghes (clarified butter) into the sacred fire there arises much smoke, the numerous eyes of Indra are injured and blinded; and he is rendered unable to receive the part of the oblations offered to him. I think through the spiritual merits of this king the sun with his numerous karas (hands or rays) rambles having laid aside his idleness and covers (to soothe them) the eyes (of Indra).
- 59. He who having gained a spotless Mandala (court and disc) and having been Kritatula (weighing himself against some rich materials; and standing in the Tula rasi), is the cause of joy to Puskara (the place so called, and the lotus) and is full of lustre—how should he not be the first of the illustrious?—he, again, from whom the earth receives all kindness being made Nispanka (void of the wicked, hand dry) and from whom spring good Rajahamsas (kings and geese) and from whom his relatives derive prosperity and thus add to his worthy greatness.
- 60. His numerous enemies who live in the mountains situate on the seashore being ever affraid of him, believe that when he would set out for conquests the fore-part of the hoofs of his numerous horses would dig up the earth, and would thereby fill up the sea and make way for them to cross over.
- 61. He had for his guest Srî Dvârkâdhîsa, who supports the three worlds; to whom he built a temple according to the prescribed form and accompaniments;

which the friendly god of the lotuses (the sun) looked upon with fear, thinking it to be the Vindhyachala, the best of the mountains, freed from the binding effect of the unfailing word (of Agastya).

- 62. When he caused all the metals to be melted in large quantities, and poured them on the earth in large streams, the throat of the Fanindra was parched up leaving little saliva in it. After teaching the *Bhdshya* to his pupil, he plainly told the lord of Lakshmi that the glory of Mokalendra surpassed that of Garûda (who causes similar effects in him).
- 63. The sea is unable to bear its separation from Dvarkanatha for a moment so it lives before his feet with great love assuming the form of this lake; and the Vindhyachala lies here with great humility believing that none but he the spotless under the instructions (?) of Agastya Muni would free him from the curse.
- 64. There is not to be seen such a bank as this lake has, which is as it were a companion of the top of the Vindhyâchala, which has by its bulk and weight made a well of the sea, where the waves break being sent forth violently by the breasts of women playing in the water, where the water-insects are satisfied, where the bridge breaks the rapid flow of the rivers and rivulets,—(bridge) which is the cause of the world's prosperity, and which has a banner flying over it.
- 65. The Chitrakutachala is victorious, situated in the midst of the kingdom of this king, which looks very awful from a distance, being surrounded with large caves, whose middle portion like that of Mahodara (Ganesha) is not be known by any other mind, and whose glory is most sacred.
- 66. Let there be mountains lofty with seven peaks and more, but they would not bear comparison with the wonderful Chitrakûţa, the abode of Tirthas (places of pilgrimage):—Chitrakûţa, which proudly thinking that the rivers rising from itself should not have a lower course, bears on its top Kshîrasâgara, the abode of the growth of lotuses.
- 67. The forests do not know (experience) the happening of the Dâvânala in Grishma ritu, which spreads round, its (Dâvânala) birth (beginning) being prevented by the streams of juice produced from large flowers of the young plants of the Sâlatrees wet with a great deal of sprinkling from the numerous drops of water thrown up by the streams (issuing from) the beautiful villages on this mountain.
- 68. There is a river of clear water on this mountain; wherein fishes, which are active in swallowing the large number of sesamum seeds thrown in handfuls of water while performing the *Pitri tarpana* (offering of water to the manes of

dead ancestors) forgetting in sport to distinguish the one from the other run about to pick up the particles of black collyrium washed out of the eyes of beautiful women bathing in it.

- 69. What is Lankâ the fortress protected by the sea, and what is even Alakâ, surrounded by large numbers of the birds that have lost their pride in the rainy-season, when compared with one that, with great honour, bears on itself the Kshîrasâgara, which is difficult of access to other Râjahamsas (kings and swans), which is an ornament of the earth, and which occupies a large extent of land;—such is Chitrakûta the Victorious.
- 70. Bhagavati Bhavani who is the source of good-fortune, who lives with her husband, and who is like a preceptor to women faithful to their husbands, keeps herself waking in this mountain; so does the god (Sankara) the compound for whose dance is made fragrant with the particles of honey falling from the numerous flowers of the Santana tree (?) offered by all the women in heaven.
- 71. The deer-eyed women, who bathe in the fine water that has taken of the great fragrance when Bhavâni took a bath to make herself comfortable on sweating at once with a great deal of overflowing devotion towards the actions of Sankara who is always prayed to by gods that he might order them to do some service, are equal to her (Bhavâni) in respect of fidelity as well as devotion to their lord.
- 72. Mount Kailâsa is shown to be incapable of bearing the dance, from the time it was removed from its original position with the hands of Râvaṇa; so Sankara, the companion of Srî Gaüri, lives now on the prosperous land of this mountain which looks naturally fine.
- 73. The King having erected to him a palace (temple) each of whose stone is full of all artistic beauty, and which is as it were a mirror for the face of the quarters, appointed, delighted and liberal as he is, the proper village of Dhanpur whose revenues are sufficient to defary all the expenses incidental to the worship (of the god).
- 74. King Mokala established the god in the year 1485 after the time of Vikramarka on Thursday the 3rd of the Krishna paksha (dark-half) of the sacred month Falguna, when the sun was in Capricornus, Jupiter was in Aquarius, and the nakshatra was Uttara Falguni.
- 75. May the hand of king Mokala, the wealthiest, protect the earth as long as Indra who is praised by the wives of gods, while going to attend sacrifices or marching for battles, rules over the city of the gods, and as long as the thousand heads of Sesha Någa are in existence to bear the earth on them one after another.

- 1. This fine inscription was composed by Ekanatha son of Vishnu-bhatta of the splendid Dasapura caste.
- 2. Vijala had a son named Manâ, who had great merits and was famous. He had (a son) Viśala who was an artist and possessed many good qualities. He caused his many servants to build the temple of Sankara with very high pinnacles and surrounded by many temples.
- 3. May that Viśala live long who wrote the whole of this inscription in praiseworthy hand and unerring in the palace of Srîman Samâdhîśa Maheśvara.
- 4. This inscription was engraved by Viśala son of Sutradhâra Manâ, an artist and son of Vidyâdhara.
- 5. Artist Viśala wrote and engraved this splendid inscription in fine letters in the palace of Samâdhiśa. Sam: 1485. Sake 1350. 3rd of Mâgha Sukla (bright-half).

VII.

A stone inscription of Adabadanathaji at Nagada near the temple of Ekalingaji. Dated Samvat 1494.

The temple of Adabadanāthaji is a Jain temple near the village of Nāgadā and on the bank of a lake called Nāgahrida in the neighbourbood of the temple of Ekalingaji. In this temple there is a Jain idol in the base of which this inscription is to be found engraved in a white marble stone. It is 4 ft. 4 in: by 1, containing eight lines of Sanskrit prose composition in Devanāgari character. The stone is, of course, well preserved being inside the temple. It mentions the name of king Kumbhakarna of Meywar, son of Mokalasimha, in whose time Shā Saranga, a wealthy merchant of Srī Devakulapāṭaka, caused to be made and established an idol of Srī Sānti Jinavara. It is dated Samvat 1494. A. D. 1438.

- संवत १४९४ वर्षे माषशुदी ११ गुरुवारे श्री
- र मेदपा(ट)देशे भौदेवकुरुपाटकपुरवरे नरेश्वरश्रीमोकल पुत्र
- २ भीकुंभकणै मूपपतिविजयराज्ये श्रीउसवंसे(शे)श्रीनवलक्षशालमंडनसा लक्ष्मी
- 😮 घरसुत सा 😿 छाधू तसुत्रसाधुश्री रामदेव तद्भार्या प्रथमा मेलादे द्वितिया माल्हणदे । मेलादेकुक्षिसंभूत
- ५ सा श्रीसाहणपाल भारहणदेकुाक्षिसरोजहंसोपम जिनधर्मकपूरवातसवधानुक सा सारंग तदगनाहीमादे लखमादे-

- ६ प्रमुखपरिवारसहितेन सारंगे(ण) निबभूजोपार्जितलक्ष्मीसफलीकरणार्थ निरूपममञ्जूत श्रीमहत् श्री शांतिजिनवरार्विवं सपरिकरं कारितं
- प्रतिष्ठितं श्रीवर्द्धमानस्वाम्यन्वये श्रीमत्खरतरगछे श्रीजिनराजसूरिपहे श्रीजिनवर्द्धनस्रित(स्त)त्पहे श्रीजिनचंद्रस्रित(स्त)त्पहपूर्वाचळच्यिकासहश्र(ख)करावतारैः श्रीमिज्जिनसागरस्रिभिः
- ८ सदार्वदते षटितं सूत्रधारमदनपुत्र धारणावीकाभ्यां आचंद्रार्कं नंद्यात् ॥

TRANSLATION.

During the victorious reign of king Sri Kumbhakarna, son of the best of kings Srî Mokala in the best city of Srî Devakulapâţaka, in the country of Śri Medapata, (there lived) Sadhû Śri Râmadeva, son of Shah(?) Ladhu, son of Shah (?) Lakshmidhara, (and) an ornament in the branch of Navalakhâ in the family of Usa (Ukesa). He had two wives Melâde and Mâlhagade. Shah (?) Srî Sahanapâla was born of the womb of Mâlhanade, was like the scent of camphor in the Jain religion, the leader of the community (?), with his two wives Himâde, Sakhmâde, and other relatives, caused a very beautiful and wonderful idol of Srî Sânti Jinavara to be made with all the appertenances, thus to make proper use of his acquired riches. The ceremonics of its establishment were performed by Jina Sagarsuri; the sun covering with his numerous rays the pûrvâchala-like seat of Srî Jina Chandrasuri, the successor of Srî Jina Vardhanasuri, the successor of Srî Jina Rûjasuri of the Srî Kharataragachha and of the family of Sri Vardhamânasvâmin. Formed by Dhârana (and) Vika, sons of Sútradhára (mason) Madena 🌁 🦠 * may there be happiness as long as the sun and moon endure.

VIII.

A stone inscription in a Jain Temple at Ranapura near Sadadi in Jodhpore territory. Dated Samuat 1496.

This inscription stone is built up in a pillar to the left of the entrance into the temple of Rågakapuraji at Rågapura which is about 6 miles South-West of the village of Sådadi under Jodhpore. The stone, a slab of white marble, measures 3 ft. 3 inch.: by 1 ft. 1 inch containing forty seven lines of Sanskrit prose in modern Devanâgari Characters. It being inside the temple is very well preserved. In respect of its contents it is also very much important inasmuch as it gives a regular list of some forty one kings of the Sûrya dynasty of Meywar beginning with Bappa and ending with Rågå Kumbhakarna, the well known Kumbho Rågo. In the reign of the last mentioned king Dhanâsâ, a devout Jain, caused to be built a Vihâra (temple) to Chomukhaji, a Jain God, with the permission of the ruling chief. The date of the inscription is Samvat 1496, A. D. 1440.

L. 15.

- **१** स्वस्ति श्रीचतुरमुखाजिनयुगादीश्वराय नमः ॥
- २ श्रीमद्विक्रमतः १४९६ संख्यवर्षे श्रीमेदपाटराजाधिरा-
- 🤰 जश्री बप्प १ श्री गुहिल २ भोज ३ शील ४ कालमोज
- 😮 ५ भर्तृभट ६ सिंह ७ महायक ८ राषीसुत युतस्वसुव
- ५ र्णतुलातोलक श्री खुम्माण ९ श्रीमदलद्द १० नरवाह
- म ११ शक्तिकुमार १२ शुचिवर्म १३ की तिवर्म १४ योगराज
- ७ १५ बैरट १६ वंशपाल १७ बैरीसिंह १८ वीरसिंह १९ श्री अरी
- ८ सिंह २० चोडसिंह २१ विक्रमसिंह २२ रणसिंह २३ खेमसिंह
- ९ २४ सामंतसिंह २५ कुमारसिंह २६ मथनासेह २७ पदासिंह
- **१० २८ जैत्रसिंह २९ तेजस्वीसिंह ३० समर्रासह ३१ चाहुमा**
- ११ न भी कीतुक्रमृप श्री अल्लाबदीनसुरत्राणजैत्रबप्प
- १२ वंश्य श्री भुवनसिंह ३२ मुत श्री जयसिंह मालवेश
- **१३** गोगादेवजैत्र लक्ष्मासिंह ३४ पुत्र श्री अजयसिंह
- १४ ३५ भ्रातृ श्री अरिसिंह ३६ श्रीहम्मीर ३७ श्री खेतसिंह ३८
- १५ श्री सक्षाद्रयमरेद्र ३९ नंदनसुवर्णतुलादिदानपुण्य
- १६ परोपकारादिसारगुणसुरदुमविश्रामनंदन श्रीमीकल
- महीपति ४० कुलकाननपंचाननस्य विषमतमाऽभेगसारंग
- १८ पुरनागपुरनागरणनराणकाऽजयमेरुमंडोरमंडलकरवुदी
- १९ खाद्याटस्जानादिनानामहादुर्गलीलामात्रप्रहणप्रमाणि
- २० तजितकाशित्वाभिमानस्य निज्ञभुजोिज्जतसमुपार्जितानेकभ
- २१ द्रग्जेंद्रस्य म्लेञ्छमहीपालन्यालचकवालविदलनविहंगमें
- २२ द्रस्य प्रचंडदोईंडखंडिताभिनिवेशनानादेशनरेशमालमा
- २३ लालालितपादारिवदस्य अस्वलितललितल्धमीविला-
- २४ सगोविदस्य कुनयगह्नदहनदवानलायमानम्(ता)
- २५ पपलायमानसकलबल्लप्रतिक्लश्मापश्चापदबंदस्य
- २६ प्रबलपराकमाक्रांतिदेलीमंडलगुर्बरत्रासुरत्राणदत्तातप
- २७ त्रप्रथितहिंदुसुरत्राणविषदस्य सुवर्णसत्रागारस्य षट्दर्श
- २८ नधर्माधारस्य चतुरंगवाहिनीवाहिनीपारावारस्य कीर्त्तिधर्मप्र
- २९ जापाळनसत्यादिगुणिकयमाणश्रीरामयुधिष्ठिरादिनरेश्वरानुका
- ३० रस्य राणाश्रीकुंभकर्णसर्वोर्वीपतिसार्वभौमस्य ४१ विजय
- ३१ मानराज्ये तस्य प्रसादपात्रेण विनयविवेकधर्यीदार्यशुभकम
- निर्मलशीलायद्भुतगुणमणिमयाभरणभासुरगात्रेण श्रीमदहम्मद
- ३३ सुरत्राणदत्तभुरमाणसाधुश्रीगुणराजसंघपतिसाहचर्यकृताश्च
- १४ र्वकारिदेवालयाद्याङंबरपुर:सरश्रीत्राकुंजयादितिर्थयात्रेण अजा
- ६५ द्विरिंग्डरवाटकसालेरादिवहुस्थानवीनजैनविद्वारजीणोंद्वार

- १६ पदस्थापनाविषमसमयस्थागारनानाप्रकारपरोपकारश्रीसंघस
- ३७. त्काराचगण्यपुण्यमहार्थक्रयाणकपूर्वमाणभवार्णवतारणक्षम
- ३८ मनुष्यजन्मयानपात्रेण प्राग्वाटवंशावतंससं०सागरस्तसं०कुर-
- १९ पालभा कामलदेपुत्रपरमार्हतसं घरणाकेन ज्येष्टभातृसं रतामा •
- ४० रबादेपुत्रसं०लापासञ्जासोनासालिगस्वभा०सं०धारलदेपुत्रजाहा
- ४१ जावडादिपवर्दमानसंतानपुतेन राणपुरनगरे राणाश्रीकुंभकर्ण
- ४२ नरेंद्रेण स्वनाम्ना निवेशिततदीयसम्बद्धादादेशतस्त्रेलोक्यदीपका
- ४३ भिधानः श्रीचतुर्भुखयुगादीश्वराविद्यारः कारितः प्रतिष्ठितः
- ४४ भी बृहत्तपागच्छे श्रीजगचंद्रसुरि श्री देवेन्द्रस्रीसंताने श्रीमत्
- ४५ श्री देवसुंदरस्रिपद्यभाकरपरमगुरुसुविद्वितपुरंदरगच्छाचि
- ४६ राजश्रीसोमसुंदरसृरिमिः ॥ ॥ कृत मिदं च स्त्रधारदेपाकस्य
- ४७ अयं च भी चतुर्मृखिविहार आचंद्राकै नंदतात् ॥ शुभं भवतु ॥

TRANSLATION.

Hail. Salutation to the revered Jina, the first lord of the yuga *having four faces. In the year numbering 1496 after the illustrious Vikrama, the mighty potentate of Srî Medapâţa, Srî Bappa, 1; Sri Guhila, 2; Bhoja, 3; Sîla, 4; Kâlabhoja, 5; Bhartri-bhaṭa, 6; Sinha, 7; Mahâyaka, 8; Srî Khummâṇa, the weigher of the weight in gold of himself with his son and wife, †9; the famous Allaṭa, 10; Nara-vâhana, 11; Saktikumâra, 12; Suchi-varmau, 13; Kîrti-varman, 14; Yoga-râja, 15; Varaṭa, 16; Vamśapâla, 17; Vairi-siṇha, 18; Vira-siṇha, 19; Srî Ari-siṇha, 20; Choḍa-siṇha, 21; Vikrama-siṇha, 22; Raṇa-siṇha, 23; Khema-siṇha, 24; Sâmaṇt-siṇha, 25, Kumâra-siṇha, 26; Mathana-siṇha, 27; Padma-siṇha, 28; Jaitra-siṇha, 29; Tejasvi-siṇha, 30; Samara-siṇha, 31; Srî Bhuvana-siṇha, a descendant of Bappa and the conqueror of Śrî Allâvaddina Sultan‡ and of the Châhumâna? king Srî Kîtûka, 32; (his) son Srî Jaya-siṇha, 33; Lakshma-siṇha, the vanquisher of Gogâ-deva, the king of Mâlavâ, 34; (his) son Srî Ajaya-siṇha, 35; (his) brother Śrî Ari-siṇha, 36; Śrî Hammira, 37; Śrī Khet-siṇha, 38; the king named Śrī Laksha, 39; (his) son king Śrî Mokala, who was like the

[•] It may mean "the lord of the yugas," i.e., Time, corresponding to Chronos, the Ancient of Days, or according to the Zendiks, Zravâna Akarana.

[†] Referring to the custom of giving gifts to Brahmanas of as much gold, silver, &c., as equals the weight of the body,—commonly called general.

[‡] द्वाम —A strange Sanskritised form of the Arabic Sultan, from Semitic root, Salita or Saluta, to exercise power,—vide Cherbonnean's Dictionary. Suratrana may either mean "protected by the gods," or, "protector of the gods" or Brahmans, who are called Bhû-devas or carthgods. The Hindus must evidently have meant the former.

[§] i. c., Chohana.

Nandana,* the repose of the tree of paradiset, on account of his excellent qualities such as liberality, in the form of suvarna-tula! and others, righteousness, beneficence, etc., 40; in the illustrious reign of the greatest of all monarch, Rânâ Srî Kumbhakarna, 41;--who was the lion of his race which was like a (luxurient) forest; -- who had demonstrated the pride of conquering Kasi by scizing, in mere play, the several great fortresses (such as those) of the very inaccessible and impregnable Sâranga-pura, Nâga-pura, Gâgaranana Rânakâ. Ajayameru, Maudora, Mandala, Kara, Bûdi, Khâtta, Châtta, Sujâna, and others, who was powerful by his own arms and had acquired many excellent elephants, who was a garuda in destroying the hoards of the snake-like Mleclichha kings,whose foot-lotus was carressed by rows of the fore-heads of the kings of various countries whose obstinate resistence was baffled by his terrible arm,-who was a Govinda for his amorous dalliance with the faithful and lovely Lakshmî-who acted like the wild fire to burn the thicket of bad state-policy, and by the force of whose valour droves of the beast-like hostile kings the Balûlas-were fleeing away,-whose title as the Hindu Sultan was made known by the umbrella of royalty given (him) by the Sultan protecting Gurjara and the territory of Phillî which was conquered by his great exploits,-(who was) the asylum of the sacrifice of gold,?—who was the supporter of the duties (enjoined) in the six systems of philosophy,-who was the ocean of the river of his quadripartite army, who imitated Srî Râma, Yudhishthira and other kings by his fame, virtue, protection of his subjects, truthfulness and other qualities, by his favourite the Sangha-pati | Dharanaka, the most excellent follower of Jaina,—the son of Kamalade, the wife of Sangh, Kurapala, the son of Sangh, Sagara who was the crest-jewel of the family of Pragvata, -whose body shone with ornaments studded with the gems of modesty, discrimination, fortitude, generosity, virtuous, acts, virtuous disposition and other eminent qualities,-who had made pilgrimages to the sacred Satrunjaya and other holy places, after the commencement of (building) magnificent temples, &c., in company with the saintly Gunaraja. the leader of a company of pilgrims, with the farman of the illustrious Ahammada, the Sultan-who was a person worthy to be the vessel of humanlife able to cross the mundanc ocean which was being filled with the great acts of innumerable merits, such as the good treatment of the (Jain) community (and)

^{*} Name of a grove or garden frequented by the gods, especially Indra's pleasure-ground or elysium.

[†] i. e., the Kalpa-vriksh, a fabulous tree in Indra's paradise or Svarga, granting all desires bence also used figuratively for a generous person.

[‡] The gift to a Brâhman of as much gold as equals the weight of the body.

[§] i.e., who performed sacrifices and liberally distributed gold among the Brahmans.

^{||} The leader of a company of pilgrims.

various kinds of beneficent acts (consisting of the erection or opening) of almshouses in hard times, the installation of the foot-marks (of the Jain God), the repairs of old and (the erection of) new Jain temples at Ajâ-hari, Pindâravâtaka. Sabra and many other places, with (his) increasing progeny consisting of Jadnya, Jâvadâ and others, (who were) his sons by his wife Sangha-Dhâralade. Lâshâ, Sajà, Sonà, Sâliga—the sons of Ratnade, the wife of Sangh, Ratna, his (i. e. Dharanaka's) elder brother, (being directed) by the king Rana Sri Kumbhakarna, the temple, founded in his (Kumbhakarna's) own name, of the first lord of the Yuga-Srî Chatur-mukha,-calledTrailokya-dipaka, was, by his order and favour, built in the city of Ranapura and was consecrated by Sri Soma-sundarsuri of Sri Vrihattapagachchha?, who was made the superintendent of Purandargachehha by the great Guru who was (as it were) the sun of the gâdi of the illustrious Srî Devasundar-sûri, (and) who was among the pupils of Srî Jagach-chaudrasûri and Srî Devendra-suri. This is made by the architect Depâka. And may this Sri Chaturmukha-Vihâra prosper till the sun and the moon (shine). May happiness attend it.

IX.

A stone inscription of Ekalingaji near Udeypore in Meywar, Dated Samvat 1545.

The inscription is placed in the temple of Ekalingaji, the tutelary god of the Sisodia kings of Meywar, at the time of its complete repairs in the reign of Mahârâṇâ Śrî Râyamalaji. It is a very long inscription containing one hundred Saṇskrit verses, and gives an account of different gifts of villages by the kings of Chitore for the maintenance of the temple. By way of eulogium it also mentions the wars with the Mussalman kings of Delhi and Gujarat in the times of Mokal, Kumbhakarṇa and Râyamalla. Then the writer Maheśvara gives his own genealogy and mentions his own position in the court as poet laureate. The inscription gives the date of the repairs as Saṃvat 1545, A. D. 1489.

[॥] श्रीगणेशाय नमः ॥ अन्नमः शिवाय ॥ आनंदोद्दाममूर्त्तिस्त्रिभुवनभवनस्थित्यपायोप्तकोर्तिर्विच्यानुच्यात्तवामा निर्विलसुरनैरेरेकलिंगोरनामा ॥ रुद्रो रौद्रारिवीरप्रकरतरुवरव्यासहव्यांसमुद्रो माद्यन्मायोर्द्धकायः स्पृद्यतु जगदुत्साहसंवर्द्धनाय ॥१॥

यदागमविदो विदां पदममंदमाचक्षते यामिन्दुकृतशेखरं हरमतीतविश्वापदं ॥ यथामित महोदयं तामिह काव्य मातन्वतां शिवं कविकलावतां प्रमथनाथमभ्यर्चये ॥२॥

उत्साहं सुंदरी वो दिशतु पशुपतेर्यत्कृपापार्वणेदोः संद्योतः संचितांतस्तिमिरपर मधिश्रद्दधानं धुनोति ।।।दिव्य-

- अव्यप्रमोदं कविकुमुदवनं निःप्रदोषं च तत्वन् कार्व्यामोधीम(न)धीसि(ति)क्षितिषुज्ञवरसश्रीयुज्जअर्कः रीति ॥३॥
- स्फुटं यस्याः पारिप्रवनयनकोणैकसरणः कपालिकोधाग्निज्वलितवपुरीद्धत्यस्पृतः॥ मनोभूरप्यस्या हिमगिरिसुतायाः सकरणः कटाक्षत्र्याक्षेपो दिशतु कवितां नः परिणताम् ॥४॥
- कासौ मन्कवितौषिती क महिशा खुम्माणभूमिभुजामेवं सत्यपि राजमळुटपतेर्जागति काचित्कृपा ॥ यामासाद्य महेश्वरः कविगिरां मार्गे चराम्यभेकोऽप्युत्रे व्यग्रमुखस्य कंटकङ्कळस्याधाय मौलौ पदं ॥५॥
- अस्ति स्वरितमती सुपर्वजगती सौंदर्यसर्वस्वमूर्भूरिश्रीमंहती महो ,विद्वधती श्रीमेदपाटावानिः ॥ भूदृंदारकवृंदमं-दिरिश्वरःस्फुर्जनपताकोच्छलचेलादोलनवीज्यमानतरणिविभ्राजिराजनवती ॥६॥
- भीमेदपाटवसुधा वसुधाधिपत्यचिन्हं बमार मुकुटं किल चित्रकूटं ॥ नो चेदियं महिमपास्य मही महीपैरन्यामयं कथमनाधतः नाथमस्याः ॥७॥
- बाप्यान्ववायधरणीरमणप्रभावादुर्वीमिभां नहिषरः परियोभवीति ॥ एवं गणः परिगणव्यशिवस्य कोऽपि श्रीचि-त्रकृटशिखरे नगरं व्यथत्त ॥८॥
- यत्र निर्क्षरिविद्यारिशंवराडंबरोच्छळदमंदर्बिदवः ॥ अंबरं सुरसरिक्षिरंतरं चक्रुरक्रमचलाश्रद्धार्दसं(शः) ॥९॥ नेद्य मंदिरमधीरमीक्ष्यते धीरमंदिरमाँनादिरं न च ॥ नेदिरा वसति दानवाँजता नासति स्फुरति दानक-स्पना ॥ १०॥
- एकलिंगरिवदत्तवैमवैस्तत्र भूमिरमणेरभूयत ॥ यहुणानणुमणीगणः कविश्मामुजां भवति कंउभूवणं ॥११॥
- श्रीमेदपाटमुवि नागह्दे पुरेम्द्भाष्यो द्विषः शिवपदार्पितचित्तदृत्तिः ॥ यत्कीर्तिकेतकिरन्मकरदर्बिदुरिदुः प्रचं-डकचिरेष च यद्यतापः ॥१२॥
- आनंदसुंदरमिनंदिरमप्युदारमिदीवरद्युतिवगुंठितकंठपीठं ॥ श्रीमक्रिक्टगिरिमंदिरमारराधहारीतराशिरिह शंकर-मेकलिंगं ॥१३॥
- भक्तया तपःप्रगुणया प्रससाद शंभुरेतस्य वांच्छितमथच्छदतुच्छमच्छं ॥ संवर्द्धमानपरमद्भिरदःप्रभावादन्वप्रहीत्स च मुनिस्तिमिह हिचेंद्रं ॥१४॥
- हारीतराशिरभवद्भकरस्य साक्षादाराध्य शंभुमभजत्परमां मुदं यः ॥ आश्चास्यतेशकृपया मुनिना च तेन वशेस्य निजितविषद्धमधीश्वरत्वं ॥१५॥
- हारीतसाक्षिवचनाद्वसमिदुमौलेससाय स दिजवसे दृपतिर्वभृव ॥ प्रयोगहीन्दृपसुता शतशः स्वशस्त्रयाजैषीच राजकमिलां सकलां बुभोज ॥१६॥
- दत्वा महीमच्छगुणाय सूनवे नवेंदुमीछि द्वदि भावयन्त्रपः ॥ जनाम बाष्पः परमेश्वरं महो महोदयं योगयुजाम-संत्रयं ॥१७॥
- कार्ति कित न वभूवुभीजखुम्माणमुख्या रणभरिनरपाये वाष्पभूषान्ववाये ॥ तदापे समुपनीतामंदसंपत्समूदः सन् मभवदरितंसदः केवलं वीतमोदः ॥१८॥
- चित्रदुर्गागिरिदुर्गरक्षणे स क्षणेन विरचन्महारणे ॥ जीवितं परिजहारनोर्ज्जितं वीरवर्त्माने समर्क्जितं वशः॥१९॥
- नरपतिरिरिसिंहः पारसीकैः समीकं यदयमभयचित्रश्चित्रकूटे चकार ।। असुकुसुमसमृहैरेनमानर्च चासाविति हि-तरितरेतद्वंशजालोजहाति ॥२०॥
- तदनु तदनुभावः सात्रवारण्यदावः कुसुमविशिखमूर्त्तावश्वविस्कारकीर्त्तः ॥ अमितिसमितिशूरस्तोषितातिष्ठपुरस्य मजनि जयशाली श्रीहमीरोश्युमाली ॥२१॥
- केलिनाटपुटभेदनादटत्कोटिनाटकटकैरवीनटत् ॥ चेलवाटमटनीषटोत्कटं श्रीइमीरषरणीपुरंदर: ॥२२॥

- स्कुरद्वाटीधाव कुरगखुराविश्वणणधरणीसमुन्मीलत्पांशुप्रतिहतपथे भास्कररथे हमीरक्षोणींद्रो विधृतरणमुद्रो रघुनूषं-रटिश्वालीपलीतटणटकुटीरं व्यरचयत् ॥२३॥
- र्बाल कर्णे पार्थे सुरतस्वरं रोहणीर्गीर धनेशं स्वर्धेनुं जनिमनुविनिम्मीय जगतां ॥ हमीरं निर्मित्सुधैनकनकदानी-ज्ञतकरं रणेश्वरं मन्ये विधिरिधकमम्यासमधृत ॥२४॥
- चलद्वलवलज्जलं तुरगनकचकाकुलं महागजगिरिवजं प्रचुरवीररत्नसजं ॥ इलाचलसमुद्भवं समितिजैवकर्णार्णवं शुद्रोष मुनिपुंगवः किल हमीरमूमीधवः ॥२५॥
- शरीरराज्यसंभारमसारं भावयन्तृपः ॥ हमीरः शिवपूजार्थे सिंहवल्लीपुरं ददौ ॥२६॥
- शशिखंडमंडनमखंडशासनं मनभारमीदरपयातयातनं ॥ स्थिरमैश्वरं जिगमिषुनिनश्वरं वपुदस्ससर्व सहमीरभू-धवः ॥२७॥
- क्षेत्रं क्षात्रस्य नेत्रं नयविनयवतो राजकृत्तस्यगात्रं धर्म्मस्यातोमहीपात्रिखिछन्2पकछाकौशळानां च पात्रं ॥ जैतं-हम्मीरवंशे (वि)धुरविनभुजां भित्रमार्थित्रजानामासीदासिधुवंधोद्भृतनृपतिनृतः क्षत्रसिद्धः क्षितीद्यः ॥२८॥
- यग्रामोद्भुरिवदिवोद्धिष(द्भत)शिखाः शामित्रमत्रोज्वलैरम्युस्य क्षणलक्षितार्थचरितः मौदासिधाराजलैः ॥ यौमी-साहिमहाहिगर्वगरलं मूलादवादीदहत् सक्षत्र क्षितिमृत् प्रभृतविभवः श्रीचित्रकृटेभवत् ॥२९॥
- प्राकारमेळमभिभूय विश्वय वीरानादाय कोशमालिल खलु खेतासिंहः ॥ काराधकारमनयद्रणमह्वभूपमेतन्भद्दीम-कृत तत्सुतसाव्यसम्र ॥३०॥
- दंडाखांडेतचंडमंडलकरप्राचीनमाचूर्णंयत् तस्मध्योद्यतधीरयोधनिधनं निम्मीय निम्भीयधीः ॥ हाडामंडलमुङ-खंडमधृतस्पूर्ण्येत्कवधोद्धुरं कृत्वा संगरमात्मसादसुमतीं श्रीखेतासिहोव्यधात् ॥३१॥
- म्रामं • • पनवाडपुरं च लेतनरनाथः ॥ स्ततसपर्यासमृतिहेतोगिरिजागिरीशयोरिदेशत् ॥३२॥ इष्टापूर्तैरिष्टदेवानयाक्षीन्नानाद्रव्यैर्विद्यदैन्यान्यपाक्षीत् ॥ भारं भूमेश्वांगजे योजयित्या शैवं तेजः क्षत्रवर्मा वि-वेश ॥३३॥
- श्रीसेतिश्वितेषे पुरंदरपुरीसाम्राज्यमासेदुपि श्रोणी लक्षत्वपोभिनव्ययुवर्ती भीत्या बुभोज ऋमात् ॥ मदंमंदमुदाज-हार मधुरं विश्रममभ्यानयज्ञकुरं करमादधे न परुषं चक्रे हृदापीडनं ॥३४॥
- जोगादुर्गाषि(पं यः) समरभ्वि पराभ्य छक्षः क्षितीद्रः कन्यारःनान्यहार्घात्सहगजतुरगैयौवराज्यं प्रपन्नः ॥ प्रत्यू हत्यूहमोहं प्रणिधिमिरवध्याखिलं राज्युत्ते निर्व्याजं जागरूको हरचरणरतः पैण्यराज्यं युभी-ज ॥३५॥
- भृवंदारकचंदसादकृत यलुक्षो महीमंडलं मन्येतन्महिमानमीरिद्धमना ब्रह्मापि जिझायते ॥ दंतिवाताते यत्क्रचि-त्क्रचिदजद्वाजिवज्ञत्यंजसा कापि स्वर्णेति रस्नति क्रचिदिलांदोलहृदुकूलत्यपि ॥३६॥
- लक्षो वलक्षकीतिश्रीववनगरं व्यतीतरद्रुचिरं ॥ चिरवरिवस्यासंभृतिसंपत्तावेकलिंगस्य ॥३७॥
- गयातीर्थं व्यथीकृतकथ(था)पुराणस्मृतिपयं शकेः क्र्रालोकैः करकटकनियंत्रणमधात् ॥ मुमीचेद भित्वा धनकन-करंकैभवभुजां सहप्रसाकृत्या निगडमिह लक्षाक्षितिपतिः ॥३८॥
- रुक्षः क्षोणिपतिद्विज्ञाय विदुषे सोटिंगनाम्ने ददौ ग्रामं पिष्पिरुकामुदारविधिना राहूपरुद्धे रवौ ॥ तद्वद्भष्टघने-श्वराय रुचिरं तं पंचदेवाळवं प्रादाद्धम्मैमतिजैलेश्वरदिश्चि श्रीचित्रकूटाचलात् ॥३९॥
- लक्षं सुवर्णानि ददी द्विजेम्यो लक्षस्तुलादानविधानदक्षः ॥ एतग्रमाणं विधिरित्यतीसावजेन सायो(यु)ज्युसुखं सिपेवे ॥४०॥
- नालं किः प्रमवितं मवितं न चैनो यरिमन्प्रशास्त्रति महिं महितप्रभावे ॥ श्रीमोकलः समुदितो भृषि छश्च-भूपात् पायोनिधेरिव सुधानिधिरिग्रतेजाः ॥४१॥

द्दीश्चवे सदुपदेशमाददे यौवने च विदये रिपुश्चयं ॥ संतताविभारुलाव मामिनी पुष्पसायक्रमिया न मोकलः ॥४२॥ सत्यक्षः प्रतिपञ्चलक्षवलाभिज्ञिन्युर्महासंगरे दूतानंतहगुन्मियन्मस्तरितः श्रीमोकलोभूपतिः ॥ आजि आजपुरे प्रभूतपुद्दिरीरालस्य दंमोलिभृतस्यो नाथधराधरोद्धरशिरःस्कंधानमांश्चीरक्षणात् ॥४३॥

कौ कुणितकर्णधारिवभवः श्रीमोकलो मूधवः प्रौढि नावमुपेयुषो जलक्तरः पीरोजपृथ्वीमुजः ॥ स्कंषावारमपारवार-णमजद्वाजित्रजन्याकुलं व्यावल्पत्तरवारिकारिणि रणाकूपारगर्मोक्षेपत् ॥४४॥

स्वर्षेनुःकोशवेश्मन्यभिवलति फलत्यंगणे करपशाखी चितारक्ष्मं वियत्नं वसतिमधिवसत्यस्य किवेत्ति भूपः ॥ मा-प्याकूष्यं सरूप्यप्रकरमाभिमतं मोकलक्षोणिपालांन्नामुष्मिन्कैः कविशैः प्रतिदिशमनिशं संशयानैर्वभू-वे सप्रए॥

मानं वाधणवाडं रामात्रामं चमोकलो तृपतिः ॥ शिवभृतागमशुस्कं शिवभोगार्थं समर्पयामास ॥४६॥ आमज्य संगरसरस्तरबारिवारिण्यासज्य राजशिखरं च करे कृपाणं ॥ निर्मिण्य चंडरुचिमंडलमाविवेश शैवं महः किमपि मोकलभृमिपालः ॥४७॥

उदियाय धराधरादमुष्मादवनीमंडलचंडरोचिचचैः ॥ अर्रिसधुरवंधुरांधकारप्रतिवर्णः पृथिवीदाकुंभकर्णः ॥४८॥ निनीपुरतनुब्ययं जनकवैरमुर्वीतले विलेशवरिपुवर्ज प्रचुरसंगरः स्थंदिले ॥ जुहाय भुजतेजसि ज्वलति कुंभकर्णो विभुनेवीनजनमेजयः प्रवलमत्र नुन्नासिना ॥४९॥

कुंभः कुंभलमेरमंबरमणिः स्तांतराले चलन्नानानिर्भरवारिहारिणि गिरी विध्ये व्यथादुन्नतं ॥ दुर्गः दुर्गमधित्य-कामधिचतुर्द्वारं निकायोचकैः प्राचीनं गरिणद्धमारिववरं तत्रोद्दविद्याधरं ॥५०॥

अचीखनत्सप्रसरांसि भूमृद्दिशोककोकानि निजांशुजालैः ॥ यत्राश्रितः श्रीपतिरेष शश्रत् शय्यासुखान्यंयुनिधौ न दथ्यौ ॥५१॥

रथरधमधिरूढमुखकूटेऽनितिखेदं विद्धेत्र चित्रकृटे ॥ अगणितगुरुगोपुरावरुद्धप्रतिवर्गे किलकुभमूमिपालः ॥५२॥ अचीकरन्मंदिरमिदिरापतेरमुत्र दुर्गे किल कुंभभूपतिः ॥ यच्छृंगरिंगद्रथभंगर्शकया रविश्वरत्युत्तरदक्षिणाश्रितः५३ माद्यन्मालवनायमूर्भि चरणं दत्त्वा रणेदीदहत् श्रीसारंगपुरं सपौरनिकरं कुंभो धराधीक्षरः ॥ धूमस्तज्जनिरुजन

गाम गगने मन्ये तदुल्लासितश्रोलीकुंतलकालिमा निरुपमे तारमन्तमुन्नीयते ॥५४॥

प्रत्यिक्षोणिपालान् समरभृति पराभूय काश्चिद्प्रहीताः काश्चित्सींदर्यरागादपद्वतमनसञ्चात्मनैव प्रपन्नाः॥ काश्चित्त द्वेदामुख्यैरुपद्वतिपदर्वामापिता भृमिभन्नी भूभृत्कन्यानवीनाः परिणयति पुराशंकरः क्रुंभक्षणः ॥५५॥

रामकुंडमनुमंडनीभवत्पग्रसंडचलदंडजवर्ज ॥ कुंभभूपतिरचीखनज्जनानंदमंदिरमपारशंवरं ॥५६॥

स्वर्षेनुर्ने थिनोति नामरतरुस्तोपं विधत्ते न वा चित्ते रोहति रोहणोपि न मनश्चितामणौ माद्यति ।। वृत्तिर्यत्रन-चैतसोपि वितरत्येतावदुर्वीपतौ श्रीकुंभे कतमस्त कर्णमहिमा भोजे च कीहरजयः ॥५॥।

नागहरं च कठडावणनामधेयं श्रामं तथा मलकखेटकसंज्ञमन्यं ॥ भीमाणनामकमयच्छदुमामहेरापूजोपहारियधेय रुपञ्चंभकणेः ॥५८॥

देशौ गीतगोविदसंग्रप्रबंधे स्मुरिखतन्त्रातिर्नृषः कुंभकर्णः ॥ विनिर्म्भाय विश्वोपकाराय शास्त्रं १सोह्यासि संगीत-राजाभिधानं ॥५९॥

संख्यावद्भिनं संख्या निरविधिदिता नो वियहेण्यलक्ष्मी यहतेभोभिरभोनिधिरिधमिलिनैयीवदापूरितोयं व्यक्तं नक्तंदिवं नो लिखति दशशतस्कीतहरतः समस्तं श्रीकुंभक्षोणिभर्तुर्गुणगणमननौ कोविनिर्गेतिमिष्टे॥६०॥ साद्धे सर्वधरावतंसिवभवैभोगेन लक्ष्मीवतामुलासेन मनोभवस्य सुकवेभीस्बद्धसन्यापृतैः त्रासेन प्रतिभूभृतामनुगत-

क्षोणीभुजामुस्सनैः काले कापि जगाम कुंभनृपतिः श्रीचंद्रच्डास्पदं ॥६१॥

भीकुंभकर्णादणोधेरजातोरितिमिरापहत् धत्ते कुवलयामोदं राजमलुस्सुधाकरः ॥६२॥

योगिनीपुरिगरीद्रकंदरं हीरहेमसिणिपूर्णमंदिरं अध्यरोहदहितेषु केसरी राजमहुजगतीपुरंदर: ॥६२॥ अवर्षत्संग्रामे सरभसमसौ दाडिमपुरे धराधीशस्त्रस्मादभवदनणुः दोणितसरित् स्खलन्मूलस्तुलोपिमतगरिमा क्षेमकुपतिः पतन् तीरे यस्यास्तटविटपिवाटे विघटितः ॥६४॥

श्रीराजमछन्द्रपतिर्द्यपतिश्वपातिरमधुतिः करनिरस्तखलांघकारः सचित्रक्टनगमिद्रहरिद्धिरीद्रमाकामितस्मजवना धिकत्राज्ञित्वर्गैः ।।६५॥

श्रीकर्णादित्यवंशं प्रमथपतिपरीतीयर्षप्राप्तदेशं पापिष्टो नाधितिष्ठेदिति मुदितमना राजमह्रो मर्हाद्रः तादृक्षोभूत् सपशं समरभृवि पराभूय मृढोदयाद्वं निर्धास्या(या)ग्नेयमाशाभिमुखमभिमतैरप्रदिक्तिंभमेषं ॥ ६६ ॥ आसज्येज्यं दरमनुमनःपावनं राजमह्रो मह्शीमालामृदुलक्तवये श्रीमदेशाय तुष्टः प्रामं रत्नप्रभवमभवावृत्तये रत्न-स्नेटं क्षोणीभर्ता व्यतरदक्णे सैंहिकेयाभियुक्ते ॥६७॥

यंत्रायंत्रि हलाहिल प्रविचलदंतावलव्याकुलं वरगद्वाजिवलक्रमेलककुलं विस्फारवीरारवं तन्वानं तुमुलं महासिह-तिभिः श्रीचित्रकृटे गलर्गर्वे ग्यासशकेश्वरं व्यरचयत् श्रीराजमह्योन्गः ॥६८॥

कश्चिद्गौरो वीरवर्यः शकीर्षं युद्धेमुभ्मिन् (प्रत्यहं) सं जहार तरमादेतन्नाम कामं वभार प्राकारशिक्षित्रकूटैकशृंगी।६९॥ योधानमुत्र बतुरश्चतुरो महोब्बान् गौराभिधान्समाधिशृंगमसावचैपीत् श्रीराजमलुनृएतिः प्रतिमलुगर्वसर्वस्वसंह-रणचंडभुजानिवादौ ॥७०॥

मन्ये भृत्वित्रक्र्याचलशिकारशिरोध्यासमासाय सयो ययोधो गौरसंह्रो सुविदितमहिमा प्रापदुर्वेनभस्तत् प्रध्वस्ता-नेकजाप्रच्छकविगलदस्कृपरसंपर्कदोषं निःशेषीकर्त्तुमिक्कृत्रेजति सुरसरिद्वारिणि स्नातुकामः ॥७१॥

जहीरलमहीधरं धराणिवृत्रजिद्धिकमादटरकटककंटिकवृत्तमसमावृतेषवतं विभिन्न भितुरासिभिर्विपुलपक्षमक्षीणवी-क्राक्षिपदिवोपलं समिति राजमहो विभु: ॥७२॥

वंशहाटकहिवर्षदहीषीत्कोषहव्यभुषि तत्परितुष्टः शौर्यदैवतमयछदतुखां कीर्त्तमस्य रूपतेः शशिर्गारां ॥७३॥ वृद्धत्वं वासुधायाः सदनमनुसरस्यंबुराधिः शिशुत्वं विस्तारं वा हिमांशुगिरिधरणिमिमां मानसं वाध्यवात्सीत् श्री-रामाव्हं सरो यन्नरपतिरतनोद्राजमहदस्तदासौ मोत्कुछुांभोजमित्यंवि (त्रि)दशदशमिनो हत संशेरतेस्म ॥७४॥

अचीलनच्छांकरनामधेयं महासरो भूपतीराजमहुः तन्मानसं यज्जलकेलिलोभाजाशिश्रयाते गिरिजागिरीशौ ।७५। श्रीराजमहृत्विभुना समयासंकटमसंकटं सलिले अंवरचुँगितरंगं सेती तुंगं महासरो व्यरचि ॥७६॥

मौली मंडलदुर्गमस्यक्षिपतिः श्रीमेदपाटावनेर्प्राहमुदारजाफरपरीवारोच्चीरत्रजं कंटछेदमचिक्षिपस्थितितरुं श्री-राजमहोु दुतं ग्यासक्षोणिपतेः क्षणात्रिपतिता मानोन्नता मौलयः ॥७७॥

खेराबादतरून् विदार्थं यवनस्कैधान्विभिद्यासिभिर्देडान्मालवजान्वलादुपहरन् भिदंश वंशान्दिषां स्पूर्जन्संगरसूत्रभृ-द्विरिधरासंचारिसेनांतरैः कीर्तेमैडलमुखकैर्व्यरचयत् श्रीराजमहो छपः ॥७८॥

यत्पाणिस्पतिकुताहतरिपुराधिरप्रोल्लसत्सिधरोभोरगप्रोन्मत्तयात्द्रतयुवतिजने तन्वति प्रौढनृत्यं ॥ उद्रच्छद्वाजि-राजस्वुरदलितधरोद्भृतष्लोनिसांतं नीलांतश्रेललीलां मजति स जयति स्रोणिमृद्राजमलः ॥७९॥

माद्यत्मंडपचंडम्भरहरिद्विन्नीहरोन्मूलनभीटाहंकृतिरिद्धसिधुधरणीपायोभिमंथाचलः ॥ रपुजंदुर्जरचंद्रमंडलरिः काश्मीरकंसाच्यतः कर्णाटांधकपूर्जिटिविजयते श्रीराजमलो त्याः ॥८०॥

वाग्मिनिर्ममलयामले कृतमतिस्तंत्रे विचित्रे विधी काम्ये राजति राजमहृत्यूपतेर्गीपालमद्दो गुरुः यस्य स्वरत्ययनै रमुष्य विषये संवर्द्धिता संपदो राज्यप्राज्यमभूदपायमभजन्तुचैररातिश्रियः ॥८१॥

प्रगीतासुतार्थानुपादानमेकं परं ब्राझणवामतस्तु प्रहाणं ॥ अदो दक्षिणामिषने राजमल्लो ददातिस्म गोपालभद्धा-य द्वष्टः ॥८२॥

L. 16,

- धिनानि निधनमातेपत्यहीने तदीयं धनमवनिषमोग्यं प्राहुरर्धागमङ्गः ॥ विदित्तनिखिलशास्त्रो राजमलुस्तदुङ्कन् विशदयति यशोभिर्वाष्पमूषान्ववायं ॥८३॥
- या भूर्वोद्धणसान्कृता तृपतिभिः खुम्माणवंशोद्भवैर्माभूत्तरजनि वस्तु मत्कुलभुधामादेयमापस्त्वापे ॥ इत्याक्षानवार्ड-डिमध्यनिमरेक्त्साह्यन् वाडवान् धर्मछो भुवि राजमहुजगतीजानिविजेजीयते ॥८४॥
- कुंभकर्णनृपर्वसभूमिपैरप्रहारजगतीजानि वित्तं ॥ नैव भोग्यमिति राजमछशीर्माल्यतामगमदग्र्यभूभुजां ॥८५॥
- पूर्वश्चोणिपतिप्रदत्तिनिखिलप्रामोपहारार्पणाकालेलोपमवाप यावनजनैः प्रासादसंगोप्यमूत् ॥ उद्धृत्योत्रतमेकलिय-निच्यं श्रामांश्चतान्पूर्ववद्दत्वा संप्रतिराजमह्युन्दपतिनीवापुरंचार्पयत् ॥८६॥
- आपो यरिमञ्जमलकमलाः शास्त्रिनः सद्रसालाः शालेयाल्यःसुलमस्रिला मंत्रुमौद्रीनमाला ॥ इक्षुक्षेत्रं मधुर-मददात् भट्टगोपालनाम्ने थुरमामं तमिह गुरवे राजमलो नरेंद्रः ॥८७॥
- यदि त्रिभुवनोदरे स्फुरति दुग्ध्यारांनिधिः शशी सुराभिष्ठल्लेन्मृगमदावदातयुतिःविभुक्क्वन(र्भजति केतकं यदि क्रिन्नि) तदोपमानं यशो लभेत विश्वद्यमं सुराभि राजमलुप्रभोः ॥८८॥
- धरामारं यस्मित्रिजमुजयुगेनोद्धृतवाति रुपुटं श्रीहम्मोरक्षितिपतिकुलांमोजतरणौ फणीशो यत्कीर्त्तिप्रचुरधनसारै-स्परतिक्रयः सर्पर्दे विलस्ति जयस्थेष तृपतिः ॥८९॥
- यक्रित्यं न हि तिन्निमित्तरचना मंचत्यपारं च यन्नो तत्पारदमात्मनेपदमदोन स्यात्परस्मैपदं ॥ दानं कांचनचार तिक्षतनृते श्रीराजमहो विभुर्धम्मीस्तत्र वितन्यते विहरिणस्तिष्ठति सर्वे सुखं ॥९०॥
- वंदो भृगोर्भगवतो भुवनप्रकारो चंद्रावतंसचरणांदुजचंचरीकः ॥ आसीत्पवीत्रचरितानुवसंतयाजी श्रीसोमनायध-रणीविषुषो अरण्यां ॥९१॥
- तस्यात्मजो नरहारिहेरिरेव साक्षादान्विधिकीकमलकाननतिग्मराद्रेमः ॥ आसीदिलातळविरंचिरिति स्फुटार्थ या बेद बेदवसतिर्विशदं वभार ॥९२॥
- तस्मादंबुजिनीपतेरिव मनुश्चंडबुतिः कश्यपादंभोजासनजो भृगुर्जलानिधेर्यद्वत्सुधादीधितिः ॥ संजाती खडरेरहीन-महीमा श्रीकेशवः कीर्त्तिमान् यो झोटिंग इति पृथामुद्वहदुर्यादिपंचाननः ॥९३॥
- अत्रिस्तत्तनयो नयैकनिलयो बानी विदांतस्थितिमीमांसारयमांसलावुलमितः साहिलसौहिलवान् ॥ मान्यश्रीगुही-लान्ययांयुजयमीविद्योतनस्याभवत् श्रीमरकुंभमदीपतेर्दशपुरबातिद्विजायेसरः ॥९४॥
- अत्रे: सूनुमंहेशोस्ति राजमह्यस्य संसादि ॥ यो विवादिकुले वृक्षे धत्ते मरोमविकमं ॥९५॥
- अत्रे: सूनुरन्नपद्मपद्मभिर्गाकृतप्रौढिर्भष्टमहेश्वरः कवियरः श्रीराजमहत्रप्रमोः ॥ स्वोपद्यप्रगुणः प्रशस्तिनियहे शस्तां प्रशस्ति व्यथादुद्यद्वीररसां नवीनस्त(च)नारम्थैकिलगालये ॥९६॥
- उर्वी याबदहींद्रशेखररूचं धत्ते तुपारित्वषं श्रीकंठः शिरसि स्ववश्वसि हरिः श्रीवत्समंभेंतिविः ॥ ताबद्राण्य-मखंडितं कलयतः श्रीराजमलुप्रभोरेषा कीर्त्तिलता परेव विवयं धत्तां प्रशस्तिश्चरं ॥९७॥
- यत्रीचोश्वतरप्रयंचरचनाचातुर्यचेतोहरे लब्ध्वानंदभरं मराजतगिरि सस्मारसर्वेश्वरः ॥ देवःसूत्रभृदर्जुनो ब्यरचयत् श्रीकांभवं मंदिरं रम्यं रम्यतमामिमामुद्दिकरसारिमन् प्रशस्ति सुधीः ॥९८॥
- वस्तरे तृपतिविक्रमात्ययात् वाणवेददारभूमिसंमिते १५४५ वैत्रशुक्कदद्यमीगुरवारे पूर्णतामलभत रद्धतिपिटिः।९९। एकस्थिनमतिरंगर्मिगितैरंगर्सगिभिरभंगजीवनैः कुर्वतीः जयति पावेती वशे विय्ववशुवसिर्महारसैः ॥१००॥

गीर्वाणवाण्यामाविचक्षणैर्नरेस्त्रयावसेयानि वचांसि कानिचित् ॥ सदेशभाषाममुस्रस्य भूपतेरनृष्ट्या छेल्यप्यं नयामहे ॥१०१॥ श्री एकलिंगप्रसादि प्राप्तपरमानेद श्रीहारीतराशिमुनिवचन प्राप्तमेदपाट प्रमुख-सभरत वसुमती साम्राज्यश्रीवापा सुम्मान शालिवाहन नरपाहन भोजकर्णादिक अनेकमहाराजा इणीवेशहुआ, इणीहींजवंशी अरिशीह चित्रोडगढ दृढप्राकारप्रकारप्रचंडमुजदंडमंडलित की-दंड हुआ तिथिरो पुत्र विषमधाडपचायण कलिकालकलंकीयाराय केदार हुमीर हुओ. तिणश्री-एकाँलग चतुर्मेलमृति धरावी शीहेलोग्रामदेवभोगार्थचडान्युं, तिवेरो पुत्र आमोक्षराय मोक्षदाताराय गुरुदानगुरुकुछ गुरुवागागलाराइ परमगुरु लखणसेन हुआ तिणी चुरुवो ग्राम एकलिंग भोगार्थ चडान्यं तिथिरापुत्र द्वापरभम्भीवतार विद्वरजनदैन्यदवदह्न दावानल पीरोजखान मानमहेनराजवृन्त-परमाचार्य श्री मोकलेंद्र हुआ. ितिणी दाधणवाडो आने रामुविग्राम आने शिवरात्रि नवशती जीकाईदाग देलवाडिक ॥ II 11 11 li П

TRANSLATION.

- 1. Bow to Sri Ganesh; Bow to Siva. May Sankara, whose form is resplendent with bliss, whose fame is built on the creation preservation and destruction of the three worlds, whose lustre is meditated upon by all the gods and men in the Vindhyáchala mountains, who is Ekalinga of the great name, who is Rudra known by the oblations in the form of great trees viz. very valorous and fierce enemies, whose máyá (illusion) is ever powerful, and who has half body, wish for increasing the happiness of the world.
- 2. I worship according to my intelligence the lord of Pramatha (Sankara), who is known as the abode of unfailing knowledge to those who know the Vedas, who is Hara, having his crest made of the moon and free from the misery of earthly bonds, who is light itself and the giver of success to poets making poems.
- 3. May the wife of Pasupati give you happiness, whose favour like the brilliancy of the full moon destroys the increasing amount of darkness collected in the heart, which takes away the defects of the poets like those from the forests and waterlilies which find novel pleasure (in it) and which infuses beauty into the ocean of poetry running in the land of study.
- 4. May the soft glance of the daughter of the Himâlaya, in a corner whereof even Kâmadeva, burnt as he was by the fire of the anger of kapâli found a
 proud shelter, point us the way to sublime poetry.
- 5. How wide the disparity between my muse and the greatness of the Khumana kings. Still I Maheśvara, a mere child, walk on the terrible path of poetry under the shelter of king Rajamalla's favour, placing a firm foot on the head of the numerous thorns scattered thereon with their points ready to pierce, (alluding to the malicious critics).

- 6. There is the land of Medapata happy, the abode of everything that is beautiful in the world, great with immense wealth, brilliant, fawning the sun with the flags on the tops of the houses of the Brahmanas flowing actively, and ruled over by good kings.
- 7. The land of Sri Medapâța has for her crown Chitrakuța in token of its dominion. Had it not been so why should the other lands throwing off their lords, other kings, seek protection from the lord of this land.
- 8. Some Gana of Sankara built a beautiful city on the top of the fine Chitrakuta, believing that this land is not accessible to any enemy on account of the glory of the kings descended from Bâpâ Râvala.
- 9. Where the incessant drops of water flying up by the sports of Shambara in the streams, make the firmament filled as it were with the waters of the heavenly Ganges, and the four directions as if moving about for no reason.
- 10. Here no house is without its man with strength of character and having such a man it is not without wealth, such wealth not being without its use in gifts, and gifts never flowing to low persons.
- 11. On this (Chitrakuta) there have been kings who are endowed with prosperity by Ekalinga Sankara, whose numerous and large and jewel-like virtues serve for ornaments on the neeks of poets and kings.
- 12. In the city of Nágahrida in the beautiful land of Medapâta there lived a Dvij named Bashpa whose mind was devoted to the feet of Sankara, a drop from the pollen of the Ketaka of whose fame is the moon, and the valour of whose great strength is the sun.
- 13. Ekalingaji, who was beautiful for his pleasantness, who was liberal though without wealth, whose neck looked as fine as the beautiful black lotus and whose temple is on the beautiful Tricutâchala was worshipped by Hàritarâsi,
- 14. Sankara was pleased with his devotion increased by austerities and gave him his much and purely desired object. That Dvijendra was also there kindly received by the Muni whose prosperity was increasing by the favour of Sankara.
- 15. Hâritarâsi who was much delighted after worshipping Sankara, became himself the Garu (preceptor) of this (Bâshpa), and by the mercy of Sankara the Muni wished his descendants undisputed rule.
- 16. By the word of Haritarasi the best of the Dvijas being favoured by Sankara became king. He married by the force of his own power, daughters of many kings, conquered a number of subordinate kings, and enjoyed all the land.

- 17. King Bashpa handing over his kingdom to his virtuous son and meditating upon the God who bears the new moon in his crown, was no doubt merged into the light of Sankara, the light of those who practise yoga.
- 18. There were many kings like Bhoja, Khumana and others in the line of Bashpa, never flinching in battle. Still one deserves mention viz. Arisimha, who acquired great prosperity and was totally free from all sensual pleasures.
- 19. He (Arisimha) fighting great battles for protecting Mount Chitrakuta, abandoned life in a moment, but not the great fame acquired in the path of brave men.
- 20. As this Arisimha who possessed a dountless heart, fought with the Parsis and worshipped Sankara with the flowers of the lives of the dead, his descendants are not abandoned by him (Sankara).
- 21. He was succeeded by the sun-like Hamira, whose glory was equal to his, who was like a great fire in his forest-like enemies, who in form resembled Kamadeva, whose fame was spread in the world, who was the hero of numerous battle-fields, who satisfied great numbers of the learned, and who appeared beautiful with success.
- 22. Srî Hamira, who was like Indra on this earth surrounded Chelavâța with millions of roads from the city of Kelavâța (which was surrounded by terrible dense forests).
- 23. When the course of the sun's chariot was blocked up by the particles of dust raised by the hoofs of horses running to the smiling gardens, Hamir, who had assumed the emblems of war and who was the law of the earth, brought king Raghu to the rank of a small chief in a small tent made of cloth and surrounded by crickets making a noise.
- 24. I believe that in order to acquire skill for creating king Hamira, whose hands were raised in making gifts of gold and who was calm in battle, Brahmâ studied a great deal by previously creating Balirâjâ, Karua, Arjuna, Kalpa-tree, mount Meru, Kubera, and Kâmadughâ.
- 25. The best of the Munis Agastya like king Hamira, dried the occan-like Karna, an unfailing conqueror in battles, whose moving forces spread like water, which appeared active on account of the numerous horses like so many alligators in it, with large elephants like numerous mountains, and having a necklace of jewels of the numerous brave men, and who lives eternally in this world.
- 26. King Hamira, who believed bodily and royal pleasures evanescent made a gift of Simhavallipura for the worship of Sankara.

- 27. King Hamira abandoned this mortal body being afraid of the troubles of birth and rebirth, to obtain that immortal and permanent one which has for his ornament a piece of the moon, whose commands are unbroken and which is free from pain and everlasting.
- 28. From him was descended Kshetrasimha, who was the field of the duties of a Kshatri, the eye of political and civil virtues, the body of religion, the successful receptacle of all the accomplishments and virtues of a king, the moon among all the kings, the friend of the needy, and who was extolled by the dethroned kings who ruled up to the sca-coasts.
- 29. He, the lord of the Kshatriyas, reigned in Chitrakuţa he who was possessed of great wealth, who evinced his intention in every act, and who deprived the great snake Yaümisâhi of his poison as also (those enemies) whe were strong in fighting who had raised their heads through arrogance, with the water of the edge of his sword glistening with the power of mantras that never fail to cure—as with Sâmitra mantras.
- 30. Khetasimha having destroyed his fortresses, 😿 (?) defeated his warriors, captured all the treasures, put king Ranamala into prison and by force placed his land in possession of his son.
- 31. Khetasimha who was honest and intelligent reduced the king of the East who took fines, and whose administration and taxation were very severe. He destroyed active and calm heroes who were between (him and the king of the East) and subdued the land after severe fightings in which the heads of the clan of the Hådå-kshatris were cut off and their trunks wandered about.
- 32. Khetasimha gave away the village of * * and Panavadapura to maintain the worship of Sankara and Pârvati for ever.
- 33. Kshetravarmmå after worshipping his tutelary deity with Ista and Âpurta (Yajnyas and building of Dharmashallah and digging tanks &c.) ceremonies and destroying the poverty of the learned by various kinds of gifts and entrusting the burden of the land to his son entered into the light of Sankara.
- 34. When Sri Khetasimha acquired the sole sovereignty of Indrapuri, Lakshasimha enjoyed the earth like a newly married wife. He secured her confidence and spoke very sweetly and gently (with her), and did not lay cruel hands (taxes) on her nor did he terrify her most with any roughness.
- 35. Lakshasimha rājā who became king in his youth defeated the lord of the fort of Jagā on a battlefield and deprived him of his elephants, horses and jewel-like daughters, honestly enjoyed the kingdom of his ancestors keeping himself always wide awake and surrounding all obstacles with the aid of his servants and meditating on the feet of Sankara.

- 36. As Lakshasimha gave away much lands in gift to the Brâhmanas, Brahma resorts to various means to proclaim his glory: he sometimes comes in the form of herds of elephants, sometimes in the form of troops of horses, sometimes accidentally in the form of gold, sometimes in the form of jewels, and sometimes in the form of a floating piece of cloth on some land.
- 37. Lakshasimba of unalloyed fame made a gift of the town of Chiruvara for the maintenance of the worship of Ekalingji with all necessary things for ever.
- 38. The tirtha of Gaya, where the cruel Saka (kings) had made Kathas, Puranas, and the Smriti doctrines useless, was freed (from them) by king Lakshasimha; who with strong golden chisels broke off the chains of rebirth, which are put on those who enjoy the world, and thus left this world.
- 39. Lakshasimha, who was religiously inclined made a gift of the village of Pishpalika to a learned Brahmana named Jhotinga with all due ceremonies at the time of a solar eclipse; so also he made a gift of the village where there is the fine temple (Panchadevalaya) to the west of Mount Chitrakuta to Dhanesvara Bhatta.
- 40. Lakshasimha desirous of making gifts of his own weight in gold, made a gift of one lac gold coins to the Brâhmauas, which amounted to one hundred thousand gold coins. Brahmâ is the witness to it. For this he had the happiness of being united with Brahma.
- 41. When he of very praiseworthy valour ruled the earth, the *kali yūga* was not able to make its appearance nor was any sin to be seen. King Lakshasimha had as his successor on this earth Mokala who was born of him like the brilliant moon from the ocean.
- 42. Mokala in his infancy received instructions from the good people, in his youth he destroyed his enemies and desired for a wife not for fear of Kamadeva but for having children.
- 43. King Mokala, who was possessed of good assistance, who broke hundreds of thousands of the enemies' forces, who was a conqueror in great battles, whose spies were his innumerable eyes, whose brilliant face shone with great lustre, and who was a new Indra, fought with a large number of men at Jajpura the crest-heads and shoulders of the mountain-like lords of lands in a moment.
- 44. King Sri Mokala, who was famous as a navigator and who sailed over waters threw the great army containing many elephants and appearing active with the marching of the horses of king Phiroz who sailed in strong ships, into the ocean of battle where the sword was moving as actively as water.

- 45. In all directions what poet has not remained in suspicion on frequently receiving from king Mokala gold with a large quantity of silver as to whether his treasure house contains a Kâmadughâ, or a Kalpa tree bears fruits in his court-yard, or there is a Chiniamani in his house, obtained without any effort.
- 46. King Mokala made a gift of the villages of Wadhagavada and Rama-gama with their clear revenues for the enjoyment of Sankara.
- 47. King Mokala, well-versed in the use of the sword after having reached to the top of the crown of kings and after bathing himself in the water of swords in the lake of battle entered into the indescribable light of Sankara, passing through the Sûryamandala.
- 48. From this king sprang forth (like the sun from the Udayachala) Khumbha Karna, the lord and ruler of the earth and the Sun incarnate on this land destroying the enimies' elephants like darkness.
- 49. King Kumbha Karna who was desirous of continuing his father's wars without much loss to himself like a new Janmejaya, with the sword strongly wielded and with the fire of the valour of his hands burning bright, made offerings of all his snake-like enimics on earth into the Sacrificial ground, battle.
- 50. The Sun-like Kumbha Karna built the large fortress of Kumbhala-meru with four gates having brazen doors, built in ancient times, inaccessible and inhabited by many Vidyádharas, high on the table-land of the Vindhyâchala mountains, in the midst of which there is the sun and which looks charming on account of the flowing waters of the streams therein.
- 51. The King caused to be dug seven lakes, the Chakravaka birds in which were freed from the pangs of separation by his own numerous rays and where the lord of Lakshmi resided never thinking of the happiness enjoyed while lying on the ocean.
- 52. King Kumbhakarna caused to be carried without difficulty big chariots that were kept in large numbers before the gate on mount Chitrakûta having high peaks.
- 53. King Kumbhakarna caused to be built a temple to the lord of Lakshmî in this fortress, through fear of breaking his chariot on the pinnacle of which the sun keeps moving between the north and south.
- 54. Kumbhakarna, the lord of the earth, trampled under his feet the proud king of Mâlava-Desa in a battle, burnt Sarangapura with its numerous inhabitants; the smoke issuing therefrom went towards the sky which it is believed made the long hair of the women of Chaüla-desa incomparably dark.

- 55. The lord of the earth after defeating his royal enemies on battlefields received their daughters in marriage; some came to him of themselves being attracted towards him with love for his beauty while others were presented to him by the principal persons of their families. Thus Kumbhakarna, the source of all happiness, married several young princesses.
- 56. King Kumbhakarna caused to be dug Râmakuṇḍa which has for its ornament a large number of lotuses, in which swarm many birds, which contains immeasureable water, and which gives pleasure to the people.
- 57. Srì Kumbhakarua, the lord of the earth, makes gifts even beyony the expectations (of the receivers) so much so that the kâmadughâ can not please (them), the kalpa tree is unable to satisfy (them), the Rohana mountain can not meet (their) wants, the Chintâmani fails to gratify the mind, the fame of Karna is nothing before his, and the success of king Bhoja falls into the shade.
- 58. King Kumbhakarna made a gift of the villages of Naghrida, Kathadavana, Malakaketaka, and Bhimana for maintaining the worship &c., of Umâmaheśvara.
- 59. King Kumbhakarna whose mind is devoted to the poem of Gitagovinde composed a work called Sangitaraja full of rasa to oblige the world.
- 60. The virtues of Sri Kumbhakarna are so innumerable that when those who can count them were unable to do so, the sky was toosmall to record them and the thousand armed ocean extending day and night and full of deep blue waters can not take a note of them, who on this earth is able to fix (their) number.
- 61. At a certain time Kumbhakarna joined Sankara with all his worldly aplendour, with all the enjoyments of a wealthy man, the pleasures of Kamadeva, sll the sweet sentiments of good poets, his terror to the apposing kings, and with she joy of his allied princes.
- 62. Sri Kumbhakarna, produced a son Rajamalla as the ocean does the moon, who (like the moon) destroys all darkness (in the form of enemies) and gives delight to the earth (in the case of Rajamalla; in the case of the moon 'assuming the fragrance of a lotus').
- 63. Rajamalla, a lion among his enemies and Indra on earth entered the cave in the mountain near Yoginipura having its temples full of diamonds, gold and jewels.
- 64. The lord of the earth in the battle of Dådimpura threw arrows like showers of rain, causing a river of blood, in which the king named Kshema, his L. 17.

greatness becoming as light as a straw, suffered the fate of a tree standing on its bank having fallen down on account of its roots being broken.

- 65, King Rajamalla, who was like the sun on account of his unbearable brightness towards other kings, and who had destroyed the darkness of wickedness with his hands (or rays) ascended with his numerous swift horses mount Chitrakuta, the lord of the mountains in the east.
- 66. King Råjamalla, whose heart was delighted to see that there was no sinful being in the territory acquired through the favour of Pramathapati (Sankara), was himself equally sinless in the family of Sri Karnåditya. He captured Kumbhameru with the assistance of his favourites facing the south-east after defeating his enemy named Mudhodava with his allies.
- 67. King Råjamalla who was devoted to Saokara, who is sacred and fit to be worshipped, being pleased with the poet named Mahesa, who was as soft as a garland of *Malli* flowers, granted him the village of Ratnakheta which produced (ratnas) jewels, at the time of the conjunction of the sun and Råhu for preventing a repetition of incarnation on this earth.
- 68. King Råjamalla deprived Gyåsasakesvara of his pride on the (near the) Chitrakuṭa, who fought with instruments of capturing, gave blows with ploughs, bewildered (the enemies) with (his) elephants, had numerous and active troops of horses and camels, had many heroes who fought with loud war-cry, and who fought with terrible blows.
- 69. In that battle, a great hero called Gaür (white) constantly destroyed the army of the Saka; therefore a peak of the Chitrakuta being a portion of the fort bears his name.
- 70. King Rajamalla, who was wise, put four statues on the four peaks of this mount of the four warriors called Gaüra (the white) ready as it were with their strong arms to put down the hardy and robust warriors of the opposite side.
- 71. When the great hero Gaür who acquired fine and wide spread glory, reached the sky by being placed on the top of the peak of the high Chitrakutâ-chala. I believe, he went to bathe himself into the waters of the Surasarit (Gungá) being desirous of freeing himself from the Sin committed by touching a great quantity of blood shed from the living Sakas,
- 72. The lord Rajamalla, who was of never-fading beauty, the Indra of the earth, overturned like a pebble, having destroyed his large Pakshas (wings in the case of the mountains and allies in the case of enemy) with his cleaving sword, the mountain-like Jahirala, whose roving bands were like a thorn and who was safe on account of having found refuge in thick forests.

- 73. Because he made offerings of the descendants (of his enemies) and (their) gold to the fire of his anger the god of valour being pleased granted him fame as white as the moon.
- 74. When king Rajamalla dug the Ramatalava with blooming lotuses, even the oldest of the gods became doubtful whether the ocean had grown younger, or whether the moon had extended itself, or whether the Manasa lake was transferred to this hilly region.
- 75. King Råjamalla caused to be dug a large tank called Sånkara througe desire of playing in whose waters Girija and Girîsa do not now resort to lakh Månasa.
- 76. Sri Rajamalla the great made a large tank called Samayasankata having abundant water, with its waves tonching the sky and having a high setu.
- 77. Rajamalla who was lord of the forts in the territory of Medapâta catching hold of the crests of numerous heroes of the family of mighty Jâfara beheaded them. He also soon threw down the crowns of king Gyasa, raised np with pride.
- 78. King Sri Rajamalla earned great fame through his other armies, moving in accordance with the motion of the thread of war which be kept to himself by carrying forcibly off a large fine from Malava after tearing up the trees round Kherawada, and cutting down numerous Yavanas into pieces with the sword, and by uprooting the families of his enemies.
- 79. Glory to that Rajamalla the dust beaten up by the hoofs of whose horses serves as a dark bordered cloth to the wives of Rakshasas dancing in joy on the banks of the river of blood flowing from the enemies killed by whose lance.
- 80. Glory to happy king Råjamalla; who was Indra to the mountain-like lord of Mandapa, who took pride in taking off the (kingdom of) Delhi by the roots, who was to the beautiful land of Sindhudeśa like Manthâchala to the ocean, to the splendid Gurjara like the sun to the moon, to Kåsmira, Achyuta to Kamsa, and who was to Karnåtaka like Dhurjati to Andhaka.
- 81. Gopâlabhaṭṭa, preceptor of king Râjamalla, who was clever in speech, who had learnt well the spotless Yâmalatantra full of various rites and fit to be learnt. By his blessings prosperity increased in this country, dominion became extended and the wealth of enemies fied away.
- 82. Rajamalla was pleased to make a gift of the village called Prahana to Gopalbhatta as Dakshind—village which was quite apart from that of the

Brahmanas, and in which it was declared that even his son was not to receive any money from it.

- 83. The Arthasastra declares that a wealthy man dying without issue forfits his wealth to the king. Rajamalla who knew all the Sastras gave up such wealth and thus purified the family of Bashpa by his fame.
- 84. Râjamalla, who knew his duty and who has the earth for his wife, shone with immense glory, proclaiming with the beating of drums the new order pleasant to the Brâhmagas that none in my line should ever use even in time of need anything produced from lands made over to the Brâhmagas by the kings of the Khumaga family.
- 85. King Râjamalla's word that the wealth from the villages of the Brâhmanas should not be made use of by the descendants of king Kumbhakarana was assumed by the future kings as a necklace.
- 86. Gifts of villages made by former kings had been in course of time resumed by the yavanas and temples destroyed. King Rajamalla repaired the temple of the great Ekalingaji and granted again the resumed villages and gave away Naïvapura în addition.
- 87. King Råjamalla granted to (his) Guru (preceptor) named Gopâlabhaṭṭa the village of Thura, where there are lakes full of lotuses, where the trees are all very fruitful, where the rows of rice-fields get water very easily, where there is a fine rosary of *Mudgas* and where there are fields of sweet sugar-canes.
- 88. If the Kshîrasâgara could spread itself in the midst of the three worlds, if the moon could send out fragrance, if the musk could become white at once and if the lord Sankara could adorn himself with the ketaka; then can the white and fragrant fame of Râjamalla find something to be compared with.
- 89. Glory to this king, the sun of the lotus-like family of king Hamira, on those bearing the burden of the earth with the strength of his own arms, the Seshâ stands free from his burden like an ordinary snake, smelling the camphor of his immense fame.
- 90. That which is eternal can never be an object of creation, that which is boundless can never have limit, and that which is Âtmanipada (confined to one's self) can never be Parasmaïpada (transferred to another); but king Śrī Rājamalla does make extensive gifts of gold, does compass all religion, and allows all to stand free and happy.
- 91. There was a brahmana named Srî Somanatha on this earth in the family of Bhagvan Bhrigu known throughout the world, devoted like a wasp to the lotus-like feet of Sankara, of holy actions and performing sacrifices in every Vasanta.

- 92. His son Narahari, who was like the sun to the grove of the lotus-like science of Anvikshikâ, was Hari incarnate, and being the illustrious abode of the four *Vedas*, was a Brahmâ on earth.
- 93. Like Manu from the sun, Sûrya from Kasyapa, Bhrigu from Brahmâ, the moon from the ocean. Srî Kesava, of incalculate fame, a lion to all opponents, known by the name of *Jhotinga*, was born from Narahari.
- 94. His son Atri who was the abode of virtues, was above all the wise and the learned, was possessed of prodigious intelligence feasting upon the essence of the Mimâmsâs, was a genius in the poetic art, lived as a leader of the Brâhmanas of the Daśapura caste, and was highly respected by the lord Kumbha, the sun of the large forest of the lotuses of the line of Guhila.
- 95. Mahesa son of Atri, who is in the court of Râjamalla bravely conducts himself against those who contest with him as a mad elephant does against trees.
- 96. Maheávara son of Atri, whose style of composition is acknowledged by those versed in the high way of poetic composition, who is the poet of king Råjamalla, and who is a man of good parts and knowledge, added this eulogistic poem to the collection already existing—poem full of heroic sentiments and placed in the fine temple of Srî Ekalingaji which is beautiful in its new arrangement.
- 97. May this eulogy, which is like another creeper of the fame of lord Rajamalla, made by me wishing his rule to last as long as the earth bears the beauty of the crest-jewel of Ahindra (Sesha), as long as Srikuntha (Sankara) bears on his head Tusharatrisha (the moon), as long as Hari bears the (sign of) Sri Vatsa on his chest, and as long as the ocean contains water, prosper in all its splendour.
- 98. Sarveśvara (Sankara) finding great pleasure in this (mountain) attracting his mind with the excellent arrangements skilfully made, did not remember on this hill the Râjatgiri (Kaïlasa). The skilful Sutradhāra, Arjuna, built this fine temple of Sambhu and engraved this most beautiful eulogy.
- 99. This inscription-stone (of eulogy) was finished on Thursday, the 10th of Chaïtra Suklapaksha (bright half) of the year 1545 of king Vikrama. (A.D.1489)
- 100. May Párvati, who by her gestures that are the abode of Kâmadeva, merges Ekalingji in one great sentiment with perfect joy, be successful! she residing in the Vindhyâchala mountains.
- 101. Now we begin to write similar sentences in the vernacular language by the order of the king, to make the above sentiments more intelligible to those who are not well-versed in the Sanskrit language.

X.

A stone inscription of Ádîsvara on the Śatrunjaya Hills in Kāṭhiāwāḍ.

Dated Saṃvat 1587.

The temple of Adisvara in which this inscription-stone is placed is built on the Satrunjaya Hills, one of the most sacred places of pilgrimage of the Jains, near the small town of Pâlitâna, the capital of a small principality in Kâthiâwâd (Saürâśıra). It is cut in a white marble slab measuring 30° by 18°, and containing fifty-four lines of Sanskrit prose composition in modern Devanâgari characters. The stone is placed inside the temple in a wall to the left of the entrance and is in good condition. It mentions the execution of repairs for the seventh time of the temples on the Satrunjaya Hills by Karmâ, a wealthy merchant of the Osvâla caste, in the reign of Rana Ratnasimha of Meywar whose contemporary on the throne of Ahmedâbâd was king Buhâdurshah of Gujerât. It is dated Samvat 1587, A. D. 1531-32.

- ᡐ स्वस्तिश्री गुर्वरचरित्र्यां पातसाहश्रीमहिमुदपट्टप्रभाकरपातसाहश्रीमदाफरसाहपट्टोद्योतकारक
- २ पातसाहश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्राहदरसाहिवजयराज्ये संवत् १५८७वर्षे राज्यव्यापारभुरंभरमां(ला)नश्रीमझादणाः(ला) नव्या
- ३ पारे श्रीशत्रुंजयगिरौ श्रीचित्रकृदवास्तव्यदो व्यवसाकृतसप्तमोद्धारसका प्रशस्तिलिख्यते स्वस्तिश्रीसौख्य
- ४ दो जीयात् युगादिजिननायकः केवलकानिसलो जिमलाचलमंडनः १ श्रीमेदपाटे प्रग(क)टप्रभावे भावेन भ-
- ५ व्ये भुवनप्रसिद्धे श्रीचित्रकृटो मुकुटोपमानो विराजमानोस्ति समस्तलश्रम्याः २ सन्नंदनो दातृसुरहमश्च द्वं
- **१ गः** सवर्णोपे विद्यारसारः जिनेश्वरसात्रपवित्रभृमिः श्रीचित्रकृटः सुरशैळतुस्यः ३ विशालसालः क्षिति
- ७ लोचनामो रम्यो दणां लोचनचित्रकारी विचित्रकृटो मिरिचित्रकृटो लोकरतु यत्राखिलकृटमुक्तः ४ तत्र श्रीकुं
- ८ भराजोऽभूत् कुंमोद्भवनिभो नृपः वैरिवर्गः समद्रो हि येन पीतः क्षणात्क्षितौ ५ तत्पुत्रो राजमहुरेभुद्राज्ञां म-
- ९ छ इबोल्कटः सतः संधामसिंहोऽस्य संधामविजयी तृपः ६ तत्पद्दमुषणमणिः सिहेंद्रवत्पराकमी रलसिंहोऽ
- १० धुना राजा राजलक्ष्म्या विराजते ७ इतश्च गोपान्हिगरी गरिष्ठः श्रीवण्यभट्टिमतियोधितश्च श्रीआमराजोऽज-नि तस्य
- ११ पिक काचिद्रभुव व्यवहारिपुत्री ८ तर्कक्षिजाता किल राजकोष्टागाराव्हगोत्रे स्कृतैकपात्रे श्रीउसवंशे विशदे
- १२ विशाले तस्यान्वयेऽमी पुरुषाः प्रसिद्धाः ९ श्रीसरणदेवनाम्ना(मा)तत्पुत्रो रामदेवनामाभूत् लक्ष्मीसिंहः पुत्रोतत्पु
- १३ श्री भुवनपालाख्यः १० श्रीभोजराजपुत्री • रासिहारव्य एव तत्पुत्रः पे(खे)ताकस्तत्पुत्री नरसिहस्तत्सु
- १४ (तो दृष्टिह इव) ११ तत्पुत्रस्तालाख्यः पत्नी तस्य प्रभृत्कुलजाता तारादेपरनामी लीलुपुण्यप्रभा पुण्या १२ तत्कुक्षिसमुद्धताः प-
- १५ ट् पुत्राः कस्पपादपाकाराः धर्मानुष्ठानपराः श्रीमंतः श्रीकृतोऽन्येषां १३ प्रथमो रहाख्यमुतः सम्यक्त्रवेद्योत् कारकःकामं-
- १६ श्रीचित्रकूटनगरे प्रासीदः कारितो येन १४ तस्याऽस्ति कोमला पास्यवल्लीय विशदा सदा भाषां इजमल-देशी पुत्रः श्रीरंगमा(नां)

- १७ मासौ १५ भ्राताऽत्यः पोमाव्हः पविभक्ता दानशीलगुणयुक्ता पद्मापाटमदेव्यौ पुत्री माणिक्यहीराही १६ वर्षुर्गणस्य
- १८ तीयोभार्या(वें) गुणरत्नराज्ञिविख्याता(ते)गउरांगावरदेव्यौ पुत्रो देवाभिषो क्षेयः १७ तुर्थो दशरथनामा भा-र्या(वें) तस्या(स्य)रित(स्त:) देवगु
- १९ दमका(के) देवरदुरमदेव्यौ पुत्रः कोव्हामिधो श्रेयः १८ भ्राताउन्यो भोजाख्यः भार्या(य) तस्या(स्य)स्ति (स्तः) सकलगुण्युका(के)
- २० भावलहर्षमदेव्यौ पुत्रः श्रीमंडणो जीयात् १९ सदा सदाचारविचारचारुचारुविधियोदिगुणैः प्रयुक्तः श्री-कर्म्मराजो
- २१ भनि(गि)नी च तेषां जीयात्सदा सूहविनामधेया २० कर्माख्यभार्या प्रथमा कपूरादेवी पुनः कामलदेविती-या श्रीभीर्ष(ख)जी
- २२ कः स्वकुलोदयाद्रिसूर्यमभः कामलदेवीपुत्रः २१ श्रीतीर्थयात्राजिनार्विवपूत्रापदमतिष्टादिकधर्मधुर्यः सुपात्र दानेन प
- २३ वित्रगात्राः सर्वेदशाः सलुरुषाः प्रसिद्धाः २२ श्रीरलसिद्धराज्ये राज्यव्यापारभारधीरेयः श्रीकर्मसिह्दक्षी मुख्यो
- २४ व्यवहारिणां मध्ये २३ श्रीशपुंजयमाहात्म्यं श्रुत्वा सहुदस्तिषयौ तस्योद्धारकृते भाषः कर्मराजस्य हृद्यभृत् २४ आग
- २५ त्य गौर्जरे देशे विवेकेन नरायणे वसांति विवुधालोकाः पुण्यक्ष्मेका इवाद्भृताः २५ तत्रास्ति श्रीधराधीश श्रीमत्
- २६ बाहादरो कृपः तस्य प्राप्य स्फुरन्मानं पुंडरिके समाययौ २६ राज्यव्यापारधीरेयः स्थानश्रीमान् मझादकः तस्य गेहे म
- २७ हामंत्री रवाख्यो नरासिंहकः २७ तस्य सम्मानमुखाप्य बहुवित्तव्ययेन च उद्घारः सप्तमस्तेन अके शत्रुंक्ये गिरी
- २८ २८ श्रीपादलिप्तललतासरशुद्धदेशे सद्वाद्यमंगलमनोहरगीतदृत्यैः श्रीकर्मराजसुधिया चलयात्रिकायां चन्ने महोत्स
- २९ वनरः सुगुरूपदेशात् २९ चंचर्चगमृदंगरैगरचना भेरीनभेरीरया वीणावशविशुद्धतालविभवा साधिम्(मर्थ) वाल्सस्य
- ३० कं बस्नालकृतिहेमतुगतुरगादीनां च सद्धर्षणमेवं विस्तरपूर्वकं गिरीवरे विस्प्रतिष्ठापनं ३० विक्रमसमया-तीते ति
- ३१ मिमितसंबत्सरेऽश्ववसुवर्षे १५८७ शाके जगिवाणे १४५३ वैशासकृष्णपष्टमां च ३१ मिलिताः सूरयः संधा मा-र्गणा मु
- ३२ निपुंगवाः बहमाने धनुर्रुग्ने प्रतिष्ठा कारिता वरा ३२ लावण्यसमयास्येन पंडितेन महात्मना सप्तनोद्धारसक्ता
- ३३ च प्रशस्तिः प्रकटीकृता ३३ श्रीमद्वाहदरक्षितीशवचनादागस्य श्रृतंत्रये प्रासादं विद्वाप्य येन कृषभार्ह-द्विवमा
- ३४ रोप्य च उद्घारः किल सप्तमः । कल्यिपुरे चक्रे ध(ध)नादुत्सकी कीयादेष स दोशवंशमुकुटः श्रीकर्मराज-श्चिरं ३४ य-
- ३५ त्कर्मराजेनकृतं सुकार्यमन्त्रेन केनापिकृतं हि तक्तो ॥यग्ग्लेच्छराज्येपि नृपाद्ययेवोद्धारः कृतः सप्तम प्रप्रयेन३५
- ३६ सल्(पू)(रुवा)यानि यहूनि संघे कुर्वित मन्याः परमत्र काळे कम्माभिधानन्यवहारिणैयोद्धारः इतः शीविन

- ३७ मलाद्रिश्टंगे ३६श्रीचित्रक्टोदयरौलश्टंगे कर्माख्यभानोधदयान्वितस्य शत्रुजये विविवेहारकुलाकर्मा
- ३८ वलीयं स्फुरति विचित्रं ३७ श्रीमेदपाटे विषये निवासिनः श्रीकर्मराजस्य च कीतिः (६) ज्यला देशेष्वनेकेष्वपि
- ३९ संचरत्यहो ज्योत्स्नेव चंद्रस्य नभोविद्यारिणः ३८ दत्तं येन पुराधनं बहुसुरताणाय तन्मानतो यात्रा येन सृ-
- ४० णां च संघपातेना शत्रुंबये कारिता साधूनां सुगमैवसात्ववहिता चक्रे प्रतिष्टाईतामित्थं वर्णनमुच्यते किय-
- ४१ दही श्रीकर्मराजस्य तु ३९ येनोद्धारः शुभवति नगे कारितः पुंडरीके स्वात्मोद्धारो विशदमितना दुर्ग
- ४२ तः स्वेन चक्रे येनाकारि प्रवर्शयधिना तीर्थनाथप्रातिष्ठा प्राप्तास्तेन त्रिमुवनतले सर्वदेवप्रातिष्ठाः(:) ४० सौम्यत्वे
- ४३ न निशामणि दिनमणिस्तीब्रधतापेन या वंशोदीपनकारणात् गृहमणिश्चितामणिदीनतः धर्मात् सिद्धशिरोम
- ४४ णिर्मदिविषध्वंसान्मणिर्मोगिनः एकोनेकमयो गुणैर्नवनवैः श्रीकर्मराजः सुधीः ४१ तोलासुतः सुतनयो
- ४५ विनयोज्यलश्च लीलुसुकुक्षिनिलिनीभुचिराजहंसः सन्मानदानविदुरो मुनिपुंगवानां सद्द्रद्वांषवयुतो
- ४६ जयकर्मराज ४२ कर्मी श्रीकर्मराजीयं कर्मणा केन निर्ममे तेषां शुभानि कर्माणि यैदेष्टः पुण्यवानसौ ४३
- ४७ आदीशः पुँडरीकस्तु मरुदेवां कर्पादराट् श्राद्धश्रीकर्मराजस्य सुप्रसन्ना भवत्वमी ४४ श्रीशञ्चलयतीर्थोदार
- ४८ कमठावसानिधारक सा॰जइता भा॰वाइचांपु पुत्रनाया भ्रातृकीना अहमदावादवास्तव्यसुत्रधारकोलाः
- ४९ पुत्रस्त्रधारविरुधा सू०भीमा० ठ०वेसा ठ०वछा श्रीचित्रकुटादागतस्०टीसा सू०पोमा सू०गोगा सू०गोरा सू०ढासा
- ५० स्त्र देवा ॥ स्त्रवनाकर स्वनाइआ स्वगोविंद स्वविणायग स्वटीला स्ववछा स्वभाणा स्वकान्द्रा स्त्र
- ५१ देवदास स्विवास स्वाकर स्वकाला ठाविणायग ठवछाम उव्हीरा दामोदर ठाव्हराजस्थाना
- ५२ मंगळं आदिदेवस्य मंगळं विमलाचले मंगळं सकलसंघस्य मंगळं लेखकस्य च विवेकधीरगणिनालिख
- ५३ ताप्रवारितः पूज्यपं० समयरक्षशिष्यपं० लावण्यसमयस्त्रिसंबं(ध्यं) श्रीआदिदेवस्यप्रणमतीतिभद्रंश्री
- ५४ पहरपतिठा ॰ हांसा ठा ॰ मूला ठा ॰ कृष्णाठा ॰ कान्हा ठा ॰ हर्षा सु ॰ माधव सू ॰ बादु लो ॰ सहज ॥

TRANSLATION.

- 1. In the year Samvat 1587 during the victorious reign of Påtshåh Srî 5 Bahâdoor Shåh, who adorned the throne of Påtshåh Srî Madâfar Shâh, who had ascended the throne of Påtshåh Srî Mahimud, in the beneficent and beautiful land of Gujerât, Khân Srî Mazâd Khân, who bore the burden of administration, was minister. At this time this inscription is written on account of the seventh repair made by Dosi Karmâ, an inhabitant of Srî Chitrakûta, on the beautiful mount Satrunjaya. May Jina Nâyaka be successful, who is giver of blessings, wealth, and happiness, who is refulgent being all knowledge, who adorns the Vimalâchala, and who is the beginning of all the Yugas.
- 2. In Medapâta deśa, of wide-spread fame, looking grand through affection, and well-known throughout the Universe, there is Srî Chitrakûţa, which is like the crown of all wealth and beautiful.
- 3. Sri Chitrakûta, which gives pleasure to good men, which is like the Kalpa tree among the donors, which is of a beautiful colour, which is all made of gold, which though high is like a play-ground, and which on account of स्तात्र (?) holy Jinesvara is considered sacred is like a mountain of the Gods (Meru).

- 4. Mount Chitrakûţa, where there are large Sâl trees, which is like the eye of the earth, which is beautiful, which astonishes the eyes of men, and which has wonderful peaks, is a place where all people are free from deceit.
- 5. In the Chitrakûţa, there reigned king Kumbharâya, who was like Agastya Muni having drunk up the ocean of his enemies in this world in a moment.
- 6. His son was Råjamalla, who was like a wrestler among (other) kings. He had a son king Sangramasimha, conqueror in battles.
- 7. Ranasimha, an ornament to the throne, as brave as the lion, and the king of the royal fortune, rules (there) at present.
- 8. In Mount Gopa from hence was one Âmarâja, who was great, who was taught by Srî Bappabhatti, and who was married to a daughter of some trader.
- 9. In the family of him who was of the line called Usa, which is pure like a vessel full of spiritual merits, and who belonged to the Gotra called *Rdjakoshtd*, were born the following.
- 10. Šri Sāraņadeva and his son Rāmadeva, his son Lakshmisimha, and his son called Bhuvanapāla.
- 11. His son called Bhojarâja, who had a son called (Ama) rasima. His son Khetâka, who had a son like Nrisimha (man-lion).
- 12. His son called Tolâ, whose wife Târâdē otherwise called Lilâdē, who was born in a high family, was possessed of sacred beauty, and was holy.
- 13. Of the womb of this Lilâ were born six sons, who were like the branches of the *Kalpa-tree*, ever ready to engage (themselves) in religious duties, wealthy and benevolent.
- 14. The first son was called Ratna exhibiting great beauty, who of his own accord caused a palace to be built on Srî Chitrakûța.
- 15. He had a wife called Ijamaladevi, worthy of being nourished like a tender creeper, and ever pure. Their son was this Sriranga.
- 16. The second (son) was called Pomâ, who had two wives Padma and Patamâdevi, devoted to their husband, charitable, good-natured and virtuous. His sons were called Mânikya and Hirâ.
- 17. The third (son) brother was called Gana, who had for his wives Gatirâ and Gâravadevi, known for their numerous jewel-like merits. (Their) son was known as Deva.
- 18. The fourth was called Daśaratha; his wives were Devala and Duramadevi, devoted to the gods and the preceptor. (Their) son was known as Kolhâth. 18.

- 19. The fifth brother was called Bhoja, who has for his wives Bhavala and Harshamadevi having all virtues. (Their) son is Mandana. May he be victorious.
- 20. Then came Sri Karmaråja who wisely ever thought of good conduct and was possessed of qualities such as eleverness, patience and others. His sister is Suhavi. May they be victorious.
- 21. Karmarâja had for his first wife Kapuradevi; his second wife was Kâmaladevi. By Kâmaladevi he had a son Srî Bhikhaji-the sun rising on the Udayâchala of his family.
- 22. All these good men were greatly devoted to pilgrimages to holy places, to the worship of Jinesvara, to the establishing of idols at holy places, and other religious acts. They had made their bodies holy on account of their worthiness and religious gifts; and they were all famous.
- 23. In the reign of Sri Ratnasimha, Karmasimha bore the great burden of the administration of the state, and was the chief and wise among all the merchants.
- 24. He, having heard of the greatness of Sri Satrunjaya from his preceptor (gurû), made up his mind to repair it.
- 25.26. He respectfully entered Gurjardesa, where learned men like Punyasloka inhabit, which is full of watering-places, and where the wealthy king called Bahadoor, lord of the earth, rules. From him he met with public reception and then went into the Pundarika.
- 27-28. There was Mazâdaka, the administrator of the kingdom. He had for his minister a man named Ravâ, who was like a lion among ministers. From him he received great honors, and then made repairs for the seventh time in the Satrunjaya mountains at a large expense of money.
- 29. Karmarâja of pure intellect observed a great festival called *jalayâtrâ* at the desire of his good preceptor accompanied with the playing of sweet instruments, pleasant and beautiful songs, and dancing at the pure religious place of beautiful Srî Padalipta (Pâlitânâ).
- 30-31. The installation of the idol in this best of the mountains was fully celebrated with the beautiful and active myidangas playing, all kinds of pleasures, the sounding of the nagaras and feris, the playing on the tamburs and Vansalis with the regular keeping of time, and the neighing of tall horses caparisoned with clothes, ornaments and gold; on the 6th of the Kyishnapaksha (dark-half) of the month of Vaisakha of the year 1453 of the Saka era and 1587 after the time of Vikrama.
- 32. Suris, assemblies of ascetics, Mârganâs (those who performed the ceremonies of installation), and best *Munis* assembled (there) performed this best installation when there was *Dhana lagna* (i. e. when the sign of Sagitarius was on the horizon).

- 33. This (eulogy) inscription about the seventh repair was composed by a Paṇḍita called Lâvaṇya Samaya, who was a great man.
- 34. May this Karmaraja be prosperous for ever, who, at the desire of Srî mân Bahâdoor Raja went to Satrunjaya, built a temple, installed an idol of Arhant Śrî Riśabhadeva, and who ceremoniously made this seventh repair in this Kaliyuga, and who is (therefore) like the crown of the cheerfull family of the Dosis.
- 35. None has done so good an act as Karmarâja; because in the territory of a Mlechhchha he made this seventh repair at the desire of the King.
- 36. At this time many good men performed many good and holy deeds; (but) the merchant called Karma only caused to be made this repair on the summit of Vimaladri.
- 37. Oh! the row of temples, prepared for these idols on the Satrunjaya by the rising-sun-like Karmâ on the summit of the Udayâchala-like Srî Chitra-kûţa, stands in full prominence.
- 36. Oh! the white fame of Srî Karmarâja living in Srî Medapâţadeśa spreads in innumerable countries as the light of the moon, that wanders in the sky.
- 39. Karmarâja, as the leader of the Sangha, paying a large sum of money to the Suratrâna (Sultân), took all men, under his (Sultan's) honourable protection, on a pilgrimage to Satrunjaya, especially the Sâdhus, for whom it was made more convenient; he also installed idols of Arhants to last for ever. Thus how much can we say of Karmarâja.
- 40. He, whose mind was pure, caused to be made repairs in (the temple of) Pundarika on the mountain where there is everything good; and thus freed himself (soul) from the worldly miseries. In this way one who installs Tirthanatha with best ceremonies derives the merits of installing all the gods on the face of the three worlds.
- 41. Karmaråja, who was of sharp intellect, was like the moon for (his) calmness, the sun for (his) bright glory, a jewel in the house for making his family famous, a crown-jewel among faithful persons for (his) faith in religion and a serpent-jewel for destroying the poison of vanity; (thus) having possessed different qualities, he was like many persons in one.
- 42. O Karmarâja! May you be glorious! you, who are a son and a good son of Tolâ, who are bright for your politeness, who are like a râjahamsa (swan) in the lotus-like beautiful womb of Lilu, who know how to honor and bestow gifts on the best Munis, and who are surrounded by good elders and brothers.
- 43. For what Karmas was this fortunate Sri Karmaraja created! He who has seen this meritorious person must have acquired good Karmas.

44. May Âdîśvara Puṇḍarika, the Marudevas, the lord Kapardin be favourable to the faithful Srî Karmaraja.

(Names of) those who made the repairs on the Srî Satrunjaya and completed the Matha (monastery). — Kinâ, brother of Nâthâ, son of Bai Châmpu, wife of Sâ Jaitâ; Sûtradhâra (mason) Virudhâ, son of Su, Kotâ, Su, Bhimâ, Thakara Velâ, and Thakara Vâchhâ, inhabitants of Ahmedâbâd. Su. Tilâ, Su. Pomâ, Su. Gângâ, Su. Gorâ, Su. Dholâ, Su. Dewâ, Su. Nâkara, Su. Nâiâ, Su. Govinda. Su. Viṇayaga, Su. Tila, Su. Vachhâ, Su. Bhâṇâ, Su. Kânâ, Su. Devadâsa, Su. Vikâ, Su. Thâkara, Su. Kâlâ, Thakara Viṇayaga, Tha. Chhâma, Tha. Hirâ, Tha. Dâmodara, Tha. Harâja, and Su. Thânâ were brought from Srî Chitrakûţa.

May this god be propitious; may there be happiness in the Vimalâchala; may the whole Sangha (company) be happy; and may the writer be happy. (This) eulogy was written by Pandita Vivekadhîragani and composed by Pandita Lâvanya Samaya disciple of Pandita Samaya Ratna who is worthy of being worshipped and who bows to Adideva three times.

May they be blessed, Srî Patela Harapati, Tha. Hânsâ, Tha. Mûlâ, Tha-Krisnâ, Tha. Kânâ, Tha. Harsa, Su. Mâdhava, Su. Bâdhu and Su. (Blacksmith) Sahaja.

XI.

A stone-inscription in the temple of Adinatha at Naralai dated Samvat 1597.

The village of Nåralåi, where the temple of Ådinåtha is built, is situated on the confines of Meywar and Mårwad near the fort of Desuri of the Mahåråja of Jodhpur. The temple is to the west of the village and a stone-pillar to the left contains this inscription. The face of the block of stone measures 60° by 9° containing fifty-five lines and a half of Sanskrit prose composition in modern Devanågari characters. It mentions that in the time of King Råyamalla, son of Kumbhårånå and a descendant of Mahåråjådhiråja Srî Siladitya of the Sûrya dynasty of Meywar, Simha and Samadâ of the Ukesa caste established an idol of Srî Âdisvara in this temple by the permission of Srî Prithyiråja, the eldest son of Rånå Råyamalla. It is dated Samvat 1597; A.D. 1541.

TRANSLITERATION.

१ ॥५०॥ श्रीयशोभद्रसूरिगुरुपादुकाभ्यो।

२ नमः संवत् १५९७ वर्षे वैशालमासे।

श्रुह्मपक्षे प्रष्टमां तिथौ श्रुक्षवासरे पुन

४ वेसुकक्षप्राप्तचंद्रयोगे । श्रीसंदेरगच्छे ।

- ५ कंलिकालगौतमावतारः समस्तमवि
- ६ कजनमनों ऽनुजविनोधनैकदिन
- ७ करः । सकललन्धिविशामः युगप्रधानः ।
- ८ जितानेकवादीश्वरबृंदः । प्रणतानेकनर
- ९ नायकः मुकुटकोाटिम(त्र)ष्टपादारतिदः । श्री
- १० सूर्य इव महाप्रसादः चतुःपष्टिसुरेंद्रसं
- ११ गीयमानसाधुवादः । श्रीषंडेरकीयग
- १२ णवुधावतंस:। सुभद्राक्कक्षिसरोवररा
- १३ जहंसः यशोवीरसाधुकुलांबरनभोम
- १४ णिः सकलचारित्रिचकवर्तिवक्रचुडामः
- १५ णिः भ०प्रभुश्रीयशोभद्रसूरयः। तत्प
- १६ हे श्रीचाहुमानवंशशृंगारः । लब्धसम
- १७ स्तानिरवद्यविद्याजलिधपारः श्रीबद
- १८ रादेबीदत्तगुरुपदप्रसादः। स्वविभलकु
- १९ लप्रबोधनैकप्राप्तपरमयशावाद: । भ
- २० ॰श्रीशास्त्रिस्रिः त० श्रीसुमतिसूरिः ।
- २१ त० श्रीशांतिसूरि: त० श्रीईश्वरसूरि: । ए
- २२ वं यथाक्रममनेकगुणमणिगणरो
- २३ हणस्यिगां महासूरीणां वंदे पुनः
- २४ श्रीशालिसूरि: त० श्रीसुमतिसूरि:
- २५ तत्पद्यालंकोरहारभ०श्रीद्यांतिसृरि
- २६ वराणां सपरिकराणां विजयराज्ये ॥
- २७ अथेह श्रीमेदपाटदेशे। श्री
- २८ सूर्यवंशीयमहाराजाधिराजशी
- २९ सि(शि)लादित्यवंशे श्रीगृहिदत्तराउल
- ३० श्रीबप्पाकश्रीखुमाणादिमहारा
- ३१ जान्वये । राणाहमीरश्रीषे(से)त
- ३२ सिंहश्रीलखमसिंहपुत्रश्रीमो
- ३३ कलमृगांकवंशीयोतकारकप्रता
- **१४** पमार्चेडाक्तार । आसमुद्रम्हीमं
- ३५ डलाखंडल । अतुलमहाबलराणा
- ३६ श्रीकुंभकर्णपुत्रराणाश्रीरायम्ह
- ३७ विजयमानप्राज्यराज्ये । तस्पुत्रम
- ३८ हाकुमारश्रीपृथ्वीराजानुशासना
- ३९ त्। श्रीक्रकेशवंशे रायजडारीगीये
- ४० राउलभीलाष(ख)णपुत्रमं०दृदवंशे
- ४१ मं भ्यूरसुत मं भ्यादूकः । तस्पुत्रा

- ४२ म्यां मं०सीहासमदाभ्यां सद्वांधव
- ४३ मं कर्मसीधारालाखादिसुकु
- ४४ टंबयुताभ्यां श्रीनंदकुलवत्यां प्
- ४५ याँ सं९६४श्रीयकोभद्रस्रिमं
- ४६ त्रशक्तिसमानीतायां त०सायर
- ४७ कारितदेवकुलिकायुद्धारत: ।
- ४८ सायरनामश्रीजिनवसत्यां ।
- ४९ श्रीआदीश्वरसा स्थापना का
- ५० रिता(कृता)श्रीशांतिस्रिप
- ५१ हे देवसुंदरइत्यपरशिष्य
- ५२ नामभिः आ०श्रीईश्वरस्
- ५३ रिभि:। इतिलबुप्रशस्तिरि
- ५४ ये लि॰ आचार्यश्रीईश्रसूरि
- ५५ णा उत्कीर्णा सुत्रधारसोमाके
- ५६ न ॥ शुर्भ.

Salutation to the wooden slippers of Guru Sri Yaso-bhadra-sûrî. In the Samvat year 1597, in the month of Vaisakha, on the sixth day, in the bright fortnight, on Friday, the moon being in the asterism Punar-vasu, the venerable and noble lord Yaso-bhadra-sûri, belonging to the Sandhera Gachchha,* an incarnation of Gautama in the Kali age, a sun for opening the lotus-like minds of all devout men, the resort of all aquisitions, the chief lord of the yuga, the vanquisher of a crowd of many great religious disputants, whose foot-lotus is rubbed by the rims of the diadems of great many kings prostrating themselves before him, exceedingly gracious like the sun, whose excellent praises are being sung by the sixty-four Surendras, an ear-ornament of the learned men in the Shanderakiya class, the royal swan belonging to the lake, namely (his mother) Subhadra's womb, the sun t of the sky, namely the family of the sage Yaso-vîra, (and) the crest-jewel of all the best eloquent reciters of histories; the noble lord Srî Sâli-sûri who followed him in his Patta (the seat of the Guru), who was an ornament of the family of Sri Châhumâna, who had crossed the ocean of all the faultless (or excellent) sciences, who had been shown the favour of the title of Guru by Srî Badarâ Devî, (and) who had won words of great praise by his

A section of the Jain community.

^{† 14} means "with Baddhists one who is perfectly enlightened, the wise, the colightened i.e. one who by perfect knowledge of the truth is liberated from all existance, and who before his own attainment of Nirvana or annihilation reveals to the world the method of obtaining it".—Prof. M. William's Dictionary.

[‡] lit., sky jewcl.

preaching to his own community; also Sri Sumati-sûrî; and Srî Sânti-sûri; and Sri Isvara-sûri; thus, in succession, in the line of the great sûris,* who were like hills where grow many jewels of virtues; again † Srî Sâli-sûri; and Srî Sumati-sûri; and the noble lord Srî Sânti-sûri, a garland of ornaments of his Putta,—under the priestly sovereignty of these best of suris, now here in the country of Medapata, in the family of Siladitya, who was the king of kings and belonged to the solar dynasty, in the family of the great Kings Sri Guhidatta Râula Srî Bappâka, Srî Khumâna and others, in the glorious political kingdom of Rânâ Śrî Râya-malla, the son of Rânâ Śrî Kumbha-karna (who was) of incomparable and great strength, the Indra of the ocean-bound earth, an incarnation of the sun, possessed a prowess which exalted the lunar race, (and) the son of Sri Mokala, (who was) the son of Lakhama-siha (who was the son of) Sri Sheta-sîha (the son of) Râgâ Hamira ; by the order of Mahâ—Kuara Srî-Prithvî-râja by Sîhâ and Samadâ,—the sons of Mayûras son Sâdûla, belonging to the family of Dûda, (who was) the son of Râ-ula Sri Lâshanâ, of the Râyajadârî *yotra* belonging to the family of Śri-Ūkeśa,—with their relations Karmasi, Dhārā Lâkhâ and other members of the family, the consecration of (the image of) Srî Adîsvara was caused to be performed in the Jain monastry, called Sâyara from its temples, &c., being repaired by the SâyaraI, and which was brought by magical incantations into the city of Nandakula-vati in Samvat 964. It (the consecration cremoney) was performed by the Acharya (= spiritual preceptor) Srî Isvara-sûri whose other name as a pupil was Deva-sundara and who belonged to the Patta of Sri Santi-sûri. Thus this short inscription was written by the spiritual preceptor Srî Isvara-sûri and engraved by the lapidary Somâka, Hail.

XII.

A stone inscription of a Vapi (Vav-well) at Sådadi under Jodhpore.

Dated Samrat 1654.

This inscription-stone is placed in the right-side wall of a Vâv near the village of Sâdadi situated on the borders of Meywâr and Mârwâd, and forming part of the territory of the king of Jodhpore. The face of the stone on which the inscription is cut measures 15" by 8" containing twenty-two lines of Sanskrit composition in modern Devanâgari characters. It is well preserved. It mentions the digging and constructing of a Vâv (Vâpi) by an Osvâla Baniâ

^{*} सूरि is a title given to the Jain teachers.

[†] i.e., Sáli-Sári II., Samati-sári II., and so on

[‡] It means perhaps the community of the Jains, or the Sangha, as it is called in Gujarati.

named Sûratânaji in the time of Mahârânâ Srî Amarasimhaji of Meywâr. The date entered therein is Samvat 1654; Sâkê 1520. (A. D. 1598.)

TRANSLITERATION.

- १ ||६०||श्रीगणेशाय नमः || श्रीब्रह्मणे नमः ||
- २ लक्ष्मीनहरायणायं नमः ॥ श्रीउमामहे
- ३ श्वरार्थं नमः ॥ अयशीनृपविक्रमार्कसम्यै
- ४ त् ॥ संवत् १६५४ वषे धार्के १५२० प्रवर्तमाने
- ५ महामांगल्यप्रदवैशापर्मेंसे कृष्णपक्षे द्वि-
- ६ तीयायां तिथी बहस्पत्तवासरे श्रीसादडी
- ७ नगर्र ॥ महाराजाधिराजमहाराणाश्री श्री
- ८ अमर्रशंघजीविजयरार्ज्यः उसवालकाती
- ९ यकावेडीयगोत्रश्रावकवरदविराजमान
- १० साहश्रीभारमलतद्भार्याशीलालंकारधा
- ११ रणी अनेकनुस्यपुरुषाँदेमहापुण्यकार
- १२ णी नादेचागीत्रगावित्री गंगाजलैनैर्मला
- १३ मोईअीकपूरानामी तैयेंस पुत्रस्य साहश्री
- १४ ताराचंदस्य एकादशसतीसहितर्संपुण्यर्थ
- १५ श्रेयोर्थ श्रीतारावाविनामकं तीर्थं कारितं
- १६ तृत्पुत्रेणसादशीसरताण, जीनमैकेन पैर्त
- १७ पेल्पमानविजीयोना ॥ शुभभवतुः ठः
- १८ यावत्कूर्मधृता धरा विजयते यावद्भुजंगा
- १९ भिषः । पाताले पत्रमानपूरिततनुर्याबद्रावि
- २० श्रंद्रमाः । तायतिष्टतु तीर्थमेतदमलं वा
- २१ पी महामंडपा साहश्रीसुरताणकेन वि
- २२ हितं मांगब्यपुष्टिपदं ॥ श्री रस्तु । श्री ॥

TRANSLATION.

Bow to Srî Ganapati; Bow to Brahmâ. Bow to Lakshmînârâyana. Bow to Umâmâheśvara. On Thursday the 2nd day of the Krishnapaksha (dark half) of the beneficient month Vaiśâkha of the year 1654 of King Srî Vikramârka corresponding with the Sakè year 1520, when Mahârâjâdhirâja Rânâ Śrî Amarasimhaji was reigning successfully at Śrî Sândi there was Sâha Śrî Bhârmalla of the Osvâla caste, Kâvedi Gotra and a follower of the Jain religion. He had a

^{*} भ्यां. १ राम्यां. २ या. ३ वर्षे. ४ शाके. ५ ख. ६ मा. ७ ति. ८ रे. ९ खि. १० व्ये. ११ च्येम्य. १२ गायत्री. १३ नि. १४ माता. ९५ तस्याः. १६ पुण्यार्थे. ९७ ना. १८ ति. १९ पा. २० अथोनाम.

wife named Mai Srî Kapurâ, who was adorned by all the virtues; who made large meritorious gifts to deserving persons; who was as holy as Gâyatri and as pure as the water of the Gangâ, belonged to the Nadechâ yotra. She with her victorious son Sâha Srî Sartânaji caused to be made a tirtha called Târâ Vâpi for the merits and welfare of her son Târâchaṇda, his cleven wives (who had become Satis) and his sons. May there be happiness. May this pleasant and propitiating pure tirtha in the form of a Vâpi with a large mandapa endure as long as the earth remains successful supported on the back of the tortoise, as long as there is Śesha Nāga in the pâtâla with his body sustaining on wind, and as long as the sun and the moon exist. May there be wealth, Śrî.

XIII & XIV.

Stone inscriptions of the Rdyosågara Taldo near Rdjanayar in Meywûr.

Dated Samvat 1732.

As these inscriptions are in respect of the same subject-matter and are placed on the same spot near each other it is convenient to treat them together.

There are some twenty five such inscription-stones on the Navachoki ghaut of the Råyasågara lake, copies of two of which have been obtained. These appear to have been copied down from a book called Råjaprašasti composed by a Paudit named Riyachhoda giving an account of the kings of the Sårya dynasty from a very remote period. These two inscriptions contain the 2nd and 3rd Sargas (cantos) of the original poem. The former brings down the genealogy to the time of Vijayabhûpa, and the latter to that of Råhapa, who was the first person styled Råya. Lake Råyasågara where these inscription-stones are seen is situated between the two small towns of Råjanagar Kåykaroli, and is so called on account of its being dug and built by Råya Råyasimhaji of Udeypore. The face of each of the slabs,—which are of white marble—measures 36" by 29" feet containing thirty-eight and thirty-six lines respectively. The composition is in Sauskrit verse and is written in Devanågari characters. They are dated Samvat 1732, A. D. 1676; when the work of the lake appears to have been begun under the orders of the king.

TRANSLITERATION.

- १ ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ गुंजापुंजाभरणनिचयं चंद्रकान्तिः किरीटे गात्रे चक्रं करकमळयोर्योजितं चित्रवस्त्रं ॥
- २ मध्ये पीतं वसनमपरं किंकिणीवस्त्रवेणीं नासां मुक्ता विद्धति मुदे तेस्तु गोवर्द्धनेंद्रः ॥१॥ आदौ जल
- ३ मयं विश्वं तत्र नारायणः स्थितः हिरण्यहारी तन्नाभौ पद्मकोष इहाभवत् ॥२॥ ब्रह्मा चतुर्भृष(ख)स्तस्य म
- प्रतिचः कश्यपोस्त्रतः । सुतो विवस्वांस्तस्यासीत् मनुरिश्वाकुरस्य सः ॥३॥ विकुक्षिः स शशादास्यनामाः
 I., 19,

- ५ तस्य पुरंजयः ॥ ककुत्स्थापरनामायमस्यानेनास्ततः पृथुः ॥४॥ ततोभूद्विश्वरंविस्तु ततश्चंद्रस्ततोभव
- ६ त् युवनाश्वीस्य शावस्तो यहदश्वीस्य चात्मजः ॥५॥ ततःकुवळयाश्वीमृद्धं भुमारापराभिषः दृढाश्वीस्यास्य ह
- ७ वंश्वी निकुंभस्तस्य वा ततः ॥६॥ वर्हणाश्वः कुशाश्वीस्य सेनिजित्तस्य वा ततः युवनाश्वीस्य मीधाता त्रसहं
- ८ स्वपराभिषः ॥७॥ चक्रवर्त्यस्य तनयः पुरुकुत्सोस्य वा सुतः ॥ त्रसद्दस्युर्द्वितीयोऽस्मादनरण्यस्ततो भवत्॥८॥
- 、 हर्यश्वोस्याकणस्तर्य त्रिवंधनन्द्रपास्ततः ॥ सत्यन्तस्त्रिज्ञंकुरत् तस्य नामान्तरं ततः ॥९॥ हरिश्चन्द्रो रोहितोस्य
- २० तस्य वा हरितस्ततः ॥ वपस्तस्य सुदेवोस्माद्विजयो भक्कोस्य वा ॥१०॥ तस्माद्वको वाहुकोस्य तत्पुत्रः स-गरः स च॥
- ११ चक्रवर्ती सुमत्यांतु पत्न्यां तस्याभवन्सुताः ॥११॥ श्रेष्ठाः पश्चिसहस्रोद्यसंख्याः सागरकारकाः॥ सगरस्यान्यप
- १२ ल्यां तु कशिन्यामसमंजसः(:) ॥१२॥ ततोंशुमान्दिकीपोस्मासस्माज्जातो भगीरथः ॥ ततः श्रुतस्ततोनामः सिंधुद्वीपोस्य
- १३ तत्सुतः ॥१२॥ अयुतायुस्तस्य जातः ऋतुपणस्तु तत्सुतः सर्वकाम(ः) सुदास्रोस्य तस्मान्भित्रसद्दः पति(ः) ॥१४॥ यदपत्यःसकल्मा
- १४ पपादान्याख्योस्य चारमकः ॥ मूळकोऽस्माद्शरथस्तत एडविडस्तस्त: ॥१५॥ जातो विश्वसहस्त
- १५ स्मात् खटवांगश्रकवर्यतः ।। दीर्घबाहुर्दिलीपोस्य रघुरस्याज इत्यतः ॥१६॥ जातो दशरथस्तस्य कौश
- १६ स्यायां सुतोभवत् ॥ श्रीरामचंद्रः केकेय्यां भरथो(तो) रामभक्तिमान् ॥१७॥ सुनित्रायां लक्ष्मणश्च शत्रुप्तश्चे
- १७ ति रामतः श्रांसीतायां कुरोजातो लवश्चेति कुरादभृत् ॥१८॥ कुमुद्रत्यामतिथिको निषधोस्यत
- १८ तो नलः ॥ नमोस्य पुण्डरीकोस्य क्षेमधन्या नतोउमयत् ॥१९॥देवानीकस्ततोऽहीनः पारियात्रोस्य तत्सुतः ॥ ब
- १९ छस्तस्य स्थलस्तस्माद्वज्ञनाभस्ततोभवत् ॥२०॥ सगणस्तस्य विधृतिः पुत्रस्तस्य सुतोभवत् हिरण्यना
- २० भः पुष्योरमार् ध्रुवसिद्धिस्ततोभवत् ॥२१॥ सुदर्शनोऽस्याभिवर्णस्तस्य शीघस्तस्तो मसत् ॥ ततः प्रसुः श्रु-तस्त
- २१ स्मात्संथिस्तस्य तु मर्थणः ॥२२॥ तत्तेमहस्यांस्तस्याभूद्विश्वसाहुः प्रसेनिजत् ॥ ततस्ततस्तक्षको
- २२ स्मादृहद्वरु इतित्वयं ॥२३॥ महाभारतसंप्रामे निहतस्त्वभिमन्युना ॥ एतेत्वतीवा व्यासेनसंप्रोक्ता भार
- २३ ते नृषाः ॥२४॥ अनागतान्जगादैयं व्यासस्तत्र यदामि तान् ॥ वृहद्वलाद्वृहद्रणस्तस्योक्षक्रियः इत्यतः ॥ २५॥ वत्स
- २४ वृद्धः प्रतिव्योमस्तस्यास्भाद्धानुरस्य वा ॥ दिवाकस्तस्य पदवीवार्धनीर्पातरित्यमूत् ॥२६॥ तस्यासीत्सहदेवो
- २५ स्व बृहदश्वस्ततोमवत् मानुमान् वाप्रत्यकाश्वोस्य तस्मात्सुप्रतीककः ॥२७॥ ततोभृत्मवदेवोस्म(ा)त्सुनक्षत्रो
- २६ स्य पुष्करः ॥ ततोतरिश्वः सुतपास्तस्मान्मित्रजिदस्यद्धः ॥२८॥ बृहद्राजस्ततो विदिस्तरमात्तस्य कृतंजयः ॥ तस्माद्र
- २७ णंजयस्तस्य संजयः शाक्य इत्यतः ॥२९॥ शुक्कोदोस्माञ्जांगलोस्य प्रसेनजिदयस्ततः॥ क्षुद्रकस्तस्य ६ण-कस्त
- २८ स्यासीत्सुरथस्ततः ॥३०॥ सुमित्रस्तु सुमित्रांत इक्ष्वाकोरन्वयोभवत् ॥ उक्ता भागवतस्कंधेनवमे ते मयो-दिताः ॥३१॥
- २९ द्वाविशत्यप्रशतकमोषां संख्यां कृतां वदे ॥ प्रसिद्धात्स्यैवंशस्थात् वज्रनामोभवत्ततः ॥३२॥ महारथीतिराजेंद्र
- ३० स्तस्भादितरश्री तृप: ॥ तस्मादचलसेनस्तु सेनास्यत्वप्रहारणे ॥३३॥ तस्मात्कनकसेनोस्य महासेनोय इत्यत:॥ त
- ३१ स्माद्विजयसेनोस्याऽजयसेनस्ततोऽभवत् ॥३४॥ अभैगसेनस्तस्मातु मदसेनस्ततोऽभवत् ॥ भूपः सिहरध-स्लेते अ

- ३२ योध्यावासिनो तृपाः ॥३५॥ तस्माद्विजयभूषोय मुक्त्वायोध्यां रणागतान् ॥ जित्वा तृपान् दक्षिणस्थानवस-दक्षिण
- ३३ क्षितै ॥३५॥ तत्रास्याकाशवाण्यासीन्मुक्त्या राजामिधामपि ॥ आदित्याख्या त धर्तव्या भवता भवदारूये ॥३७॥ जा
- ३४ ता विजयभूरांता राजानो मनुपर्नकाः ॥ वीराः संख्येजितं तेषां पंचित्रत्रयुतं शतं ॥३८॥ आसीदित्यादि-द्वितीयः सर्गः ॥
- ३५ संबत् ॥१७॥१८॥ वृषे माथमासे कृष्णपक्षे सप्तम्यां तिथी रायसमुद्रमुहरतराणे राजसीयकीकीघो ॥ संब .
- ३६ त् ॥१७॥३२॥ वैषे माघमासे सुर्केलयक्षे १५ तिथा राजसमृद्रप्रतिष्ठाकीराधितागज्ञधरमुख्यःसमश्रीकल्याणम
- ३७ स्तु । सुत उरजण गजधर सुष्रदेव गजधर केसा सुंदर लाखा सोम्परा श्वाति चतुरापुरका रामराम शांचजो जी ।।

- 1. Salutation to the holy Ganesa. May Krishna who wears on the body, a number of ornaments (made) of a quantity of gunjds*, on the diadem the brilliancy or lustre of the moon, in the two hands the discus and the skirt of a parti-coloured upper garment, (and) on the waist a yellow garment and a braid of cloth with small bells attached to it,—give you happiness.
- 2-3. In the beginning the whole world consisted of water; therein lay Narayana on whose navel shone the calyx of a lotus bearing the beauty of gold; here appeared the four-faced Brahma; of him (was born) Marîchi; of him Kasyapa; his son was Vivasvat; his Manu (Vaivasvata); his Ikshvâkû.
- 4. His Vikukshi, otherwise called Saśada; his Puranjaya, having for his other name Kakutstha; his (was) Anenas; his Prithu.
- 5. Of him was born Viśvarandhi; of him Chandra; of him was born Yuvanâśva; of him Sâvasta†; and his son (was) Brihadaśva.
- 6-7. Of him was horn Kuvalayāśva, having for his other name Dhundhumāra; of him Dridhāśva; of him Haryaśva; and of him Nikumbha; of him Varhanāśva; of him Krisāśva; and of him Prasenajit; of him Yuvanāśva; of him Māndhāṭri,‡ otherwise called Trasad-dasyu§.

१ वर्षे. २ वर्षे. ३ शुक्लपक्षे, ४ कारिता.

† Also called Śrávasta/

§ It literally means "frightening evil beings."

^e It is a small shoub, Abrus Precatorius, bearing a black and red berry which forms the smallest of the jeweller's wei/ ats.

^{‡ &}quot;Yuvanāśva had no son, which grieved him much. Some holy sages near whom he lived instituted a religious rite to procure progeny for him. One night they placed a consecrated vessel of water upon an alter as part of their ceremony, and the water became endowed with prolific energy. Yuvanāśva woke up in the night thirsty, and finding the water, he drank it. So he conceived, and in due time a child came forth from his right side. The sages then asked who would suckle the child, whereupon Indra appeared, gave his finger for the child to suck, and said "he shall suck me," मामयेगासाँचै- These words were contracted, and the boy was named Mām-dhātpi."—Dowsons Hindu Mythology.

- 8. His son (was) Purukutsa, a universal monarch; of him (was) Trasaddasyu the second; of him was born Anaranya.
- 9-10. Of him Haryaśva; of him Aruna; of him king Tribandhana; of him Satyavrata, his other name (being) Triśanka; of him Harischandra; of him Rohita; and of him Harita; of him Bappa; of him Sudeva, of him Vijaya and of him Bharuka. *
- 11-12. Of him Vṛika; of him Bâhuka; his son (was) Sagar, and he (was) a universal monarch; to him were borne by Su-mati sixty thousand illustrious sons, the diggers of Sâgara †; of Sagra (was), by another wife Keśini, Asamanjas.
- 13-15. (was) Ansumat; of him Dilipa; of him was born Bhagirath; of him Sruta of him Nabha; of him Sindhu-dvîpa; his son (was) Ayutâyus; of him was len Rituparna; his son (was) Sarva-kâma; of him (was) Sudâsa; of him (his son) king Mitrasaha, whose other name was Kalmâsha-pâdaļ; and of him (was) Asmakaļ; of him Mūlaka; of him Dasaratha; of him Edavida.
- 16. Of him was born Viśvasaha; of him Khatvanga, a uneversal monarch; of him Dîrgha-bâhu; of him Dilîpa; of him Raghu; and of him Aja.
- 17-19. Of him was Daśaratha; (to him) was born, from Kauśalyâ, a son, Srî Râmachandra, from Kaikeyî, Bharata, devoted to Râma, and from Sumitrâ, Lakshmana and Satrughna; to Râma, Lava and Kuśa were born from Sîtâ; to Kuśa was born Atithika from Kumudavatî; of him (was) Nishadha; of him Nala; of him Nabhas; of him Pundarîka; of him was Kshema-dhanvan.

Also written Kuruka or Ruruka.

[†] सागर, meaning "Ocean," was the name given by Sagara to the chasm which his sons had dug while endeavouring to recover the horse of the Asva-medha carried off by Kapila to Pâtâla or the infernal regions.

^{‡ &}quot;The indignant sage Vasishtha once cursed the king that his appetite should be excited only by human flesh for 12 years. The angry king took water in his hands to pronounce, in his turn, a curso upon Vasishtha, but was dissuaded from his purpose by his wife, Madayanti. Unwilling to cast the water on the ground, lest it should wither up the grain, and equally reluctant to throw it up into the air, lest it should blast the clouds and dry up their contents, he threw it upon his own feet, and they were so scalded by it that they became black and white and so gained for him the name of Kalmāsha-pāda, spotted feet! Every day for twelve years, at the sixth watch of the day, he gave way to his cannibal appetite, and devoured multitudes of men. On one occasion he devoured a Brāhman in the midst of his cannibal happiness, and the Brāhman's wife passed upon him a curse that he should die whenever he associated with his wife. At the expiration of Vasishtha's curse, the king returned home; but mindful of the Brāhman's imprecation, he abstained from conjugal intercourse. By the interposition of Vasishtha, his wife, Madayanti, became prognant, and bore a child in her womb for seven years, when she performed the Cæsarean operation with a sharp stone, and a child came forth who was called Aśmaka from aiman, a stone."—Dowson's Hindu Mythology.

- 20. (Of him was) Devânika; of him Alûna; of him his son Pâripatra; of him Bala; of him Sthala; of him was born Vajranâtha.
- 21. (Of him) Sagana; (of him) his son Vidhrariti; of him was born his son Hiranyanabha; of him Pushya; of him was Dhruva-siddhi.
- 22. Of him Sudarśana; of him Agnivarna; of him Sighra; of him Maru; of him Prasuścuta; of him Sandhi; of him Amarshana.
- 23-24. Of him Mahasvat; of him Viśvasâhva; of him Prasenjit; of him Takshaka; of him Brihadbala. He was killed by Abhimanyu in the great war of the Bhâratas. These have been mentioned by Vyâsa in the Bhârata as kings that have existed.
- 25-26. In the same manner Vyåsa has spoken there of kings that were yet to come. I recount them (here). From Brihadbala (came) Brihadrana; of him Urukriya; of him Vatsavridha; of him Prati-vyoma; of him Bhanu; of him Divâka; of him was Padavi, commander of the forces.
- 27. Of him was Sahadeva; of him Brihadaśva; of him was born Bhânumat; and of him Pratyakâśva; of him Supraţîkaka.
- 28. Of him was born Marudeva; of him Sunakshatra; of him Pushkara; of him Antariksha; of him Sutapas; of him Mitrajit.
- 29. Of him Vrihadrāja; of him Varhi; of him Kritanjaya; of him Rananaya; of him Sanjaya; of him (one) called Sākya.
- 30. Of him Suddhoda; of him Lângala; of him Prasenajit; of him Aya; of him Kshudraka; of him Runaka; of him was Suratha.
- 31. (Of him) Sumitra. The race or family of Ikshvâku ended with Sumitra. Those that are mentioned in the ninth book of the Bhâgavata-Purâna are recounted by me.
- 32-33. They are enumerated to be one hundred and twenty-two. I recount (them here). From him (Sumitra), renowned and born in the Solar dynasty, sprang Vajranabha; of him the king of kings called Maharathi; of him king Atirathi; of him Achala-sena, who, in battle, slew the fore-part or front of armies.
- 34-35. Of him Kanaka-sena; of him Mahâsena; of him (one) called Anga; of him Vijaya-sena; of him Ajaya-sena; of him Abhanga-sena; of him Madasena; of him was king Sinha-ratha. These (were) kings dwelling in Ayodhyâ.
- 36. Now Vijaya-bhûpa, a son of his, left Ayodhyâ, conquered the southern kings who had come to the battle and settled in the southern country.
- 37. There to him spoke an acrial voice: "Leaving even the title of 'king,' the title of 'Aditya' must be assumed by you in your country."

38. Kings commencing with Manu and ending with Vijaya-bhûpa became heroes; their successive battle lasted for 135 years.

Thus (ends) the second canto. In the Samvat year 17-18, in the month of Mågha, in the dark fortnight, on the 7th day,* the ceremony of digging the Råya-sågara lake was performed by Rånå Råja-Singhaji. In the Samvat year 1732, in the month of Mågha, in the bright fortnight, on the 15th day, the inauguration ceremony † was caused to be made. Blessed be Råma, the head lapidary. Råma, Råma (salutations) from his son Urajana Gajadhara‡, Keså, Sundara, (and) Lakhå, of the Somaparå caste, of Chaturapura. ?.

TRANSLITERATION,

- १ श्रीगणेशायनमः उद्घोळीभवदुत्रवाछसुरभीपुछछटाचामरः सद्गोवर्धनधन्यगोत्रविलसन्छत्रो जितेंद्रो व
- २ र्छा ॥ गोपालैः कल्रितश्च गोपतनवैगोपिप्रियः प्रेमशन् पायाहोधनभक्तरक्षणपरः सञ्चक्रवर्ती हरिः ॥१॥ ततो वि
- ३ जयभूपस्य पद्मादित्योभवत्सुतः ॥ शिवादित्योस्य पुत्रोभूद्धरदत्तोस्य वा सुतः ॥२॥ सुजसादित्यनामाऽस्मात्सुसु
- ४ सादित्यकरततः ॥ सोमदत्तरतस्य पुत्रः शिलादित्योस्यचात्मजः ॥३॥ केशवादित्य एतस्मानगादित्योस्य चारम
- ५ जः ॥ भोगादित्योस्य पुत्रोभूदेवादित्यस्ततो भवत् ॥४॥ आशादित्यः कालभोजादित्योस्मात्तनयोस्य तु ॥ गृहादित्य इहा
- ६ दित्याश्चर्दशमितास्ततः ॥५॥ गुहादित्यसुताः सर्वेगुहिलोताभिधायुताः ॥ जाता युक्तं तेषु पुत्रो ज्येष्ठो बप्पा-भिषोभव-
- ७ त् ।। इ.च. वं हष्या नंदिनं गौरी हशो वाष्पं पुराऽसजत् ।। नंदीगणोसौ बाष्पोपि प्रियाहक्वाष्पदोऽभवत ।।७।। हारी
- ८ तराशिः स मुनिश्चंडः शंभोर्गणोभवत् ॥ तस्यश्चिष्योभवद्वाष्पस्तस्याज्ञातः प्रसादतः ॥८॥ नागहृदपुरे तिष्ठन्ने
- ९ कॉलिंगशिवप्रभी: ॥ चके वाष्पीऽर्चनं चास्मै वरान्हव्रो ददी ततः ॥९॥ चित्रक्टपतिस्खं स्यास्त्वद्वंश्यच-रणाध्यु
- १० वं मागछतास्थित्रकूटः संततिः स्यादखंडिता ॥१०॥ प्राप्येत्यादिवरान्त्राष्य एकस्मिन्शतके गते ॥ एकाम्रनव
- ११ तिस्रष्टे माघे पश्चवलक्षके ॥११॥ सप्तमीदिवसे वाष्पः सपंचदशवत्सरः ॥ एकछिंगेशहारीतप्रसादाद्भाग्यवा-नभृत् ॥१२॥
- १२ नागहृद्राख्ये नगरे विराजी नरेश्वरः खङ्गधेरेषु घन्यः बलेन बेहेन च मोजनेन भीमो रणे भीमसमी
- १३ रिपूणां ॥१३॥ पंचाधिकत्रिशदमंदहस्तप्रमाणयुक्पट्टपटं दथान: ॥ यभौ निचोलं किल घोडन्नोबल्करप्र
- १४ मार्ण विमलं वसानः ॥१४॥ श्रीएकलिंगेन मुदा प्रदत्तं हारीतनाग्ने मुनयेथ तेन ॥ दत्तं दधान: कटकं च हैमें पंचा

^{*} From this the language is Gujarâti mixed with Hindi.

[†] i.e. that of declaring it open for public use.

[‡] It means a "lapidary."

It seems to be the name of a place.

- १५ शदुचत्पलमानमास्ते ॥१५॥ द्वात्रिशदुचत्तमदन्युकाचैः प्रस्थामिषैः शैखरैः कृतस्य ॥ मणस्य चैकस्य
- १६ भरं हि चर्लारिशन्मितीर्वभ्रदांस दधानः ॥१६॥ एकप्रहारान्महिषी महांसी दुर्गार्चनायां जवतो विनिन्नन् मुं
- १७ जन्महाछागचतुष्टयं स अगरत्यशस्त्यं प्रवभूववाष्यः ॥१७॥ ततः स निर्कित्य दृपं तु मोरीजातीयभूपं
- १८ मनुराजसेन्नं ॥ राहीतवांश्चित्रितचित्रकृटं चक्रेत्रराज्यं रापचक्रवर्ती ॥१८॥ राज्यातिपूर्णत्यवरत्वलक्ष्मीमय
- १९ त्वरान्दादिमवर्णयुक्तां ॥ तां रावळाख्यां पदवीं दथानी वाष्पाभिधानः स रराज राजा ॥१९॥ ततः खुमाणा
- २० मिथरावळोस्माद्रोविदनामाथ महेंद्रनामा ॥ आलुन्पोस्मादथ सिंहवर्मा तस्यात्मजः शक्तिकुमारनामा ॥२०॥ जा
- २१ तरततो रावलशालिवाहनस्तस्यात्मजोभूत्ररवाहनस्ततः ॥ अंवाप्रसादोस्य च कीर्विवर्भकस्तत्पुत्रआ
- २२ सीबरवर्मनामकः ॥२१॥ ततो चपालो नरपत्यभिख्यस्वथोत्तमोरमान्वपभैरवोरभात् ॥ श्रीपुंजरा
- २३ जोभवदस्य कर्णादित्यः सुतोस्यापि च भावसिंहः ॥२२॥ श्रीगात्रसिंहोथ सहंसराजः सुतोस्य सुनुः शुभ
- २४ योगराजः ॥ सवैरडाख्योय सवैरिसिंहस्ततोस्य वा रावलतेजसिंहः ॥२३॥ ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराज
- २५ स्य भूपतेः ॥ पृथाख्यायाभगिन्यास्तु पतिरित्यतिष्टार्दतः ॥२४॥ गोरीसाहिबदीनेन गज्जनीशेन संगरं
- २६ कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य महासामतशोभिनः ॥२५॥ दिल्हीश्वरस्य चोहाननाथस्यास्य सहायकृत् ॥
- २७ सद्वादशसहस्रेः स्ववीराणां सहितो रणे ॥२६॥ बध्वा गोरिपति दैवारस्वयीतः सूर्यविविभत् भीखारासापुस्त
- २८ केस्य युद्धस्योक्तोस्तिविस्तरः ॥२७॥ तस्यात्मजोभून्नृपकर्णरावलः प्रोक्तास्तु षड्विंशतिरावला इमे ॥ कर्णात्मजो
- २९ माहपरावलोभवत्सङ्गराचे तु पुरे रूपो बभी ॥२८॥ कर्णस्य जातस्तनयो द्वितीयः श्रीराहपः कर्णनूपाद्य-योग्नः ।
- ३० घाक्येन वा शाक्कुनिकस्य गत्वा मंडोयरे मोकलर्सी स जित्वा ॥२९॥ तातोतिकेत्वानयतिस्म भद्रं । कर्णेस्य राणाविक
- ३१ दं ग्रहीत्वा ॥ मुमोच तं चारु ददो तदीयं रानाभिधानं प्रियराद्याय ॥३०॥ भव्याशिषा बाह्मणपहिर्वालन कातीयविप्र
- ३२ छरशस्यनामः ॥ श्रीचित्रकृटे वललब्धराज्यं चक्रे ततोराहर एव वीरः ॥३१॥ ततो बमी चित्रकृटे राहर्परे याहरोधकः ॥
- ३३ पूर्व सीसोदनगरे वासात्सीसोदीवास्मृत: ॥३२॥ रानाविष्यलाभेन रानेत्युक्तोऽखिलैर्बभी ॥ वंशस्याप्रे भविष्य
- ३४ ति रानाविकदिनो तृपाः ॥३३॥ राजेंद्रराजीपृज्योयं नारायणपरायणः ॥ विशेषणादिवर्णाद्याः वीरोराना-भिर्धा दधी
- ३५ ॥३४॥ आसीद्धास्करतस्तु माधवयुधीरमाद्रामचंद्रस्ततः सस्सर्वेश्वरकः कटोडिकुलजो लक्ष्म्यादिनायस्ततः
- ३६ तैलंगोस्य तु रामचंद्र इति वा कल्पोस्य वा माघवः पुत्रोभून्मधुसूदनस्त्रय ईमे ब्रह्मेशविष्णूपमाः ॥३५॥यस्या
- ३७ सीन्मधुसूदनस्तु जनको येणी च गोरवामिजामून्माता रणछोड एष कृतवान् राजप्रशस्त्यांद्वयं॥ काश्य सान्ययरा
- ३८ जसिहसुगुणश्रीवर्णनाद्यं महद्वीरांकं समभूस्तृतीय इह सत्सर्गः सुसर्गः स्पुटं ॥३६॥ इतिश्रीतैस्रंगद्वातीयक-ठोडीप
- ३९ तिपंडितोपनामम्भुसूदनभट्टपुत्ररणछोडकृते राजप्रशस्याद्वये महाकाव्ये तृतीयः सर्गः ॥ सं० १७२२ नर्षे मापशु०१५ रायसमुद्रप्रशस्तिः ॥४॥

Salutation to Sri Ganesa. May Hari, the best and supreme ruler, engrossed in protecting his divotees, and possessing wealth consisting only of cows, loving and beloved of the cow-herdesses (of Vrindåvana), surrounded by the cow-herds and by the sons of cow-herds, possessed of power, a vanquisher of the god of rain, having for his splendid umbrella the blessed hill of the excellent Govardhana, * and whose chowri is made of the undulating upraised and white mass (or tuft of hair) on the tail of his cows,—protect (you). 1.

Then of Vijaya-bhûpa was his son, Pamâditya; (then) his son Sivâditya; and (then) his son Hara-datta. 2.

Of him (one) called Sujasâditya; of him Sumukhâditya; (then) his son Somadatta; and (then) his son Silâditya. 3.

Of him Keśavâditya; and (then) his son Nâgâditya; (then) was his son Bhogâditya; (and) of him was Devâditya. 4.

Then Âśuditya; of him Kâla-Bhojâditya; (and then) his son Guhâditya. Here are Ádityas numbering fourteen. Then all the sons of Guhâditya came to be called Gahilota; of them the cldest was called Bappa. 5-6.

Nandi, the personal attendent (of Siva), seeing whom Gaurî (or Pârvati) shed tears from her eyes in olden times, became Bâshpa,† producing tears in the eyes of his beloved wife. 7.

Chanda, a gana (or personal attendent) of Sambhu, became the sage Haritarisi.† Bashpa became his pupil, and, through his favour and by his directions, dwelt in the city of Nagahrida and worshipped Eka-linga (an image of Siva) and Rudra then gave him boons. 8-9.

Mayst thou be the lord of Chitra-Kûţa, and may Chitra-Kûţa never go out of the hands (lit., feet) of thy descendants; may thy lineage be uninterrupted. 10.

And such other boons, Bashpa having obtained, (and) one hundred and ninety-one years having elapsed, on the 7th day in the bright fortnight, in Magha, that Bashpa, attaining the age af fifteen years, became happy through the favour of Harita, and Sri Eka-lingesa. 11-12.

He reigned over the city called Nâgahrida, (was) blest amongst swordsmen, (and was) like Bhîma to his foes in battle by his might, his body and the quantity of food he consumed. 13.

This celebrated hill in Vindû-vana was lifted up and supported by Krishna upon one finger for seven days to shelter the cow-herds from a storm of rain sent by Indra to test Krishna's divinity.

[†] Bashpa and Harita-risi were incarnations of Nandi and Chanda respectively.

He verily looked splendid with (lit., wearing) a turban measuring 35 long hands and with (lit., wearing) his mantle measuring 16 long hands. 14.

And he wore a golden anklet, weighing 50 palas,* which was given him by the sage called Harita to whom it was given by Sri Eka-linga when (the God was) pleased. 15.

He kept (lit., wore) a sword weighing one mana made of 40 paccá sers called prasthas (each weighing) 32 large dhabbust and such other (coins). 16.

Bâshpa was like Agastya, quickly killing, during the worship of Durgâ, ‡ two buffaloes with one stroke of his great sword and making a meal of four big goats. 17.

Then having conquered the king called Manu-râja, § of the race of Mori, he took Chitra-kûţa variegated (with vegetation), and reigned there like a supreme monarch. 18.

Holding the title of Råvala formed of the first letters of the words राज्यातिपूर्णस्य (fullness of kingdom), बरव (supremacy), and उद्मीमयस्य (opulence), the king, called Båshpa, became eminent. 19.

Of him (was born) the Råvala named Khumåna; of him one called Govind; then one named Mahendra; of him king Álû; || then Sinhavarman; (then) his son called Śakti-kumâra. 20.

Of him was born Râvala Sâlivâbana; then was born his son Nara-Vâhana; of him Ambâ-prasâda; of him Kîrtî-Varmaka; then followed his son called Nara-varman. 21.

Then followed the king called Nara-pati; then Uttam; of him king Bhairava; of him was Srî Punja-râja; of him Karmaditya; of him his son Bhava-sinha. 22.

Then Srî Gâtra-sinha; then that Hansarâja, (his) son; (then) his son Subha-yogarâja; then that (king) named Vairaṭa; then that Vairi-sinha; and of him Râvala Tejasinha. 23.

Then Samara-sinha, being the husband of king Prithvi-râja's sister, named Prithâ, rendered aid, through great affection, with his 12,000 heroes, to Chohâna-

Pala is a particular weight == 4 Karshas = -1/100 of a Tula,

[†] A dhabbu is a Jodhpur coin and is so called from Tipoo whose name it bears. It weighs about 2 rupees.

[#] Referring to the festival in bonour of the goddess Durga, held in the month of Assin.

[§] Commonly called Mana-mori.

 $[\]S$ This a colloquialism for Aliata; c. f. = Jim for James, in English; and Navalo for Navanidh, in Gujarati.

^{20.}

nâtha (i. e. Prithvî-râja), the lord of Dillî, who being very proud and distinguished by his powerful feudatory princes, was waging war with Gorî-sahibadîna, the king of Gajjanî,—took Gorî-patî captive in battle, and, through fate, went to heaven (i. e., died) penetrating the solar disk. A description at length of this battle is given in the work, Bhîkhâ-râsâ. 24-27.

His son was Karna Râvala. There are mentioned twenty-six Râvalas. The son of Karna was Mâhapa Râvala. He became king in Dûngara and other cities. 28.

The second son of Karana was Sri Râhapa. He, (getting) furious, went, by the order of king Karna and by the auspices declared by the augurs, to Mandora, conquered Mokalasî and brought him (prisoner), in a laudable manner, to his father. Karna depriving him of his title of Râna, released him and transferred it to (his) dear Râhapa. 29-30.

By the auspicious blessings of a Bráhmana, named Sara-sálaya, of the priestly class of Pallivála, this heroic Ráhapa ruled over his kingdom, obtained by valour, in Chitra-kûţa. 31.

Then Râhapa became an eminent breeder of horses (lit., draught animals) in Chitra-kûţa, (and was) called Sîsodiya from his formerly residing in the city of Sîsoda. 32.

Having obtained the title of Rana, he came to be called Rana by all, (and) the kings in his family shall, in future, hold the title of Rana. 33.

This here assumed the title of Rana formed by the first letters of the epithets, राजंदराजीपूज्य (worthy of being respected by a line of kings) and जारायणपरायण (wholly devoted to Narayana). 34.

(Descended) from Bhâskara was Paṇḍit Mādhava, from him Rāma-chaṇdra, then the good Sarveśvara, then Lakshmyā-dinātha, born in the family of Kaṭhoḍ, of him (was) Tailanga or Rāma-chaṇdra; his were three sons Kalpa, Mādhava and Madhu-sūdana, like Brahmā, Siva and Vishṇu. 35.

Ranchhoda, whose father was Madhu-sùdana and mother Veut, the daughter of Go-svâmin, composed this great heroic poem, called Râja-prasasti, describing the good qualities of Râjasinha and his family. Here evidently ends the excellent and third canto. 36.

Thus ends the third canto in the great poem, called Râja-praśasti, composed by Rauchhoda, the son of Pandit Madhusûdana Bhatta, the best of the Kathodis and of the Tailanga caste. The 15th of Mâgha Sudi, Samvat 1722. Râya-samudra Praśasti.

SURYA DYNASTY

XV.

A stone-inscription of the temple of Śrî Dakshinamûrti at Udeypore.

Dated Samvat 1770.

The temple in which this inscription is found is built to the south of the royal palace at Udeypore. It appears to have been built in the time of Rânâ Sangrâmasinhaji by the instruction of a sage named Srî Dakshinâmûrt whose religious pupil the king was. The Sivalinga therein placed after due ceremonies was called Rajarâjeśvara. The stone on which the inscription is cut measures 19" by 13" inches containing twenty-nine lines of Sanskrit verse written in modern Devanâgari characters. The date of the inscription is Samvat 1770, Sake 1635. (A. D. 1714,)

TRANSLITERATION.

- १ स्वरितश्रीमनमहागणपतये नमः ।। श्रीगुरुन्यो नमः ॥ बालन्यग्रीधवं-
- २ शाविधभासमानसुधांशवे ॥ भंत्रदैवतरुपाय गुर्दव कुसुमांजलि: ॥१॥ ब्रा-
- ३ इस्यं(इं) तेजो दधानः शुतिविषयलसन्मंत्रभावैरनेकै: र्यभोरास्योलुसद्भिक्ष्य(र)
- 😮 गणितमनुभी रौद्रमाधत्त एव 🛭 श्रौतस्मार्तिकयाभिर्विगल्जितकलुषः पोषय-
- ५ न् विप्रवं(दृं)दं कारुण्यौदार्ययुक्तः स जयति नितरां दक्षिणामृतिरेकः ॥२॥ कलाजु
- ६ पि कलाघरः प्राधितकीर्तिरमोनिधेरदारगुणसंयुतः सकलशास्त्रसाराचितः॥ त-
- ७ पोमयतनुः स्वयं निगमतंत्रबोधोत्त्रसत्परामृतपरिष्लुतः सजयतीहः विभागणीः ॥३॥
- ८ बाने देवगुरः प्रतापतालितः कालामिरद्रोपमस्तेजस्यी जमद्रिवरिजतह्यीकः कार्ति-
- ९ केयोपरः ॥ इष्टापूर्तिकयासु प्रतिनिधिरनिशं याभ्रवत्क्यः स साक्षादाचार्यस्ये विश्व(सि)ष्टः
- १० स जयति नितरां दक्षिणामूर्तिरेकः ॥४॥ सनाथीकुर्वन्वैयदुदयपुराधीशमनिशं नृपा
- ११ वृंके शक्षत् प्रतिवसति संप्रामनरपं ॥ ततः श्रेयोधिनयं सकछदुरितःवसनविधि विधक्ते
- १२ निविधः स च जनपदः सोपि रूपतिः ॥५॥ श्रीमद्भानुरिवप्रतापमह्सा प्रोन्मीलितांशः स्वयं
- १३ शत्रुष्वांतिनवारणेऽतिनिपुणः संसारसौक्यप्रदः ॥ स्वर्णोर्म्यपारिपूर्णसद्गुणद्भदः सन्मि
- १४ त्रपद्माटबीहर्षोत्पादनहेतवे स मुदित:संप्रामासंह: प्रभु: ॥६॥ यत्सैन्ये चलति क्षिता
- १५ वरिजयप्रस्तारकर्मण्ययो गर्जत्कुंमिमदार्द्धगंडमिलितैमृँगैरनेके (:) कटं ॥ पीत्वा मोदि-
- १६ तिवग्रहेरनुदिशं संकारशब्दान्यितैः श्रीसंग्राममद्यीपतेः प्रतिदिनं मन्ये यशो गीयते ॥७॥
- १७ दोर्ह्यीलार्दिलितारिदांतिनिवहः कीत्यां धरचंद्रिकास्पर्धिन्या धवलीक्वतिक्षातितल
- १८ प्रोहामसार्थान्वतः ॥ षाड्गुण्यामलधीस्त्रिवर्ग्यकुश्चलः शक्तित्रयालंकृतो मेवारप्रभुरी
- १९ च्छितार्थफलदो वर्वात सर्वोपरि ॥८॥ अथश्रीदक्षिणामूर्तिः शिवालयमकारयत् ॥
- २० वापींच माधुर्यंजलां बास्त्रोक्तविधिना ततः ॥९॥ स्वस्तिश्रीविक्रमादित्यराज्योद्रँ
- २१ गतकालतः ॥ गगनाद्यश्रमुसंख्ये (१७७०) वत्सरे द्योमनाव्हये ॥१०॥ तथाच शकवं
 - १ गुर्ले २ श्रु ३ व्यो ४ मः ५ कैः ६ दल्लितारिदातिनिवदः ७ स्थ

- १२ शस्य शालियां तम्भूषतेः पंचाग्यष्टिप्रमितिके १६३५ ऽस्वनिमे हरास्यदे ॥११॥ सौम्या २३ यने सवितरि गुरुशुक्रोदये भुमे ॥ चैत्रस्य पीणिमायां च शंमोस्तु वैतमाचरम् ॥१२॥ विद्या २४ नयुतसंख्याकान् वेदविद्याविद्यारदान् ॥ यत्नांतकर्मकुशलान् सर्वस्वमित्र संवृतान् ॥१३॥
- २५ कुशमंडपनिर्माणं निगमागममानंतः ॥ विधाय कोटिहोमं तत्कल्पाकल्पसमन्वितं ॥१४॥ प्रति
- २६ पद्दिवसे प्राप्ते ज्योतिर्विद्धिनिवेदिते ॥ नित्यं नैमित्तिकं कर्म नीतिप्रोक्तेन वर्त्मना ॥१५॥
- २७ न्यायतः भुत्रिरासीनो विष्रवृदपुरःसरं ॥ नदद्भिः पंचवाचैश्च वेदच्वानिपुरःसरं ॥१६॥ अर्घ्या
- २८।! ब्राह्मणान् शतसंख्याकान् पूजाद्रव्याद्यलंकतान् ॥१७॥ नि
- २९ योज्य पृथिवीपालः स्वस्तिवाचनकर्मणि ॥ प्राणप्रतिष्ठामकरोद्राजराजेश्वरस्य च ॥१९॥

Hail! Bow to the propitious and splendid Ganapati; bow to the Guru. I offer a handful of flowers to the Gurû who is like the young moon shining forth from the ocean-like family of Nyagrodha and who is an incarnation of all the mantras and the presiding dieties put together. May the unrivalled Dakshinamurti be successful who bears the light of Brahma, who shines in the very essence of the Vedas, who assumes the form of Rûdra surpassing even the Manus by the force of innumerable mantras flowing out of the mouth of Sankara, whose sins are destroyed by the performance of ceremonics prescribed in the Sratis and Smritis, who protects all Brahmanas, and who is merciful and liberal. He shines illustrious here; he, who is like the moon among those who follow arts, whose fame is wide-spread, who is full of the virtues of the ocean, in whom pervades the essence of all the Sastras, whose body is an incarnation of austerities, who has attained the most beautiful (moksha) eternal rest by the knowledge of Vedas and Tantras and who is the leader of the Brâhmagas. Inasmuch as the king declaring him the lord of the lords of Udepura worships him, and inasmuch as he then constantly resides by the side of the lord Sangrama (singh) the king as well as the country, all free from obstacles of every description, acquire great felicity and do away with all their sins. The lord Sangramasinha shining with the lustre of his valour like the sun with that of his heat and therefore skillful in driving away his darkness-like enemies, the giver of happiness to the world, the deep lake of virtues filled with golden water has risen for giving joy to the forest of lotus his good friends. When his armies go about on the earth extending his conquest over his enemies, the wasps, coming round the temples of roaring elephants wet with rut and humming in all directions with their bodies entranced by drinking of the same, sing, I believe, the songs of his fame every day. The king of Mevada, who has cut to pieces the hordes of the elephants of his enemies by the valour of his hands, who is surrounded by crowds (of kings) on the face of the earth, which is brightened by his glory like

the moon-beams of the Sarada Ritu, whose intellect is purified by six (viz: peace, war, marching, halting, sowing dissension, and seeking protection) virtues, who is well-versed in the three vargas (Dharma, Artha and kâma), who, is adorned with the three Śaktis (Prabhāva, Mantra and Utsāha) and who is the giver of desired fruits, is at the head of all. Srî Dakshînâmûrti then caused to be built a temple and after that a Vapi having fresh water, with ceremonies prescribed by the Sastras. In the year 1770 after the beneficent king Vikramaditya's reign known as Sounana Samvatsara and the year 1635 of Salivahana. the establisher of the Saka era, on the fullmoon day of the month Chaitra, the constellation being Aświni, the sun being north of the equator, Jupiter and Venus having risen, he observed the Vrita of Sankara. Having performed a sacrifice with ten million and with proper ceremonics in the Mandapa made of kuśa-grass as prescribed in the Vedas, at the hands of ten thousand Brâhmanas who know the Vedavidya, and were well up in the ceremonies of the Yajnas, &c., and were selected for that purpose; on the first day (of the dark half of Chaitra) fixed by astrologers, he who was holy and had performed the Nitya and Naimitika karmas as required by the Niti Sastra and who was sitting in front of the crowds of Brahmanas reciting the Veda, with the live instruments being played upon, † † † engagad one hundred Brâhmanas adorned with things used in worship for performing the Swastivachana and established this Râjarâjesvara with due ceremonies.



GOHILA DYNASTY.

Ĩ.

Stone inscription of Solhadi Vão at Mángro! in Saëråshtra.

Dated Samvat 1202.

While entering into the town of Mångrol, one of the ancient towns in the Province of Kåthiåvåd, by the gate called the Gadi's gate there is a Vão (Våpi) in a street to the left. In the wall to the right in descending into the Vão, there is a stone built up in it which contains this inscription. It is a hard black stone well preserved, measuring 18 inches by 15 inches with twenty-four lines and a half of Sanskrit verses in Devanågari characters.

It mentions that during the reign of Kumarapala at Anahilapura, there ruled at Mangrol a Gohila king named Muluka, son of Sahajiga and grandson of Sri Sahara, who caused to be built a temple called Sahajigesvara in memory of his father Sahajiga, and assigned several dues from the customs revenues. The Mahajanas (the leading citizens) of Choravad also assigned a Vão called Degua for the use of the temple. This Vão is on the way to the village of Visanaveli from Choravada.

It is dated Vikram Samvat 1202, Simha Samvat 32. A. D. 1146.

TRANSLITERATION.

- १ ॥उँ॥उँनमःशिवाय॥ मुकुटः स हरस्य पातु वः श्रश्चिपंकेरुहकंदकांक्षया ∄गैगनादिवरिण य—
- २ त्र सा सुरहंसीव पपात जान्हवी ।। कृत्वा राज्यमुपारमन्नरपातिः श्रीसिद्धराजो यदा दैवादुत्तम---
- ३ कीर्त्तमांडेतमहीपृष्ठो गरिष्टो गुणै: ॥आचकाम ऋगित्य(शटित्य)चित्यमहिमा तद्राज्यसिहासतं श्रीमा---
- नेष कुमारपालस्पतिः पुण्यप्ररूदोदयः ॥राज्येऽमुख्य महीभुजोभवदिहंश्रीगृहिला—
- ५ ख्यान्वये श्रीसाहारइति प्रभृतगरिमाधारो धरामंडनं ।।चीळ्क्यांगशिगृहकः सहजिगः ख्या —
- ६ तस्तन् बस्तनस्तन्युत्रा बीळगी वस्तुग्वमी साराष्ट्रस्थाक्षमाः ॥एशामेक्रममी बीरः सीम —
- राज इति क्षितौ शिविख्यातो बिद्धे देवं पितुर्नाम्ना महेश्वरं ॥श्रीमोमनाशदेवस्य जगन्यां पु ---
- ८ प्यवृद्धये ॥इंदुकुंदयशाश्चके कीर्ति मेरसमाश्चितं ॥पूजार्थमस्य देवस्य भ्राता ज्येद्वास्य मृलुकः ॥
- ९ सुराष्ट्रानायकः प्रादाच्छासनं कुलशासनं ॥ठं०श्रीसहजिगपुत्रठ०श्रीमूलुकेन श्रीसहजिगे
- श्वरदेवस्यानवरतयंचोपचारपूजाहेतोः श्रीमन्मंगलपुरशुक्कमंडपिकायां दिनंप्रति काँ१
- 🔇 तथा तलारामान्यमध्यात्दिनंप्रति का १तथा बलीवईछाटमाणकामान्ये (छा)टांप्रति१ क
- :२ णमृतगडकंप्रात का४तथा रासभछाटांप्रति का०॥ तथा समस्तलोकेन निःशेषवङ्गीकारै—

१ग. २ . ३ति, ४तां, ५ डाकोर, ६ व्हार्पापण.

STONE INSCRIPTION OF SODHALI VÀO AT MÂNGROL IN SAÜRÂSHȚRA. DATED SAMVAT 1202.

PLATE XXXVIII

्री प्रविम्ब शित्या। मुक्र रहसह र सामा इवह शिवान सह में दुनों हुया गंग नाद निप्रण्य त्रसाखरदंसीवपपातेना क्रवीलते वा समुख्या रम व २५ निः श्रीसिक्सानायुरा देवा ५ वस नीर्ति गीरतमही ए मांगेरिए चे गुणिय याचका अक्रियिविध मदिमान पासी सिहास ने श्रील लियकपारपालस्पतिः अणाप्रकारास्य यथा राज्यस्य मामहीयानान विदेवे श्रीसदिना खावरात्रीसादार्कित्वतगरिमाधारायरामेंद्रनीवित्रसातित्रहक्तसहिमाहर्या तस्रहः प्रतस्यु वार्वालानावृत्र इरबानासो राष्ट्र रहा हमाधाण मामकतासावी रशगाभ राज्ञकति जिल्ला विस्तानि विद्वालाद वैपिन की सामादश्वरें। श्रीमामना घाद वर्षा जगरीप ।पर्छायाद्वेड केंद्रप्रां भाकवीदित्वर सैंप्रिकेल संग्रिकेशाद व सन्नातासाराय यून्कशः सुराम्। सायक्ष्रप्रदाहासन् ज्ञान्यास्नाग्ठव्यीसद्धिराष्ट्रप्र ठव्यी स्लाक्त्येशीसद्धिते सरादव्यातवर्तपैत्वापे सेर्वेच जो हाता हेश्वी संस्थान प्रस्तु स्क्रीडिप का द्वीदित प्रतिकार तिवा तला राजा होता हो तुरि वैप्रतिका १ तथा बनीवर कारमारा कारा हा दूरी प्रतिकातक णानुसगरकेष्ट्रतिका ४ सर्वा गतन कार्ये प्रतिकाणानमासमग्रालाक व निश्ह घवातीकारे खपबर रांबियक्र रामकरी बाहुया भ्रष्ट्रनीलीय्रह्म केवाला तथापबन्द तथेर तर केंप्रिकारम कंशपवननमंबीप्रतिद्वे । के वैप्रति उसे ताजा हाका ५ न हो अग यसाह खिट तस्य मिकासाप्रति काण तमाय्रवायेव हिर्यामा रूखावाऽ बलब एवग्यासीतिषालाति वदाप्याक वदेनशुक्र केउपि काम छान् दि तैप्रनि रूप्रीम् लाख्न र पाकेक हेपद तथा तथा से स्यावार समगम वह गुरा छेरे कमती हत्व ब इसमाद्व विश्व है किया दिन है विश्व महिल्ला सह हमाला कमा वीस्पाव नियास मार्गस मा सद्वारम्या व विनासना प्रिक्र मिन्स चो श्रीभर जिला स्र राज पर ज्ञान मानी मा सन सुन्यी शुन्त सी कि कि सार में दिवस निकार में चार निकार के साम के सी कि कि साम के सी कि साम के सी कि साम के साम की कि सी कि साम के सी कि साम की कि सी कि इर साम्बरी मन्या। प्रतिनिधानुकृष व प्रवासन्य स्थाराम् यान्ती वृती कर है प्रतिप्रतिहि नैव इर म रा माप्र गर् वित दार्ति समावित माने मिनिन मिलेशपोन ती या वृगान्य राना खियात पास नै।शिवः पाद्र मन्द्रानायान्त्रकश्रायना क् इपानापक् बमहावापीविक यिन्यपानायनायन उत्वर वर्षित्रम्म वक्ता सन्तिः संगर्भिति ३ व्ययः यद्या वाष्ट्री अत्रम्भेतरम्भव विक्रमे वत्र २०२ तमाक्रीसिंदसेवत् ३ रस्तितं वदि १३ साम्राम्यत्ति रिविक्समा केतिरिवैमरमण ३प तनार्टार्पार्यावेरि नश्रीप्रसर्वे तथा।



- **१३ वि पत्रसर्पवीडहराकेरी**वाटुयाप्रभृतीनां प्रत्येकका०॥ तथा पत्रभृतंउटैभरकंप्रतिका२॥
- १४ तथापत्रभृतगर्नीप्रति द्वेशक्षेत्रंप्रतिज्ञातामान्येकाश्तथा आगरमध्ये खुटितैखरालिहासाप्रति
- १५ का शतथा अनयैव स्थित्या चीक्यायाडे वलहजे चग्राह्म ॥तथा लाठिवद्रापथके वहंतश्रूकमंडाप
- १६ कामध्यात् दिनंप्रति ठ०श्रीम् लुकेन रूपकैकः पदत्तः ।।तथा चोरूयावाडेन्यसमस्तनृहत्पुरुवैरे
- कमतीभूय चतुराधाटनिविभुद्धा यथा प्रसिद्धपरिभोगा सब्धमालाकुला नीसणवेलीग्राममार्गस—
- १८ मासन्ना देगुयावावीनामनापी राजानुमत्या श्रीसहजिगेश्वराय प्रदत्ता ॥तथा श्रीवामनस्थल्यांशुल्क---
- १९ मंडिपर्डेपिकायांदिनंपाते काश्तथायुत्तमध्ये दिनंप्रतिकाश्तयापत्रकुर्यामराप्रतिपत्रशतश्तयात्री
- २० डहरा।केरी।वाटुगा।प्रमृतिनां प्रत्येकं पत्र५०तथातलारामाव्यमध्यात् तार्बेुलिकहट्टंप्रतिप्रतिदि
- २१ नंपत्रश्मडावापूग१देवदार्वं समस्तोयं समस्तैर्माविशृमिपैः पास्त्रीयोनुमान्यश्च दानाच्छ्रेयोन्
- २२ पालनं ॥शिवः पात्रं जनो दाता पालकः पुण्यमकापरं|लोपकृच महापापी विचार्यैवं प्रपालयेत् यत
- २३ उक्तंच॥वैहुभिर्वसुधा र्नुक्ता राजभिः सगगदिभिः यस्य यस्य यस्य यस्य मृमिस्तस्य तस्य तदा फलं ॥श्रीमद्भिक्रमसं
- २४ वत्१२०२तथा श्रीसिहस्वत्३२ आश्विनवदि१३सोमे॥प्रशस्तिरियंनि(भिता)॥कृतिरियंपरमपाशुप
- २५ ताचार्यार्थमहापंडितश्रीप्रसर्वेज्ञस्य।।

Om! Om! Salutation to Siva. May the diadem of Hara, where Janhay? swiftly descended from the sky, as a celestial female swan with the desire of (getting) the stem of the moon-lotus, protect you. When the Prince Sri Siddharaja, who had adorned the surface of the earth with his high fame, and who was noble on account of his virtues, having reigned, died accidentally, the illustrious Kumarapala, whose greatness was inconceivable, and whose good fortune had taken a firm hold on account of his merits, at once took possession of the throne of his kingdom. There flourished here in the reign of this sovereign, in the family of the name of Sri Gühilâ Sri Sahâra, the possessor of extensive greatness and an ornament of the earth. Then (there lived) his famous son Sahajiga, the commander of the forces of Chaulukya. His sons became powerful on the earth and were able to protect Saurashtra. Of them one, known on the earth as Somaraja and who was heroic, set up (an idol of) the god Mahcavara after the name of his father. He, whose fame was like the moon and like the jasmine, for the increase of religious merit in this world, made the fame of Sri Somanâtha Deva cherished on Meru (spread as far as Mount Meru). His elder brother, Mûluka, the Nâyaka (chief) of Saurâshtra, made (this) royal grant (which is) to be observed by his descendants, for the performance of religious rites of gods: (That) by Thakkura Śri Mûluka, the son of Thakkura Śri Sahajiga, for the continuous five-fold service of the god Srî Sahajigesvara (be taken): 1 Kârshâpaņa every day from the custom-house of Srî Mangalpura: and 1 kârshâ-

१६५,	२द्रम.	३तथा.	४मंडपिकायां.	দ্ৰু ,	३य:	৬ ব.	८भृ.

pana on every day from the revenue of Talârâ: and 1 kârshâpana on every Mânakâ taken from the pannier of a pack-bullock: 4 karshapanas on every cart-load of grain: and ½ karshapana on every pannier of a donkey; and by all the people and by all the betel-leaf growers, ½ karshapana on every bundle of (betel) leaves and on every vîdaharâ, keri, vâţuyâ, and the like: and 24 kârshâpanas on every load of camel laden with (betel) leaves: and 1 dramma on every cart laden with (betel) leaves: and 1 karshapana on every field yielding the best crop; and 1 kârshâpana on every khunti, kharâli and hânsâ, in a salt-pan; and in the same manner to be taken in Choruyavada and Vala-ija. And one silver piece was (to be) given by Thâkkura Srî Mûluka every day from the transit duties collected at the custom-house on the road to Lathiyadra: and the Wava by name Deguyâvâvî, situated near the road (leading) to the village of Vîsanaveli, (and) surrounded by rows of trees, well known (as a public place of) enjoyment (amusement), having four distinct boundaries, was given with the sanction of the king, to Sahajigeśvara by all the other leading personages in Choruyâvâda, (they) having become of one mind. And from the custom-house at Vâmanasthalî one kârshâpana every day: and one kârshâpana on gambling every day and one hundred (betel) leaves on every bundle in a (betel) leaf-shed: and fifty (betel) leaves on every Vîdaharâ, keri, vâţuyâ and the like; and two (betel) leaves and one unhusked betel-nut every day from every shop of a (betel) leafseller—out of what is produced at Talara. All these (which constitute) the portion (set aside as an offering) to the god, must be agreed to and accepted by all the future kings, (for) the continuance (of gifts) is of greater merit than the gifts (themselves). Siva is the donee, man is the donor, the person who continues these gifts is surely the enjoyer of religious merit; one who annuls (these) a great sinner: bearing this in mind one should continue them. Because it is said: by Sagar and many other kings the earth has been enjoyed: whosesoever was the land, his was the fruit (religious merit). This inscription was made on Monday the 13th Aśvin Vadi, Vikrama Samvat 1202 and Sinha Samvat This is the composition of the great Pandit Sri Prasarvadnya, a great and venerable follower of Siva.

II.

Stone Inscription of the Kâma Nâtha's Orasiâ at Ghelânâ near Mângrol in Saürâshţra. Dated Valabhi Samvat 911.

This inscription is cut in the stone of Orasiâ* used in the temple of Kâma-nâth—a Siva temple—at Ghelânâ, a village near the sea-port town of Mângrol

Go Orașid is a piece of stone with a round surface used for rubbing a sandai word piece upon to get chandan, which is used in worshipping the phallic idel of Siva.



PLATE XXXVIII अहा । जानः मत्ययजनस्य ५०. सनसम्प्रतामन DATED VALABHI SAMVAT 911. श्रीह्यु पाठ व्यंत्र प्रात्ति प्राप्त प्रदृश्य देत

STONE INSCRIPTION OF THE KAMANATHA'S ORASIA AT GHELÂNÂ NEAR MÂNGROL IN SAÜRÂSHTRA.

on the south-west coast of Kâthiâvâd. The inscription measures 19 in. by 2 in. containing a line and a half of incorrect Sanskrit prose in Devanâgari characters. The stone is a white sand-stone, a little broken in the middle.

It mentions the grant of an Asana (some sort of seat) for the Bhrigu Matha (monastry) in the reign of Ranaka son of Thakore Mulu. The date of the inscription is Valabhi Samvat 911; A. D. 1230.

TRANSLITERATION.

- १ ॥७०॥श्रीमदलभीसंवत९११वीष ॥......डीद४शुके प्रत्यजनकठ०मूल्सुतरांणकर।ाज्ये
- २ श्रीभृगुमठे देवपृजार्थ आसनपटः प्रदत्तः ॥

TRANSLATION.

In the illustrious Valabhi Samvat 911 on the 4th of the bright half of *

* on Friday (this stone) seat was presented for the worship of the god in Śri
Bhṛigumaṭha * * in the reign of Raṇaka the son of Mûlû, awakening confidence.

III.

This is the last leaf of a book called Vishnu Bhakti Chandrodaya, obtained from Talaja under Bhavnagar. The book was written by one Sri Nrisimharanya Muni. The present copy was prepared in Samvat 1469, A. D. 1413-14, when Malik Sri Usman and Raol Sri Sarangji were in power at Gogha, a sea-port town on the cast coast of Kathiavad, about twelve miles south-east of Bhavnagar. It contains in all 4500 Sanskrit verses, and is in a good state of preservation.

TRANSLITEBATION.

इतिश्रीतृसिहारण्यमुनिविरचितेश्रीविष्णुभिक्तचेद्रोदेववोडशकलाप्रकरणंसमातं॥छ॥समातश्रायंविष्णुभिक्ति-चंद्रोदयः॥छ॥अंथाप्रथसंख्या४५००)यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया ॥यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोवोन-दीयतां ॥शासंवत् १४६९वर्षं फाल्मुनशुदि १२ रवाववेद्दं धोषावेळाकुळे महामलिकशीउसमान्तथाराउलश्रीसारं-गदेवधंचकुलप्रतिपती ललाट्याती.............आत्ह्रापठनायमह्वाछाकेन श्रीविष्णुभक्तिचंद्रोदयस्य पुस्तका लिखिता ॥छ॥तैलाद्रक्षेच्छलाद्रक्षेद्रधेच्छियपंचनात् ॥परहस्तगताद्रक्षेदेवं वदति पुस्तका ॥शाशुमं भव-तु ॥भंगलमस्तु ॥ ॥ ॥

१वर्षे २शुदि इराज्ये 1.. 21.

Thus the chapter of the sixteenth kald of Vishnubhakti Chandrodaya composed by Sri Nrisimharanya Muni is finished. This is the end of Vishnubhakti Chandrodaya. The number of verses in this book is 4500. I have copied the book as I found it. So if there is any error the fault should not be attributed to me. Mehta Vachha copied this book of Sri Vishnubhakti Chandrodaya for * * Alha of the Lalata caste, when the great Malek Sri Usman and Raol Sri Sarangadeva with his pancha kula were in power at the part of Ghogha, this day on Sunday the 12th of Falguna Sudi (bright half) of the year Samvat 1469. The book says it should be protected from oil, from water, from loose binding, and from falling into strange hands. Let there be peace and joy.

IV.

Stone Inscription in the temple of Lakshmi Narayana at Mahuva under Bhawnagar, Dated Samvat 1500,

This stone is built up under the seat (Simhåsana) of the god Lakshmi Nåråyana, whose temple is near Darbårgadha of the sea-port town of Mahuva on the southern coast of Kåthiåvåd, and which is the principal town of the district of the same name under Bhavnagar State. It is a hard black stone with a face measuring 21 in. by 12 in., and contains eighteen lines of Sanskrit verses, and prose in Devanagari characters.

It mentions the digging of a Vão (Vâpi) to the west of the town by a Modha Vâṇiâ, Setha Mokal, in Saṃvat 1500, A. D. 1444, during the reign of Gohila Sârangaji. It also mentions the different names of the town of Mahuvâ at different times, from which it can be inferred that the town exists from very ancient times.

TRANSLITERATION.

- १ ॥ अ। अ नमः श्रीसर्वद्वाय स्वस्ति स्वतिमति प्रसिद्धनृपातिश्रीविकमातिकमात् संवद्विश्वपदिद्वये
- २ पुजगतीसंख्ये प्रजानांपतौ ॥मित्रे चोतरगे प्रचंडिकरणे धन्ये मधौ माधने शुक्के पूर्णतिथी गुरी च गुरुभे
- ३ सबोगभोगक्षणे ॥१॥वालाकांतगैरे पुरे मधुमतासंबे निवासोचिते ऽश्रीमत्कामगबीखुरोद्धवभवे वसे
- ४ शिवे संभवः श्रीरामापितचामरातपहरपौढिपैतिष्टान्यितः श्रेष्टिश्रीनरपाल एव समभूत् श्रीकृष्णसेवा(प)रः
- ५ ॥२॥तत्तुत्रोऽतः पवित्रो हरिपरिचरणः श्रेष्टिमह्होऽत्र पत्हस्तस्मादच्याविरासीदमितवितरणोऽत्रस्य सत्य
- ६ स्वभावः ।श्रेष्ठिश्रीरामनामा कृतसुकृतचयः संयुतो जानुसत्या सन्मत्या विष्णुभक्तया (नि)वसति सदने ब्रह्मणो वेदवेदः
- ७ ।३॥तदनुजनितपूर्वादुत्रपुण्यप्रभावात् कछिवछदछनेऽछं मोकलो निर्ज्वछायां प्रणयति वरवापीं तत्प्रती

ंश्पद २रगे ३८

PLATE XXXXX

का नजते हे गात (स्वसिवकान्स स्वात्र या दिना ग <u>सीम्माटामाकन्नशज्ञात्रक्रमात्मात्तामामामामामामामामामा</u>मामा र प्रमानु में ह्या ६ शांत्र साम्वीम् जीता हा क्ष्रज **ॐ**ङागतीसार्य प्रजानां पात्रो।मि। व स्वात्र प्रायपेड िकराण्यं द्वाराण्यां द्वारा स्वात्र त्र मितियो यत्ति च प्रक ॥धावालाकौ तरमाष्ट्रारमधुमतीदेषाजीवाक्तानिवाक्ताभक्तामभवीखनाज्ञवद्भववैष् मार्पित्जामरात्पद्दराष्ट्रोडिप्रतिशावित्वावित्वावित्वानिक्यानपुष्पमभूत्रत्री असम्पर्धापः ॥ 20॥ ब्रेजमाड्यी मर्जाता वा विविद्य सिमातिष्य मिन्द्र प्रतिष्य विक्रमा त्रिम् मात्र ति विक्रि रिन्ताः । अम् । आज्ञान्य न्यं समाद्या। दित्राणाञ्चरत्वात्रक्ष्यक्ष्यात्र खयासत्त्र



- 💪 चीनभूमौ मधुरसलिलपूर्णी श्रेयसे तत्र पित्रोः ॥४॥अनुतिष्टेदधिष्टानं मृद्यावां द्ववारिजले ।सतिष्टेदि—
- ९ ष्टमुद्धिक्षिदिष्टं शिष्टैस्त्रिविष्टपे॥५॥नीलोक्षादं योहारिमेधं सुनिपानं कुर्यात् पुत्रो गोत्रपवित्रोऽभिजनेनः(न) ॥
- १० दबादनं भुमिगजाश्वीभयवकाभ्याद्भावात्तीत्र्यंसुपर्वाद्वीभक्तः॥६॥गोहिद्धोसो रणे शूरः सारंगः शाक्तिसे
- ११ वकः तदुर्व्यो कुरुते वापी धर्मधीरमोदमोकलः ।७॥उक्तश्रीभारते।।गोमासे गोगवाकांते गोरसे गगने
- १२ गते गोमात्रं गोरसं दयाद्रोसहस्रफलं लभेत् ॥८॥ श्रीकांत कृतदैत्यांत देव सेवकवत्सल स्वया विना प्र
- १३ भुः कोऽत्र बातुं कर्म कियापदे॥९॥पुराणपुरुषः पायादपायात् त्वां कृपादद्या जलवायी प्रणीतोऽत्र यो ल---
- १४ इम्या सह मोकल ॥१०॥उक्तं धर्मारण्यपुराणे ॥पुरा सृष्टिसमारंभे स्वयंभूर्मनवान् स्वयं ।अस्थापयन्महास्था
- १५ निमदं मोहिनेमोहनं ॥११॥धर्मारण्यं कृते प्रोक्तं त्रेतायां सत्यमंदिरं ।द्वापरे वेदभुवनं कली मोहेर—
- १६ कं मतं ॥१२॥स्वस्तिश्रीमन्नृपविक्रमार्कसमयातीतसंबत् १५००वर्षे प्रजापतिनाम्नि संवत्सरे उत्तरायणे व—
- १७ संतऋती वैशाखशुक्रपंचम्यां गुरी ।श्रीमधुमस्याःपश्चिमे प्रदेशे निर्ज्जले मातासतीबाईजानुंपिताश्रेष्टिश्री
- १८ रामाभातृत्रे ॰ राघवश्रेयसे।श्रेष्ठिमोकलः भातृसांगलींवासहितो मार्गे शृगाटके मृष्टोदकपूर्णो वागी निर्मिमीते।श्री

Om! Salutation to the omniscient (God.) After the death* of the celebrated King Sri Vikrama in the very prosperous 1500 called Praja-pati,† the hotrayed sun having gone to the north (of the equator) in the auspicious vernal season, in (the month of) Vaisakha, in the bright half (of the month), on the day of full moon, or Thursday, (the moon being) in Pushya, at an auspicious moment under a favourable conjunction of the stars. 1.

In the town called Madhu-matî, in Vâlâka, which is fit to live in, there flourished this Sheth Śrî Nara-pâla, a devotee of Srî Krishna, and possessed of glory and grandeur arising from the chowri and the umbrella given to him by Śrî Râma, (and whose) birth was in the prosperous family deriving its origin from the hoofs of the illustrious Kâma-dhenu. 2.

Of him (was born) his pious son Pâlha, the chief of the Sheths and a devotec of Hari; of him came the Sheths Srî Râma who was of a truthful nature and whose donation of food was immeasurable # be was conversant with the Vedas and, having collected a hoard of merits, he lived in the abode (or beaven) of Brahma with his devetedness to Vishou, a kimily disposition, and with the Sottee Janu. 3.

After him Mokala, able to resist the might of Kali on account of his former noble merits, constructs, for the final beatitude of his parents, there on the waterless spot, situated to the west of it (Madhu-mati), an excellent Wûva filled with fresh water. 4.

⁶ lit., passing away.

[†] The fifth (or thirty-ninth) year in a sixty years' cycle of Jupiter.

[‡] i. c., who distributed food in abundance in charity.

lle, who would sink a fresh water (Wâva) in a region which is observed to be waterless, would obtain in heaven a desired (seat) particularised and assigned by the wise. 5.

That son, who is pious on account of his family and descent, who constructs a well, performs an equine sacrifice, celebrates the marriage ceremony of a dark-coloured bull,* gives an assurance of safety, gives food (to the needy), and is devoted to Brahmanas, to auspicious occasions (holydays) and to holy places, will get lands, elephants and horses on account of his devotion. 6.

The Gohila Sâranga is brave in battle and a worshipper of Śârangin (Vishuu). In his land Mokala, a Modha (Vâṇiâ), well versed in religion, constructs a Wâva. 7.

It is said in the Bhàrata: In the month of Chaitra, (or Vaisâkha) when (even such a small quantity of) water (as it) trodden under the hoof of a cow is evaporated, he who provides for (as much of) water (as might be) sufficient for one cow (to drink), will receive his reward (in heaven) equal to (that received by one who gives) a thousand cows (in charity). \$\frac{1}{2}\$ 8.

Oh God, (who art) beloved of Lakshmi, a slayer of the Daityas, (and) dear to thy devotees, who, except thee, is able to know karman here in this world of karmans? 9.

May Vishou, (whose image is) set up here with (that of) Lakshmi reposing (on his serpent-couch) in the waters, protect thee, Oh Mokala, with a kind look, from calamities. 10.

It is said in the Dharmaranya-purana || that formerly at the commencement of the creation of the world the self-existent Brahma himself made this great city the infatuator (Mohavimohana). 11.

In Krita yuga called Dharmâranya, in Treta Satya-mandira, in Dvapara Vedabhuvana, in Kali believed to be Moheraka. 12.

o This refers to the customs of नीलोहाह, that is to say, performing the marriage coremony of a dark-coloured bull and its mate after the death of a person. A nila-vrisha is thus defined:—लेहितो यस्तु वर्णेन पुच्छान्नेण तु पाण्डुर: ॥ श्वेत:खुरविपाणाभ्यां स नीलन्य उच्यते ॥

[†] By building a Wâva.

[‡] दिग्दष्टिरीधितिसर्ग वजवाग्वाणवारिषु। भूमी पर्शा च गोशब्दी बिद्धिद्विदेशसुस्मृतः il Hence as the sun's rays (गो —दीधिती are exceptionally hot in चैत्र as well as in वैशाख, the month is here called गोमास. — In the same manner गोरस, water, may thus be derived! गो(—भूमि) the earth and रस a liquid.

[§] Deeds meritorious or otherwise.

[।] धर्मारण्य Name of a sacred forest in Madhya-desa into which Dharma is said to have retired : पुराण, a legendary history.

In the Samvat year 1500, after the time of the prosperous and illustrious king Vikramâditya, in the year called Praja-pati, the sun having gone to the north (of the equator), in the season of spring, on the 5th of Vaiśākha Sudi, on Thursday, in the waterless region to the west of Sri Madhu-mati, for the final beatitude of his mother Janu, (who was) a Suttee, of his father Sheth Sri Ramâ and of his brother Shetha Raghava.—Shetha Mokala, with his brother Sanga and Limba, cunstructs, in Sringataka, by the road, a well, filled with fresh water.

V.

Stone Inscription of Varteja, a village near Bhûvnagar, of the time of Rãol Dhundji Dated Saṃvat 1674.

This is a monumental stone-pillar raised in memory of a woman of the Kandolia Brahmana caste, who committed herself to flames (i. e. became a Sati) on the death of her husband. The stone is situated near the Darhar's lodging-house at Varteja, a small village about six miles to the south-west of Bhavnagar. The part containing the inscription measures 12 in. by 8 in., having eight lines of mostly incorrect Sanskrit prose in Devanagari characters. The letters in the last two lines are greatly obliterated. It is of the time of Raol Dhunaji, a Gohil chief and is dated Samvat 1674; Sake 1539; A. D. 1617.

TRANSLITERATION.

TRANSLATION.

Hail! Wealth, glory, and joy * * * of Sri Kandolia caste on Saturday, the first of the bright half of the auspicious month Kartika in the Saradaritu

१यो(वधारानो) २ेशु ३शरहती ४मांगल्य ५वासरे **६**श ७थ्वा

accompanied by good (positions of the) planets and qualities (peculiarities) of the Samvatsara called * * during the year Samvat 1674, Sake 1539, when the sun had risen ten ghadis (four hours) hearing (her!) going round the fire * * * and her house * * * Råola Dhunaji * * * paid * * * 300000 * * * * *

VI.

Stone-Inscription at Bûḍi a village near Goghâ.

Dated Samvat 1748.

This is a monumental stone raised near the bank of a small stream flowing between the small villages of Hoidada and Bâdi under the British district of Goghâ in Kâthiâvâd. It appears to have been raised in the memory of Râol Sursinghaji, who was killed in a fight with the Musalmâns. The inscription measures 9 in. by 8 in. having nearly six lines of Gujarâti prose in Devanâgari characters. The whole of it is in good state. It is dated Samvat 1748, A.D. 1691.

TRANSLITERATION.

संवत १७४८ वैरवेमांगैशर्श्वद १२ देनेसओल शारंजीशुतराअलजीवणजीशुतराओ लशुरशैयजीवायेलाभाराजीमकंद जीनाभाणेजतरकवीदीवीदादषाननी फोजशामां कें कें सिंजा प्राप्त केंग्रेतरश्च लजीतथाहमीरजीनाभतरीजा

TRANSLATION.

Râol Surasanghji, son of Râol Jiwanji, son of Râol Sârangaji, (and who was) a sister's son of Waghelâ Bhârâji Makaṇdaji, and nephew of Râols Satar Sâlaji and Hamiraji was killed in Samvat 1748, on the 12th of the month of Mâgaśara Suda, (while) fighting against the army of the Turk Vidi Vidâdakhâna.

VII.

Stone-Inscription in a temple at Dihora, a village near Talájû under Bhûvnagar.

Dated Samvat 1757.

The temple in which this inscription-stone is found is built on the bank of a river flowing by the village of Dihora, which is about six miles north of Talâjâ-

१वर्षे २मार्गशीर्थ ३शुदि ४दिने ५सु ६सु ७५ ८मु ९शतुशस्त्रज

well-known as Tâladhvaja in inscriptions and copper-plates, and which is under the Bhâvnagar State. The stone is built up in the wall near the entrance and measures 12 in. by 7 in. It contains six lines of Gujarâti in Devanâgari characters of which the fifth line is almost lost. It mentions the erection of the temple in memory of one Hamiraji Gohila, in Samvat 1757; A. D. 1701.

TRANSLITERATION.

ु ॥श्री॥

🧣 ||श्रीगणेशाञ्जनम।(👚

🧣 ((श्रीमहादेवजीनाप्र)।

रसादातथाइनेकरावुंछेमोजे

श्रीदीहोरमांरावळश्रीगजसंघजी

नाः गार्थाः अहि

मीरजीनुंकरावुंछेसंबत १७५७वरलेमाघर्वेद ७रवेउदने

ी श्री श्री

TRANSLATION.

(I) bow to Srî Gunesha.

Ravala Śrî Gajasinghaji's * * * * * * has caused to be built (this by favour of Śrî Mahadevaji in memory) of Śrî Hamiraji in Samvata 1757 on Sunday the 7th of the month of Mîgha Vada.

VIII.

Stone-Inscription of the well called Dholid in the compound of the Darbdr's buildings at Mahwed under Bhavnagar. Dated Samvat 1805.

This inscription-stone is found in the top-wall of the well called Dholiâ well in the compound of the Darbâr's lodgings at Mahuvâ, a small town under Bhâvnagar, on the south coast of Kâthiâvâd. The stone is 15 in. by 14 in. and contains six lines of Gujarâți in Devanâgari characters. There is hardly a single line which has not lost some of its letters. It mentions the digging of the well and a grant of some land to a Bâvâ named Râmadâs Tulsidâs by Vakhatasimhji. It is dated Samvat 1805; A. D. 1749.

Transliteration.

۲.	नाराय :
₹	
ą	पाण्छरादाः कराबी

٠	7	0
1	n	ъ

COHILA DYNASTY.

¥	राज्यश्रीवस्ततसँः • • • • • • • • • • • • • • • • • • •
ų	ज्ये :
ŧ	क्षत्रीमावजी : *** सेठमेतादे
ড	वजीतथामितःयालईसंनीद्धौ
6	भोलोकुवोत्रंभाव्योः * * * * * * * * * * * * * * * * * * *
9	······· दी···· श्वावारामदास्तरुर्सादासेरामा · · · · · ·
१०	•••••••संयत१८०५पोसशुद४

TRANSLATION.

In Samvat 1805, Posha Suda 4th, during the reign of Vakhatsinghji Vijayasinhaji the Dholia well was built, and 50 bighas of land were given to Bâwâ Râmadâsa Talasidâsa.

IX.

Stone-Inscription in the temple of Bhidabhanjana at Lâthi in Kâthidvâd.

Dated Samvat 1809.

The Siva temple of Bhidabhanjana in which this inscription-stone is placed is out side the small town of Lâthi, the principal place of a small State of the same name in the Gohilavâd division of the Province. It has a square surface measuring 6 in. by 6 in., and contains thirteen lines of Gujarâti in Devanâgari characters. It mentions the building of the temple by some Kapola Vâniâs of the town. The reigning chief was Gohila Sanghaji. It is dated Samvat 1809; A. D. 1753.

TRANSLITERATION.

श्रोगणेशायनमःश्रीसारदाओ(यै)नमः॥श्रीरणछोडजी सत(त्यं/छे॥श्रीजयोमंगलाचरणंश्रीश्रीसंवत् १८०९वरेंमासैवतममासेश्रावणमासे शुक्रैपसेतेंथीअष्टमीवारगुरजीग्अंड एवंपेचांगसैभीतदादेवलमीडमंजणशंधु नुपणात्॥आदिश्रीलाठीमधेंगीहेलश्री संघजीवैराजमानराजकरेक्षेश्रीवणीककपो लगनातीगोत्रमंडलसंघवीशी५कस्याणजी? केसवतदाभायीयाईलभयकुलवसुधाबाइश्र

१मासोत्तमे २णे ३क्के ४ति ५म्यो ६यो ७शुद्रो २थ्थे

मर्लंभुवसंविद्याराजतथासंविवांवांवरः जीपुत्रपीतांमर॥श्रीभीडभंजणसंभुनृदेवरु चणावतांजेवसराणजेथेहोयतेसर्वतुरुसीपत्रेछेशीक्तप्नार्पण श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री

TRANSLATION.

(I) bow to Śrî Ganeśa (and) Śrî Sâradâ, Śrî Ranachhodaji is the truth. May success crown this act. (!) Śrî. Śrî. On Thursday the eighth-day of the bright half of the best Month Śrâvana in the year Samvata 1809 (A. D. 1753) when there being Auî yoga, all these five points of the calender were favourable, the temple of Bhidabhanjana Sambhu (Śiva) was finished. At which time illustrious Gohila Śrî Sanghaji is reigning. Śrî Vanika Kapola Jnyâti, Gotra Mandal Sanghavi Śrî 5 Kalyanji Keśava had a wife Bâi Amala, who was of spotless descent from either side (father and mother). Her son Śanghavi Hemarâja and Pitâmbar son of Śanghavi Viţhalji gave away in the name of Śrî kṛishṇa with a leaf of Tulsi plant any amount that the building of the temple of Śrî Bhidabhanjana Sambhu (Śiva) might have cost them.

X.

Stone-Inscription of Ganapati in the temple of Bhidabhanjana at Lâthi in Kâthidvâd. Dated Samvat 1840.

This inscription is found in the seat of Ganapati placed in the temple of Bhidabhanjana at Lâthi, which is mentioned in the last inscription. The face of the inscription measures 10 in by 3 in and contains three lines of a mixture of Sanskrit and Gajarâti about the idol caused to be prepared by some Vâniâs of the town. The character is Devanâgari. It mentions the name of Gohil king Lâkhâji, who ruled at the time. It is of the year Samvat 1820, A. D. 1764.

TRANSLITERATION.

भीगणेशायनमः॥संवत् १८२०वर्षे कारतकवद् ७६ंनेर्देवीवार्बेरेशी गणपतिनुंसैरुपभयुंछेश्रीलाटीमधेगोहरूलाशाजीनी शंघवी कलाणकेसवसुतपीतामर श्रीगणपतिनमः ॥

TRANSLATION.

(I) bow to Srî Ganesha. In Srî Iâthi the idol of Srî Ganapati was made on Sunday the 7th of the mouth of Kârtika Vadi in Samvata 1820, (by) Gohela Lâkhâji and Pitâmbar son of Sanghavi Kalyâna Kesava. (It bow to Srî Ganapati.)

१स्य २कृष्णार्पण ३दि, ४वि, ५स**, ६स्वरू.** L. 22,

XI.

Stone-Inscription found at the Museum at Wala in Kathiawad.

Dated Samuat 1828.

The small town of Walâ, which is situated near the ruins of ancient Valabhipur, is a chief town of a small principality of the same name about twenty-five miles north-west of Bhâvnagar. There is a museum of archeological collections where this inscription-stone is placed. It is a white marble-slab measuring 12 in. by 8 in., and contains five lines of Gujarâti in Devanâgari characters. It mentions the sinking and building of a *Vâo* in the reign of Gohil Visâji Bhâva-simhaji in the year Samvat 1828; A. D. 1772.

TRANSLITERATION.

- १: संवत १८२८ वर्षे वैंशाख शद (दि) २ द(दि)ने वा
- २ लाश्रीशुरजीं ऐ (बंधा)नी छे ते नान अंधा
- ३ रीमां भारोजी फरामजीपे बंधावी छे
- नारीश्रीशरते के राज्यश्रीसवस्ववी
- ५ शाभाई भावशंघजीनं छे श्रीरस्तु

TRANSLATION.

On the 2nd of Vaisakha Sudi (bright half) of the year Samvat, 1828 Vala Srî Suraji caused to be built a Vao in the andhari* through Bharaji Faramaji. Its ndlat is to the east. At this time Ravala Visabhai Bhavasinghaji is the king. May there be fortune.

XII.

Inscription in the temple of Gopanath of the time of Vijayasimhaji.

Dated Samvat 1876.

This inscription is cut on a plastered wall near the eastern gate. It is seen on the right hand just as we enter the gateway. It is written in Gujarâti characters and mentions the building of a loft in Samvat 1876; A. D. 1820, during the reign of Vijayasımhaji at Bhâvnagar, in whose territory the temple is situated, being about twelve miles south of Tâlâja, on the sea-coast.

Within the limits of the Village lands any place where there is a dense grove of trees is called andhāri.

[†] The long part, apart from the well, dug out for making steps to decend into is called a udlo.

TRANSLITERATION.

संबत् १८७६ नावर्षेचतरशुष १ नदाडामंडी श्रीगोपीनाथनी चणा विछे भमचारी ननजीभाई नुनामछे तेनाचणनार कडी आश्री नवानगरनाछे जेठातथाइडा राजावजेशागदीवानजी भा इएनाराजमां कीधीछे

TRANSLATION.

In Samvat 1876 on the 2nd of the month of Chaitra, during the reign of king Vajesinga Divânjibhâi (!) the *medi* (loɪt) of Śrī Gopanātha was caused to be built by Brahmachâri Nânjibhâi. The builders (masons) are Jethâ and Ruḍâ of Nawanagar.

THE SOLANKI DYNASTY.

I.

Stone-Inscription of the time of king Kumårapåla of Kerå lu near Bådamera in Mårwåd. Dated Samvat 1209.

Kerâdu, is a small village near Hâthamo under Bâdamera in Mârwâd. It contains ruins of many temples, buildings &c., in one of which this inscription was found cut into a stone of pillar. It is a white stone which appears to have suffered a great deal from weather as well as other causes, which makes the inscription difficult to decipher properly. The stone measures 17 ft. by 17 ft. and contains twenty lines and a half of Sayskrit composition in modern Devanâgari character, to the effect that on particular sacred days no life was to be taken under a penalty of fine to those belonging to the royal family and of capital punishment to others. This order was passed under the auspices of King Kumârpâla, who had but recently ascended the throne of Gujarâta. The date of the inscription is Sawyat 1209, A. D. 1153.

THANSLITERATION.

	संबत् १२०९माववाद १४ शनी अग्रेहश्री ।
₹	रमेश्वरज्ञमापतिवरलञ्चप्रौढप्रतापः
ą	भूपालश्रीमत्कुमारपालदेवविजयराज्येः
¥	श्रीकरणादौ समस्तमुद्राव्यापारान् परिषं
ų	संशीकिराटक्पलाटहदशिवाः महाराजश्रीआलण
Ę	देवःशिवरात्रिचतुर्द्दयां शुधिर्दः पापे यशोऽति
ঙ	बृद्धये प्राणिनामभयपदानमः । । । । । । । । । । । । । । । । । । ।
Z	कसमस्तप्रकृतीर्न् संबोध्यः अभयःथाशिकभय
3	यो पक्षयोः अष्टमीएकादशीचतुर्दशीः ह श्रेयोऽनत
ţο	रं एतासु तिथिषु नगरत्रयेऽपि जी(व)जाच्यातिकम्यजी
	वानां वर्धं कारयति करोति वासव्यापाः आचंद्रार्के याव
१२	त् केनापि न छोपनीयं अपरं पुरोहितार्थः सर्वेरपरैश्च ए
१३	षा अमारिरुदि: प्रमाणीकार्या ॥यः · · · · · · · · · · · · कालेन श्रीयते
٤¥	फर्छ ॥एप (त) स्यामयदानस्य क्षयं
	यदक्षिणा न तु विष्रसहस्रेभ्योः कोपि पापिष्ठतरो जी
	• ਐ .

- 🏿 १७ द्रम्मोस्ति 🤧 स्वहस्तोयं महाराजश्रीअह्हणदेवस्यः 🕶 🕶 महाराजपुत्रश्रीकेट्हण
- १८ देवमतमेत्त् ॥+महाराजपुत्रसाधिविग्रहिक ठ०खेलादिःयेनलि—
 - १९ खितमिवं ॥श्रीनद्रलपुर वासिप्राग्वाटवंशप्रभृतशुभंकराभिधानः श्रावकः तत्पुत्री क्षि
 - २० तितले धर्मतया विख्यातौ पूर्विगशास्त्रिगौ ताभ्यामातिकृपापरावाराभ्यां प्राणिनामभयदानशा
 - २१ सनं विश्वन्य करापितै(कारित)मिति।। छ।। उत्कीर्ण गजाइलेन

TRANSLATION.

To-day on Saturday the 14th of Maha Vadi (dark half) in the year Samvat 1209 during the victorious reign of Rajadhiraja Sriman Kumarpaladeva, who has conquered all kings by his great prowess consequent upon the grace of Sankara, the lord of Parvati when Sri Mahadeva was incharge of the signet and the seal &c. Sri Kîrâta, Lâta, Hada, got by the grace of God Mahârâja Sri Alanadeva on the sacred day of Sivaratri chuturdasi (the night being the favourite of Siva) (gave) security for the lives of animals for greatly increasing (his) fame having explained the rightfulness (of it) to all the Karbharies (ministers) on the 8th, 11th and the 14th of both the fortnights and then on those days in the three towns also he who kills or causes to be killed any animal disregarding the order should be put to death No one shall disobey the order till the sun and the moon endure. Then for futher good all others should follow this custom of respecting the lives (of animals) * * * fruits become extinct by lapse of time. (but) this gift of security of lives will never-become extinct This gift of security made by himself not even to a thousand Brâhmans * If a great sinner kill any animal he should be fined five drammas says. A person of a royal family (shall pay) one dramma. >> This (the sign of dagger) is the signature in Mahârâja Sri Âlauadeva's own hand* (His) son Mahârâja Sri Kelhaudeva is also of the same opinion. (His) son *. This is written by Thakar Khelâditya, the negotiator of peace and war. This edict of granting security (of lives) was caused to be promulgated by merciful Putiga and Saliga who were sons of Sravaka Subhankara who was born in the family of Pragavat and was an inhabitant of the city of Sri Nadrola and who were well-known throughout the world as religious. edict was engraved by Gajail.

II.

Stone-Inscription of the time of King Viradhaval at Delavada on Mount Abu.

Dated Samvat 1267.

This inscription is engraved on a piece of black marble, which is built up in a side-wall of a *Dharmaśâlâ* to the right of the temple of Śrî Âdinâtha at Delavâḍâ, a small town on mount Âbu. The face of the stone measures 39 ft. by 31 ft. and contains seventy-four verses in Saṇskṛit in forty-seven lines. The character is modern Devanâgari. The stone as well as the inscription appear to be carefully preserved. It mentions certain repairs and additions made to the temple of Âdinâtha by the two brothers and ministers of the kings of Aṇahilvâḍa, Vastupâla and Tejapâla. It also gives the genealogy of king Viraḍhavala who then ruled over a part of Gujarât, and who belonged to the Wâghelâ branch of the Solaṇki dynasty and whose father was the chief minister of Bhimadeo II., of Gujarât. It also gives the names of some six persons of the Parmâr dynasty of whom Krishṇarâja seems to be the contemporary of Viraḍhavala, and Yaśodhavala of Kumārapâla. There are again described the great works of public utility and charity caused to be done by the two Jain ministers. The date of the inscription is Saṃvat 1267; A. D. 1211.

TRANSLITERATION.

- १ ००।।वंदे सरस्वती देवी याति या कविमानसं नीयमाना निजेनेव यानमानसवासिना १ यः शांतिमानध्यक.
 (णः) मकोपे *शांतोऽपि दीतः स्मरिनग्रहाय निमीलिताक्षोऽपि समग्रदर्शी स वः शिवायास्त शि
- २ वातनूजः २ अणिहिपुरमस्ति स्वस्तिपात्रं प्रजानामजरिजद्रमुदुल्यैः पाल्यमानं चुलुक्यैः चिरमीतरमणीनां यत्रवकृत्(क्रें)दुमंदीकृत इव सितपक्षप्रक्षयेण्यंघकारः ३ तत्र प्राग्वाटान्वयमुकुटं कुटजप्रसून
- ३ विश्वदयशाः दानविनिर्जितकस्पद्धमसंडश्रंडपः समभूत ४ चंडप्रसादसंज्ञः स्वकुलप्रासादहेमदंडोऽस्य प्रसर-क्वीतिपताकः पुण्यविपाकेन सुनुरमृत् ५ अग्रत्मगुणैः किरणैरिव सोमो रोमोद्गमं सतां क्र
- ४ र्वन् उदगादगाधमध्यादुग्धोदाधिबांघवात्तरमात् ६ तस्मादजिनि जिनाधिनाथमांक विभागः स्वमनि सश्वरा-जः तस्यासीद्दयिततमा कुमारदेवी देवीव त्रिपुररिपोः कुमारमाता ७ तयोः प्रथमपु
- ५ त्रोऽभून्मत्रीलूणिगसंज्ञया दैवादवाप बालोपि सालोक्यं वासवेन सः ८ पूर्वमेव सचिवः सकोविदैर्गण्यते सम् गुणवत्सु लुगिनः यस्य निस्तुपमतेर्मनीषयाधिक्कतेन धिषणस्य धीरापि ९ श्रीम्छदेवश्रि
- ६ तमिश्चिदेवस्तस्यानुजो मंत्रिमतिश्चिक्षोऽभूत् बम्ब यस्यान्यधनांगनासु लुब्धा न बुद्धिः शमलब्धबुद्धेः १० धर्मविधाने भुवनिष्ठ्ञ(छि)द्रपिधाने विभिन्नसंधाने सृधिकृता न हि सृष्टः प्रतिमल्लो मल्लदेव
- स्य ११ नीलनीरदकदम्यकमुक्तश्वेतकेतुकिरणोद्धरणेन मह्वदेवयशसा गलहस्तो हस्तिमह्वदशनांशुपु दत्तः १२ तस्यानुको विजयते विजितेद्वियस्य सारस्वतामृतकृतान्त्रुतक्ष्वंशः श्रीवस्तु
- पाल इति भालतल्लिश्वतानि दौष्याक्षराणि सुकृती कृतीनां विलुपन् १३ विरचयाति वस्तुपालश्चुलुक्यस-चिवेषु कविषु च प्रवरः न कदाचिदर्थहरणं श्रीकरणे काव्यकरणे या १४ तेजःपालः पालितस्वा

Probably the word is प्रकाष्ट्र

- ९ मितेजःपुंजः सीयं राजते मंत्रिराजः दुर्वृत्तानां शंकनीयः कनीयानस्य भ्राता विश्वविभ्रांतकीर्त्तिः १५ तेजःपा-स्रस्य विष्णोश्च कः स्वरूपं निरुपयेत् स्थितं जगत्रयीसूत्रं यदीयोदरकंदरे १६ जाल्लूमाकुंसाकु
- वनदेवीसोहगावयनुकाख्याः पदमलदेवी चैर्या कमादिमाः सप्त सौदर्यः १७ एतेऽश्वराजपुत्रा दशरथपुत्रास्त
 एव चन्वारः किल पुनरवनावेकोदरवासलोमेन १८ अनुजन्मना समेतस्तेजःपा
- ११ लेन वस्तुपालोयं मदयति कस्य न इदयं मधुमासो माधवेनेव १९ पंधानमेको न कदापिगच्छोदिति स्मृति-प्रोक्तमिव स्मरतौ सहोदरौ दुर्धरमोहचौरे संभूय धर्म्माध्वनि तौ प्रवृत्तौ २० इदं सदा सो
- १२ दरयोहदेतु युगं युगव्यायतदोर्युगश्री(श्रि)युगे चतुर्येप्यतृणेन येन कृतं कृतस्यागमनं युगस्य २१ मुक्तामयं शरीरं सोदरयोः सुचिरमेतयोरस्तु मुक्तामयं किल महीवलयमिदं माति यक्कीर्त्या २२ पा
- १३ कोत्पत्तिनिमित्ती यद्यपि पाणी तयोस्तथाप्येकः वामीभूदनयोनं तु सोदरयोः कोश्रीपदक्षिणयोः ।२३ धर्म-स्थानांकितामृत्तीं सर्वतः कुर्वतामुना दत्तः पादो वलाह्यभुयुगलेन कलेगेले २४ इतश्चौलुन्यवीरा
- १४ णां वंशे शास्त्राविशेषकः अर्णोराज इति ख्यातो जातस्तेजोमयः पुमान् २५ तस्मादनंतरमनंतरितप्रतापःप्रा-पक्षिति क्षतिरेपुर्ळवणप्रसादः स्वर्गापगाजळवळक्षितशंखशुभा बभ्राम यस्य ळवणाव्धिमतीत्य कीर्तिः
- १५ २६सुतस्तरमादासीद्दशरथककुरस्थमतिकृतेः प्रतिक्ष्मापालानां कविलतवलो वीरधवलः यशःपूरे यस्य प्रसर-ति रतिक्रांतमनसामसाध्वीनां भग्नाऽभिसरणकलायां कुशलता २७ चौलुक्यः सुकृती स वीरधवलः क
- १६ र्णेजपानां जपं यः कर्णेषि चकार न प्ररूपतामुद्दिय्य यो मंत्रिणे। आभ्यामभ्युदयातिरेककचिरं राज्यं स्वभ-र्षुः कृतं बाहानां निवहा घटाः करटिनां बद्धाश्च सीधाङ्गणे २८ तेन मंत्रीद्वयेनायं जानेजानूपवर्ति-ना व(प्र)
- .१७ भुर्भुजद्वयेनेव सुखमाश्विष्यति श्रियं २९ इतश्च गौरीवरस्व(ध)सुरभूधरससंभवोयमस्त्यर्बुदः ककुदमद्रिकदं-बकस्य मंदाकिनीं घनजटे दधदुत्तमांगे यः श्याळकः शशिभुतोऽभिनयं करोति ३० क्कचिदित्त विदर्रतीर्वी
- १८ क्यमाणस्य रामाः प्रसरति रतिरंतर्मोक्षमाकांक्षतोऽपि कचन मुनिभिरव्यो पश्यतस्तीर्थवीर्या भवति भविन रक्ताधीरधीरात्मनोऽपि ३१ श्रेयःश्रेष्ठवशिष्ठद्योमञ्जू(हु)तमुक्कुंबान्मृतंजात्मजप्रयोताधिकदेहदीधितिभ
- १९ रः कोप्याविरासीत्ररः तं मत्या परमारणैकरासिकं स व्याजहार श्वेतराधारः परमार इत्यजनि तजामाथ त-स्यान्वयः ३२ श्रीधूमराजः प्रथमं वभूव भूवासवस्तत्र नरेंद्रवंशे भूमीभृतो यः कृतवानिभन्नान् र(प) क्षद्वयोच्छे
- २० दनवेदनासु ३३ घंषुकधुवभटादयस्ततस्ते रिपुद्धिपघटाजितोभवत् यत्कुलेऽजानि जगन्मनोरमो रामदेव इति कामदेवजित् ३४ रोदःकदरवर्तिकीर्तिलद्दरीलिप्तामृतांशुबुतेरप्रयुग्नवयोयशोधवलः १
- २१ त्यासीत्तन् जस्ततः यश्रौलुक्यकुमारपालन् प्रतिप्रत्यिभायागतं मात्रासन्तसमं च मालवपति ब्रह्मालमान्धवान् ३५ शत्रुश्रेणीगलविदलनोशिद्रानिस्रवाधारो धारावर्षःसमजनि सुतस्तस्य विश्वप्रशस्यः ॥ कोधाकातेप्प
- २२ धनवसुधानिश्चले यत्र जाताश्च्योतन्नेत्रोत्पलजलकणाः कौंकणाधीश्चपल्यः ६६ सीयं पुनर्दाश्चरियः पृथिव्या-मव्यादतीजाः रुपुटमुज्जगाम मारीचवैरादिवयोऽधुनापि (स्व)राज्यमव्ययमितः करोति ३७ सामं
- २३ तसिहसमितिश्वितिविश्वतौजाः श्रीगुर्जरश्चितिपरश्चणदश्चिणाभिः प्रल्हादनस्तदनुषो दनुर्जोत्तमारिचारित्रमत्र पुनरुज्वस्त्रयाचकार ३८ देवीसरोजासनसंभवा किं कामप्रदा किं सुरसौरभेयी प्रव्हादनाकारथरा
- २४ धरायामायातवत्येष न निश्चयो मे ३९ धारावर्षमुतीयं जयति श्रीसामसिंहदेवो यः पितृतः शीर्यं विद्यां पितृज्य-काह्यानमुभयतो जयहे ४० मुक्ता(का)विप्रकरानरातिनिकरान्नित्वं तास्कचन प्रापस्तप्रति सोम
- २५ सिंहतृपतिः सीमप्रकाशं यशः येनोवीतलमुज्बलं रचयता प्युजाम्यतामीर्ण्येया सर्वेशमित विद्विषां न हि मु-खान्मालिन्यमुन्मृलितं ४१ वसुदेवस्येव मुतः श्रीकृष्नः कृष्नराजदेवीस्य मात्राधिकप्रतापा यशोदः

- २६ (द)वासंभितो जयति ४२ इतम् अन्वयेन विनयेन विद्यस विक्रमेण सुकृतकमेण च कारि कोऽपि न पु-मानुपैति मवस्तुपालसदृशो दृशोः प्रथि ॥४३ दयिताललितादेवी सुनयमती तनयमापसचिवेंद्रात् ना-मा जयंत
- २७ सिहं जयंतर्मिद्राप्तु(स्पु)लेमपुत्रीय ॥४४॥यः कैशवे विनयवैरिणि देवधार्यं घत्ते नयं रचि(तदा)यगणोदयं च सोयं मनोभवपराभवजागरूकरूपो न कंमनसि चुंबति वैत्रसिंहः ॥४५ श्रीवस्तुपालपुत्रः कल्पा-युरयं जयं
- २८ ताँसहोस्तु कामादिधकं रूपं निरूप्यते यस्य दानं च॥४६॥अतिजः धालः सचिवश्चिरमस्तु तेजस्वी येन जना निश्चिताश्चितामणिनेश नंदति ॥४७ यद्याणक्यामरगुद्दमस्द्वयाधिशुक्रादिकानां प्रागुत्पाद्यं व्यधित सु-
- २९ मंत्रिणां युद्धिधाम्रां । चिक्रभ्यासः स स्वलु विधिना नृतमेनं विधातं तेषःपालः कथमितरथा धिस्य(तां प्रा-प्य)प तेषु ॥४८॥अस्तिस्वस्तिनिकेतनं तनुभ्र(मृ)तां श्रीवस्तुपालानुजस्तेषःपाल इति स्थितं बलिकृता-मुर्वतिले पालयन् ।आत्मीयं ब
- ३० हु मन्यते नहि गुणमानं च कामदिकिश्वाणस्योपि चमत्करोति न हू(ह)दि। प्रेक्षास्पदं प्रेक्य यं ॥४९॥इतश्च महंशीतेजःपालस्य पत्त्याः श्रीअनुपदेव्या पितृवंदावर्णनं ॥भाग्वाटान्वयमंबनैकमुकुटः श्रीसांद्रचंद्रावित-वास्तव्यस्त
- ३१ वनीयकीतिलहरीप्रश्वालितश्यातलः श्रीयांगाभिषया मुदीरवनि यद्त्रत्नानुरागादभूत्॥ को नासप्रमदो नदो-िलतिश्चरा नोद्भृतरोमा पुमान् ॥५० अनुस्ततसञ्जनसरणिषरणिगनामा वभूव तत्तनयः ॥श्वप्रवल्जे) यथा
- ३२ गुणिना हारेणेव स्थितं येन ॥५१॥त्रिभुवनदेवी तस्य त्रिभुवनविख्यातशीलसंपन्ना दयिताभूदनयोः पुनरंग देशा मनस्त्रेकं ॥५२॥अनुपमदेवी देवीसाक्षादाक्षायणीव बीलेन तहुहिता सा दत्ताश्रीतेजःपाल
- ११ पत्येमृत् ॥५३॥ इयमनुषमदेवी। दिन्यत्रतप्रसृनत्रतिरजनितेजःपालमंत्रीशपत्नी नयविनयविवेकैनित्यदाक्षिण्य-भामप्रमुखगुणगणेंदुशोतिताशेषगोत्रा ५४ लावण्यसिहस्तनयस्तयोरयं रयं जयेतें
- ३४ द्रियदुष्टवाजिनां लज्ध्वापि मीनध्वजमंगलं वयः प्रयाति धर्मैकविधायिना धु(ध्व)ना ५५ भीतेजपालतनय-स्य गुणानमुष्यश्रीलुणसिंहकृतिनः कति न स्तुवंति श्रीवंधनोद्धुरतरैरापि यैः समंताद्वद्वीमतानिजगति क्षि
- ३५ यतेरम कीर्तिः ५६ गुणधननिधानकलयः प्रगटोयमसेवितश्च खलसर्जैः उपचयमयते सततं सुजनैरपजीव्य-मानोऽपि ५७ मलुदेवसचिवस्य नंदनः पूर्णसिंह इति ल्लीलुकासुतः तस्य नंदति सुतोऽयमल्हण
- ३६ देविभूः सुक्रतवेशपेयदः ५८ अभ्दनुषमा पत्नी तेजःपालस्य मंत्रिणः लावर्ण्यासहनामायमायुष्मानेतयोः सुतः ॥५९॥ तेजःपालेन पुण्यार्थं तयोः पुत्रकलत्रयोः हस्यै श्रीनोमिनायस्य तेने तेनेदमर्बुदे ६०
- ३७ तेजःपाल इति क्षितींदुसचिवः शंखोज्वलाभिः शिलाभेणीभिः स्फुरदिंदुकुंदरुचिरं नेमिप्रमोमैदिरं ॥ उ-वैभेडपमत्र राजति जिनावासद्विपंचाशतं तत्पासेषु बलानकं च पुरतो निष्पादयामासिवान् ६१ श्रीमञ्जब
- १८ पसंभवः समभवश्रंदग्रतादस्ततः सोमस्तत्प्रभवोऽश्वराज इति तत्पुत्राः पवित्राश्चयाः श्रीमृद्धूणिगमृद्धदेवतन याः श्रीवस्तुपाळद्वयास्तेजःपाळसमन्विता जिनमतारामा नमजीरदाः ६२ श्रीमंत्रीश्वरवस्तुपाळतन्यःश्रीजै
- ३९ त्रसिद्यद्कयस्तेजःपालसुतश्च विश्रुतमित्रिर्लावण्यसिद्याभिभः एतेषांदशपुत्रयः(१) करिवरस्कंषाधिवद्याश्चिरं राज्येत जिनदर्शनायेगतयो दिङ्नायकानामिव ६३ मुद्धानामिव पृष्ठतः करिदशुःखंष्टप्रतिष्ठाजुषा तन्म्निविम
- ४० लाग्मलनकमताः कांतासमेता दश चौलुक्यक्षितिपालवीरधवलस्याद्वैतवाहुः सुधीस्तेषःपाल इति व्यथापय-दयं भीवस्तुपालानुनः ६४ तेजःपालः सकलतः जायाजीव्यस्य वस्तुपालस्य सविधे विभाति सफलः

- ४१ सरोबरखेष सहकारः ६५ तेन आतृयुगेन या प्रतिपुरधामाध्यशैलस्थले वापीक्पनिपानकाननसरःप्रासादसञा-है, दिका ॥धर्मरथानपरंपरातिरुचिरा चक्रेथ जीणोंद्धता व्याख्यातं किम् शक्यते यदि परं सा मेदि
- ४२ निमोदनी ६६ शंभोः श्वासंगतागतानि गणयेषः सन्मतियोऽधवा नेत्रोत्मीलनमीलनानिकलयेन्माकेडनाम्नो मुनेः संख्याद्यं हृदि चंद्रसीधुकणिकामेतामपेतापरव्यापारः शुभसत्रकीर्त्तनतितं सोप्यण्जिहीते न हि
- ४३ ६७ सदामनर्ततां कीर्त्तिरश्वराजस्य शाक्षती ॥सुकर्त्रुमुपकर्त्तुं च जानीते यस्य संततिः ६८ आसीश्वंडपमंडिता-न्ययगुदः संशुद्धगुद्धिः साधुर्देममतिश्चचारुचरितः श्रीशांति
- ४४ स्रिस्ततोप्याचंद्रामरस्रिणः समुदयश्चद्रांसुदीप्तसुतिः ६९ श्रीजैनशासनवनीनवनीरवाहः श्रीमांस्ततो · · · · · · · · · · · · मेरमुनीश्वरोयं ७० हाना
- ४५ मृतक्षमापात्रं ।सूरिरस्त्युदयप्रभः मौक्तिकानीव सूक्तानि ।भाति यत्प्रतिमांबुधेः। ७२ एतद्धर्मस्थानं धर्मास्थान नस्य तस्य यः कर्त्ता ताबदद्वयामिदमुदियादुदयत्ययमर्जुदो यावत् (७२)श्रीसोमेश्वरदेवश्चुलुक्यनरदेव-सेवितपाद

TRANSLATION.

I bow to the Goddess Sarasvati, who settles herself in the mind of poets being led there as it were by the swans, her vehicles, living on the Manasarovara.

May Ganapati, the son of Pârvatî, be for your welfare—Ganapati who though calm is red in anger (probably red at his trunk-like face), who though quiet is kindled in chastising Kâma (or in curbing passions) and who is the seer of everything though his eyes are closed.

There is Auahilapurapatana, a happy place for its subjects to live in, protected by the Chulukyas who are like the Raghus conquerors of Ajara (?), a place where even at the end of the bright fortnight darkness is as it were diminished for a long time by the moon-like faces of beautiful women.

In this city there flourished Chandapa who was like a crest-jewel of the Prâgvâța family, whose fame was pure as the flowers of *Kutaja*, and who surpassed the kalpa-tree in gifts.

He had a son by name Chandaprasada, a fruit of his meritorious deeds, who was like a golden pillar to his palace-like family and whose banner of fame was ever flowing.

From him who was like the milky-ocean was born du who by his merits made erect the hairs on the body of the good as by its rays the moon produced from the milky-ocean.

L. 23.

From him was born Saśvaraja bearing in his mind a great devotion for the worship of Jineśvara. He had a beloved wife in Kumardevi who was like Parvati the wife of God Siva and the mother of Kartavîrya-swami.

Sasvarāja and Kumāradevi had for their first-born son Luniga, who was a minister and who went to the region of Indra (died) in his youth by the decree of fate.

The learned place this minister Luniga foremost among the meritorious.

He with his clear understanding and wisdom surpassed even the intellect of Brihaspati.

His younger brother was Mallideva* a dependant of Malladeva* and who was the best of the ministers. His mind was so contented that it was never attracted by the wives or wealth of other persons.

No mortal the creator ever formed who can vie with Malladeva in observing duties, in veiling the faults of others and in bringing about a reconciliation of the separated (or of the quarrelled).

The fame of Malladeva while uplifting the rays of the moon let fall from collections of black clouds made friendship as it were with the rays of the tusks of powerful elephants.

Victory to Vastupâla, who was younger brother of Malladeva the master of his senses, who meritorious as he was brought on a wonderful shower of pleasures by (his versatality in) the nectar-like Sârasvata, and hence defaced the letters of pain mark on the forehead of the good.

Vastupâla, the best of the ministers and poets of the Chaulukyas, never accepts nor takes any money either for his poems or for increasing his wealth.

His younger brother Tejapâla, who has kept up the large quantity of the splendour or prowess of his master, who was ever dreaded by bad people and whose fame has spread all round the world, stands glorious as the chief of ministers.

Who can describe the personality of Tejapâla as also of Vishuu; because both of them have in their stomach-like cave and cave-like stomach the governing springs (reins) of the three worlds.

He had seven wives (married) in the following order Jâlû, Mâku, Sâku, Vanadevi, Sohagû, Vayajukû, and Padamaladevi.

Certainly these four sons of Aśvarâja are the four sons of Daśaratha descended to this world, as if attracted by a desire to live in the same womb.

Probably the words are reversed. Instead of Malladeva we must read Mallideva and vice versa.

Whose heart is not delighted by this Vastupala joined with Tejapala his younger brother as by the month of Chaitra followed by Vaisakha.?

Both the brothers used to traverse, always together, the path of religion which is infested with irresistible theires in the form of Moha (delusion), as if ever keeping in mind the Smriti-text that "a man shall never go alone on the road."

May the eternal fame of the two brothers, whose arms are as long as a yoga last for yugas. For they, who have discharged all the three debts, have indeed brought krit-yuga even in this fourth (kali) age.

May the bodies of the two brothers always remain free from disease, whose fame has made the expansive earth white as pearls.

Though these brothers had hands capable of producing and preparing every-thing, none of them (the hands), always Dakshina (right; well-meant), became Vāma (left; ill-intentioned).

These two brothers have crushed under their foot the throat of the Kaliyuga by dotting the earth everywhere with religious places.

Then came the famous Arnorâja who multiplied the branches of the brave Chaulukya family and who was full of splendour.

Immediately after him was Lavanaprasada, whose splendour was never tarnished, who commanded the whole earth, who destroyed his enemies, and whose tame white as the conchshell whitened by the waters of the celestial Ganges spread far beyond the Lavanabdhi.

Lavanaprasada who was like Dasaratha and Kakutstha, had (a son) Viradhavala destroyer of the armies of his enemies. In the flowing flood of his fame was frustrated the skill in secretly going to their lovers of unchaste women whose mind was tired of love-sports.

Viradhavala born of the Chulukya family, whose actions were good, did not give ear to those scandal-mongers who spoke evil of (his) two ministers (Vastupâla and Tejapâla). These ministers in their turn made the reign of their king very brilliant by reason of great prosperity by counting a large number of horses and elephants in the compound of the royal palace.

King Viradhavala was made as it were to embrace with pleasure Lakshmi with his two hands in the form of the ministers, both Janupavarti (hanging up to the knees; ever sitting at his feet).

Description of Mount Âbu:-Arbuda (mount Âbu) begotten by the father-inlaw of the lord of Pârvati, is the best of the group of mountains. He, the brother-in-law (of God Siva) imitates as it were God Siva as he bears the celestial Ganges on his top with the Jata of clouds.

Here at times on seeing the women sporting, there enters in the mind of persons desirons of emancipation a desire for enjoyment. Here it is on the contrary that even men of an unsteady mind on seeing the ways to the place of pilgrimages resorted to (solicited) by the Munis sometimes experience dispassion for the world.

Description of the Paramâras:—A man came out of the sacrificial alter of the great Sri Vasishtha best in confering good, whose body was more brilliant (beautiful) than Mârtanda, and whom Vasishtha Muni the upholder of the Vedas called Paramâra, as he was intent on killing (his) foes. From that time his family was called by that name.

Dhumaraja who was Indra of earth was the first king of the Paramara family, for he made the Bhumibritah (mountains and kings) feel the pangs of having both their Pakshas (wings; parties) lopped off.

Of Dhunaraja there were Dhandhuka, Dhruvabhata and others who conquered hordes of elephants of their enemies. Ramadeva, who was the joy of the world and who surpassed Kamadeva was, then, born in their family.

From him who besmeared the moon with waves of his fame, which spread through the caves both of heaven and earth, was born Yasodhavala never subject to Pradyumna (Kâma). He (Yasodhavala) captured Ballâla, lord of Mâlavadesa, who had become an enemy of the Chaulukya king Kumârapâla and whose strength was equal to his.

Yaśodhavala had a son Dharavarsha known throughout the world, the sharp edge of whose sword was ever at work in cutting the throats of the hordes of his enemies. Even at the mere anger of him who was as steady as land without wealth (?), the wives of the kings of the Konkanadeśa shed tears from their lotus-like eyes.

It appears as if Râma, son of Dasaratha whose strength was never baffled, has returned into this world, which he of a steady intellect still continues to rule as if to satisfy his enimosity with the demon Maricha.

His younger brother Pralhâdana again brought into light the deeds of Vishnu the greatest enemy of Daityas by frequently giving protection to the king of Gurjaradeśa whose strength was destroyed on this earth in war with Samantasihna.

I am not certain whether Sarasvati daughter of Brahmâ or the milk-cow Kâmadughâ of the Gods, giver of all wished-for-things was born on this earth in the form of Pralhâdan.

Glorious is Somasinha son of Dharavarsha who received bravery from his father, learning from his uncle, and charity from both.

King Somasinha acquired unparalled fame bright as the moon by delivering Bråhmanas from hordes of enemies, having conquered them. He, who though brightened the face of the earth by such fame, did not clear of dirt the faces of his enemies who raised up their heads out of jealousy.

Victory to king Shri-Krishnadeva, son of Somasinha, who is very powerful and who possesses fame and mercy (यज्ञेदयासंश्रित:) and hence who is like Krishna son of Vasudeva who was protected by Yaśoda (यज्ञेदयासंश्रित:).

(Here begins the description of the family of Vastupala).

(Description of Vastupala)—No one comes within my ken who is equal to Vastupala in point of family, politeness, learning, glory, and order of merit.

As Indrâni got a son named Jayanta by Indra, so the beloved Lalitâdevi of good morals got a son named Jayantasinha by the great minister Vastupâla.

He (Jayantasinha) showed great virtues fit for Gods even at an early age, which is an enemy of modesty, and brought into light the merits of (his) brothers. Whose heart is not pleased by Jayantasinha of a form surpassing in beauty the body of Kâmadeva.

May this Jayantasinha son of Vastupala live for a kalpa—he whose beauty excels that of Cupid and whose gifts are beyond desires.

May the minister Tejapâla have his power last long—he by whom as by a Chintâmani all people are freed from anxiety.

The study which God Brahmâ made in creating Chânakya, Brihaspati, Marudvyadhi, Sukra and other talented ministers, was expended by Him in creating this Tejapâla. For otherwise how can He make Tejapâla surpass them all. (?)

Tejapâla, the younger brother of Vastupâla an abode of welfare of all embodied beings, observes on this earth the conduct of king Bali.

Indeed on seeing him, the treasure of all worth, Kâmandaki refrains from making much of his many merits and Chânakya ceases to wonder at his own ability.

(Here begins the description of the family of the father of Anupadevi, wife of Tejapála).

There flourished Modi Ganga, who was the crown of the Pragvata family, who lived at the Chandravatinagari; and who washed the face of the earth with

the waves of his praiseworthy fame. Who would not nod his head or have his hair erect on learning her devotion to Vritas (observances, austerities).

She had a son Dharaniga who followed the path of good men, who *Guni* (virtuous) as he was, stood properly in his place as a garland *guni* (tied by a thread) as it does the same.

He had a wife Tribhuvanadevi whose virtue was known in the three worlds and who was very dear to him. Their bodies only were separate, but their mind was one.

They married their daughter Anupamadevi to Tejapâla—Anupamadevi who a Goddess incarnate was like Pârvati in her conduct.

This Anupamadevi, wife of the great minister Tejapâla, a night to celestial flowers in the form of observances and an eternal abode of liberality brightened her whole family like the moon, by her good morals, modesty, politeness, propriety and wisdom.

This Lâvanyasinha son of these two, subdued the rash speed of the wicked-horses of his senses; and behaved on the path of morality though in the age most open to Kâmadeva.

Who do not praise the good virtues of fortunate Lunasinha son of Tejapâla; virtues which though liable to be vitiated by great wealth, are by this intelligent scion held up to cherish his fame. (?)

The famous Lunasinha, who is like a jar full of the treasure of virtues, and who is not served by vile serpent-like persons, is growing daily in spite of his being enjoyed by good men.

The minister Malladeva had a son Pürnasinha, who had a son Pethada of beautiful form born of Alhanadevi.

The minister Tejapâla had a wife Anupamâ. Of them was born a son Lâvanyasinha of long life.

For religious merits of his son and his wife, Tejapâla caused to be made this temple of Neminâtha on Mount Arbudâchala.

Tejapâla, the best minister on this earth, caused to be built with stones, white as couch-shells, this temple of Neminâtha with high *Mandapa*, beautiful as the shining moon or the blooming *Kunda*. He erceted near it 52 houses of Jinas on its sides and a Balânaka in the front.

The wealthy Chandapa had a son Chandaprasâda, whose son was Soma. He had a son Aśwarâja whose sons Śriman Lûniga, Malladeva, Vastupâla and Tejapâla were of holy hearts, were devoted to the Jaina-doctrines and had humbled even the clouds by the force of their religious merits.

Jaitrasinha, son of Vastupâla, the greatest of the ministers, and Lavargusinha of great intelligence, son of Tejapâla, were like the presiding deities of the quarters. Their ten daughters appear beautiful when they daily go to worship Jinesvara, riding on elephants.

Tejapâla the younger brother of Vastupâla, who was like an unparalled arm of the Solanki king Viradhavala and who had a good intellect, afterwards cause'l to be erected ten stone statues of the daughters (?) on elephants in this Jaina temple.

Tejapâla with his wife appears in the palace of Vastupâla, the support of his wife, as a mango-tree with fruits standing near a lake.

Who can describe the numerous fine places such as Vapis, wells, reservoirs of water, groves of trees, tanks, temples, places for alms-giving which were erected by these two brothers in all villages, in all cities, on all roads and mountains, as also the places which being old were repaired by them which made the earth delightful.

A man of good intelligence, giving up all other work can reckon the inspirations and expirations of Sankara, or twinklings of the eyes of Mârkandeya Muni, or may try to reckon the particles of nectar oozing from the moon; but none can reckon the large number of praises bestowed at the good places of almsgiving.

May the eternal fame of Asvaraja always spread far and wide, whose progeny know how to do good deeds and to oblige others.

The wise Hemamati of pure heart was a preceptor of the splendid family of Chandapa. After him was Santisuri of good deeds; then came Chandramarasuri whose beauty was as brilliant as the rays of the rising moon.

After him came * * * who was like a new cloud in the garden of the splendid Jaina Edicts. * * Of him was this Merû Munisvara of high learning, famous and * *

Udayaprabhasuri is the treasure of the nectar of knowledge and of forbearance. His ocean-like intellect gives out pearl-like beautiful precepts.

May this religious place and the person, who caused it to be made, flourish as long as Mount Arbudâchala.

This fine eulogy of the religious place was composed by Sri Someśvaradeva whose feet are worshipped by the Chaülukya kings.

May this eulogy of the family of Vastupâla be beneficent and splendid in the Arbudâchala by the favour of Sri Neminâtha and Ambikâ. This eulogy was engraved by Kadva son of Gajadhara Kanhada.

On Wednesday the 10th of Falaguna Vadi (dark half) of the year 1267 of the Vikrama Samvata

III.

Stone-Inscription of the time of King Kumdrapdla in the temple of Bhûtandtha at Junagadh. Dated Vallabhi Samvat 850.

This inscription is cut into a hard black stone measuring on its surface 20 ft. by 12 ft. It is at present kept in the Siva temple of Bhûtnâtha built by Mr. Nrisinhaprasâd Hariprasâd, a respectable Nâgar Brâhmaga of Junâgadh. It has nothing to do with the building of the temple. But it relates to the building of two Siva temples and a grant of a village for their maintenance by the wife of Dhavala probably Yasodhavala mentioned in the preceeding inscription, a minister of king Kumarapala. The inscription, however, has lost a great part of its contents in the middle, where the letters have been entirely defaced. There are in all thirty-four lines of Sanskrit written in modern Devanagari characters. The dates given therein are interesting as they mention two different eras, viz: the Valabhi and the Sinha. The year of the former era is 850 which corresponds to year 60 of the latter, both of which correspond to the year 1169 of the Christian era.

TRANSLITERATION.

ŧ	उँखरितजयोभ्युदयश्रा।अजेषुणा त्रिश्लेन कंदर्पत्रिपुराधकान् योवधीत् सोध्वरध्वंसी धनैशी
	न्यैषिनोतु (वः) ॥१ प्राक् श्रीमत्यणहिलुपाटकपुरे श्रीमूलराजः प्रभुश्रीलुक्योदयकृद्वभूव तृ
₹	पतिश्रामु कर्णीस्माज्जयासं
	हदेवनुपतिः स्वश्रक्रभीपतिः
۹	स्तरमाः
ŧ	भ्वजः मः दिसान् ॥३ थात्र्यामेवंविधेकाले शिवा
	स्रयविः भारतारा भारतारा स्थाप्यते च वः॥४॥श्रीमदानंदनगरे
	यः । । । । । । । । । । । । । । । । । । ।
	नैप्रांस् भारतस्य
	चमः पता यस्यां
	राधुःः ••••••••••••••रिवसाजणिः॥८॥तस्या(स्मात्) सोमदेवोभू
	त् पुत्रदेवः १ ९।।निजानुजानथामृष्यतात
	राणिः •••••••••••••••••• त्रिणा॥१०॥थहैवदक्षिणादेशे पित्रा
ŧ٧	मः • • • • • • • • • • • • • • • • ।। ११॥ श्रीसोमेशः सोमदेनो दे

१५	वन्नीरः 🕶 •••••••••••••••। १२॥प्रौदावस्य ह
१६	दामितः हारा १११ ।। प्रापितमञ्जाहिल्ल्या वकपुरे धारा
	पुरीसुंदरे प्र
	ख्यातमेधातिधः ''''''''''देपत्ये प्रवम्वतः प्रियत
१९	मेप्रापाः • • • • • • • • • • • • • • मूर्तिपूर्णावनीः कोष्टागारीनयो
	गपंचकामिः पर्पारा पर्पारा पर्पारा का सिःकल्मषाकेतुका ॥१५॥
२१	भौक्यारिः *** । । । । । । । । । । । । । । । । ।
२२	देशे दशे ' एण्याकळायत् १७
	अत्युद्धविः विशोपकद्वयं ॥१८॥धामा
	· 'पद्यां · · · · · · · · · · · · · · · · · कुमानां कृता स्थिति: १९
	निर्माय '''''''' ''''''''''''''''''''नंदनः स्वयमाप्यते ॥२०॥
	····च्वल्रयः················ग्रिलाग्रामं देवयोरनयोरदात् ॥२१
२७	··· प्रतिष्ठिः · · · · · · · · · · · · · यातं प्रमुषयोगयुक् ॥२२॥
	नियेविताः • • • • • • • • • • • • • • • • ।। २३।। प्रासा
२९	दद्विजःयमूब धुवं ॥२४॥र्थाद्विकम
	संबदंतर पर विषेत्र संबदंतर स्थापन स्यापन स्थापन स्यापन स्थापन स्यापन स्थापन स्थापन स्थापन स्थापन स्थापन स्थापन स्थापन स्थापन स्य
	••••••••••••••••••••••••मर्शास्त मितां ॥२५॥
	शकतोमगलं माश्री।।
₹₹	वलमीकीकाकेन समुत्कीर्णा सूत्रधारस्य सूनुना॥२६॥
₹४	बलभीसंबत्८५०श्रीासंहसंबत्६०वर्षेस्त्र०आलादित्यसुतकीकाकेनोस्कीर्णा ॥ ॥

TRANSLATION.

May there be welfare and prosperity. May that Sankara, who killed Kâmadeva, Tripûrâsura, and Andhakasura with arrows like Vishuu, and a tridant; and who interrupted the yajna of (Daksha Prajâpati) satisfy you with wealth and food.

Once there flourished at Anahilpura king Mulraja who made prosperous the Chaulukya dynasty. (Then came) the two kings, Bhima, the lord of the earth and the king Karna. From him was the king Jayasinhadeva. * * * His son was Kumarpala, who was like the lord of Lakshmi incarnate.

After this the inscription is much defaced and it is impossible to make it out properly, but from what can be read it appears to the following effect:—

He built a Sivâlaya at Ânandanagar (Vadanagar). There was a mînister named Dhavala, who was like Medhâtithi Rishi and who was an inhabitant of the splendid Anahilapurapâtana, which was like Dhârâpuri. He had two children who were very dear to him. Their mother was innocent. She built two temples and made a gift of a village for (the maintenance of the two) gods (therein), in the Vallabhi year 850 and Sinha year 60.

This inscription was engraved by Kikâka son of Sutradhâra Âlâditya an inhabitant of Vallabhi,

L. 24.

IV.

Stone-Inscription in the temple of Bhadrakâli at Prabhâs Pâtana of the time of King Kumarapâla. Dated Valabhi Samvat 850.

Prabhâsapâṭaṇa, also called Somanâthapâṭaṇa on account of the celebrated temple of Somanâtha, is a small town under Junâgadh on the sonth-west coast of Kâthiâvâd. There is a temple dedicated to the goddess Bhadrakâli in this town, in which this stone is to be found to the right of the entrance-door. It is a large black stone measuring 28 in. by 18 in. on its surface, and has fifty-four closely cut lines. The lower part of the stone has crumbled down and has destroyed a part of the inscription. The letters are not deep cut, and this makes it a difficult task to get a good copy of it. It mentions the building and repairing of several temples of Siva and Ambikâ as well as the digging of a Vão, and grants of lands to learned Brâhmaṇas by king Kumârapâla through the influence of his religious preceptor Bhâva Brihaspati. It bears the year 850 of the Valabhi era, corresponding to A. D. 1169. The composition is in Saṇskrit verse and the character Devanâgari.

TRANSLITERATION.

- डैनमः शिवाय थेनाहं भवतः सहं सुरधुनीमंतर्ज्ञानामतः कर्णे लालयसि क्रमेण कितवोत्संगेऽपि तांवास्यसि
 ह्रस्रद्रेः सुत्या सकोप
- २ (मुखयो)कोबोचदार्थे श्रुवेर्म्थेयं गुक्रांडकीर्त्तिरिति वः सोव्याद्भवानीप्रियः १ श्रीवित्रराजविजयस्य नमोऽस्तु तुम्यं वाग्देयते त्यज नवोक्तिवि
- ३ भि यतोर्ट जिल्ले समुळुस सिल प्रकरोमि यावत् संबंधरप्रवरगंडगुणप्रशस्ति २ सोमः सोस्तु जयी समरां-गदहनो ये निम्मेलं निम्मेंसे गौर्याः शाप
- ४ (बलेन वै) कृतयुगेऽहश्यस्वमीपेयुषां प्रादास्पागुपतार्यसाधुसुधियां यः स्थानमेतत्स्वयं कृत्वा स्वामध पद्धति । शशिभृतो देवस्य तस्यावया
- ५ ३कली किंचिन्यतिकान्ते स्थानकं वीक्य विष्तुतं तदुद्धारकृते शंभुनेदीश्वरमथादिशत् ४। अस्ति श्रीमति कान्यकुरूविषये वाराणसीविश्व
- ६ (ता) पुर्यस्यामिषदेवताकुलग्रहं धम्मंस्य मोक्षस्य च तस्यामिश्वरशासनात्दि जपतेगैंहे स्वजन्मग्रहं चक्रे पाशुप-तक्तं च विदधे नंदीक्षरः
- ७ (सर्वेवि)त् ५ तीर्थयात्राविधानाय भूभुखां दीक्षणाय च स्थानानां रक्षणार्थाय निर्वयी स तपोनिधिः ६ श्रीम-द्भाषनृहस्पतिः समभय
- ८ (सिंद्रे) द्याविश्वाचितो नानातीर्यकरोपमानपदनीमासाद्य धारां पुरी संप्राप्तो नकुलीग्रसन्निभतनुः संपूजितस्ता-पर्तैः कंदर्पप्रतिमक्ष
- (शास्त्र)मिलल्लीयागमोद्घाटनं ७ यदान्मालनकान्यकुञ्जनिषयेऽवंत्यां सुतसं तपो नीता शिष्यपदं प्रमारपतयः सम्यद्मठाः पालिताः

१ आउपेयुषां

- १० श्रीतः भीजयसिंहदेवरृपतिभ्रातृत्वमात्यतिकं तेनैवास्य अगत्त्रयोपरिलस्यवापि धीकृंभितं ट्रसंसारावतरस्य कारण
- ११ मसौ संस्मारितः श्रांभुना स्थानोद्धारानिर्वधनं प्रति मति चन्ने पवित्राशयः तस्मिन्नेर दिने कृतांबल्धिपुटः श्री सिद्धराजः स्वयं चन्नेऽ
- १२ मुष्य महत्तरत्वमसमंचार्यत्वमत्यादरात् ९तिरमन्नाकमुपेयुषि श्वितिपतौ तेजोविदोषोदयी श्रीमद्रीरकुमारपाळ्य
- १३ पितस्तद्राज्यसिद्दासनं आचकामः झाटित्यचित्यमिद्दमा बल्लादधाराधिपः श्रीमञ्जांगलभूपकुजरशिरःसंचारपंचा-ननः १०एवं
- १४ राज्यमनारतं विदश्वति श्रीवीरासिंहासने श्रीमद्वीरकुमारपालनृपतौ त्रैलोक्यकल्पदुमे गंडो भावबृहस्पतिः स्मरिरपोरुद्वीस्य
- १५ देवालयं जीणे भूपतिमाह देवसदनं प्रोद्धतुंमेतद्वयः ११ आदेशात् समस्यासनस्य सुवृहत्प्रासादानिष्पादकं चातुर्जातकसंमतं स्थिर
- १६ थियं गार्गेयवंशोद्भवं श्रीमद्भाववृहस्पति नरपतिः सर्वेशगढेश्वरं चन्ने तं च सुगोत्रमण्डलतया ख्यातं धरित्री-तळे १२ दत्वालंकरणं क
- १७ रेण तु गले व्यालंब्य मुक्त्या प्रणम्याप्रतः उत्सार्यात्ममहत्तमं निवतमामुन्धियः मुद्रामदात् स्थानं भव्य
- १८ पुराणपद्धतियुतं निस्तन्त्रभक्तव्ययं १३ प्रासादं यदकारयत् स्मरिरपोः कैलासशैलोपमं भूपालस्तदतीव हर्ष-" मगमत् प्रोवाच चेदं वचः श्री
- १९ मद्गंडमहामीत प्रति मया गंडत्वमेतत्तव प्रत्त संप्रतिपुत्रपौत्रसहितायाचंद्रताराङ्णं १४ सीवर्णे सोमराजो रजत-मयमथी रावणोदार
- २० वीर्थः कृष्मश्रीभीमदेवो सचिरतरमहामावभी रत्नकृष्टं तं कालाञ्जीर्णमेष क्षितिपतितिलको मेक्सं च जकार प्रासादं समभावः सकल
- २१ गुणनिधेर्गेडसर्वेश्वरस्य १५ पश्चादुर्ज्वरमण्डलक्षितिम्का संतोषद्वष्टात्मना दत्तो ब्रह्मपुरीति नामविदितो प्रामः सबुक्षोदकः कृत्वा
- २२ त्रेपुटता(म्र)द्यासनाविधि भीमण्डलीसान्निभी त्वत्पुत्रैस्तदनुवतैः स्वकुलजैः संभूज्यतां स्वेछया १६ उद्भृत्य स्थानकं यसमात्कृतं सोमन्यवस्थया ब्रह्मप
- २३ तिसमो गण्डो नामूल भविता परः १७ यहुकुमतिचगंडैईब्यलोमाभिम्तैर्वेषकुसचिववृंदैर्नाशितं स्थानमेतत् सपदि तु गुरुगंडेनोद्दतं दत
- २४ कोटीरिथतधरणिवराहरपर्हेया लीलयैव १८ के के नैव विडंबिता नरपतेरप्रे विपक्षत्रजाः केषां नैव मुखं कृतं सुमलिनं केषां न दण्यों हतः
- २५ केषां नापद्धतं पदं हठतया दत्ना पदं मस्तके के वानेन विरोधिनो न विरुग भिक्षाव्रतं प्राहिताः १९ सुस्थामिधविहिरिदं बहुभिर्यदीयैगीढं गुणै
- २६ नियमितं यदि नामविष्यत् नूनं तदतरिकलं सुमृतं यशोभिर्वज्ञांडभाण्डकमणु स्मुटमस्मुटिष्यत् २० यहूपे-क्षण[्]छया ग्रतमस्त्रो भन्ने सहस्र
- २७ दृशां ' संसीमगुणस्त्रती कृतिथियो भातुश्रतुर्वऋता यन्माहात्म्यभराचलेति वसुधा गोत्राचलैः कीलिता यस्की-रितने भूवि प्रमास्यति सतो नृतं विलोकी कृता
- २८ २१ उद्भृत्य वृत्तयो येन सवाक्षाभ्यंतरस्थिताः चातुर्जातकलोकेभ्यः संप्रदत्ता यसोयिना २२ स्वमर्थादां विनि-म्मीय स्थानकोद्धा

₹९	रहेतवे पंचीत्तरां पंचशतीमार्याणां	योभ्यपृजयत् २३	देवस्य	दक्षिणे	भागे	उत्तरस्यां	तथा	दिशि	विधाय	विषमं
	ं दुर्ग प्रावर्द्धयत यः पुरं २४	गी								

- ३० यो भीमेश्वरस्याय तथा देवकर्पीदनः सिद्धेश्वरादिदेवानां यो हेमकलशान् दधौ २५ चपशालां च यश्चके सरस्वत्याश्च कृषिकां महानसस्य
- २१ शुद्धवर्षे सुस्तापनज्ञाय च २६ कर्पार्दनः पुरोभागे सुस्तभां पष्टशालिकां रौप्यप्रणालं देवस्य मंडुकासनमेव च २७ पापमोचनदेवस्य प्रासादं जा
- ३२ णेमृद्धृतं तत्र त्रीत् पुरुषांश्चके नद्यां सोपानमेव च २८ युग्मं येना कियंत बहुशो ब्राह्मणानां महागृहाः विष्णुपूजनवृत्तीनां यः प्रोद्धारमचीकरत् २९
- स्थीननगरस्यांतः सोमनाथस्य चाध्यानि निर्मिते वापिके द्वे च तत्रैवापरचंडिका ३० गंडेनाकृतवािपकेय-ममला स्कारप्रमाणामृतप्रख्या स्वादुजला
- ३४ सहेलविरुषधुत्कारकोलाहलैः भ्राम्यद्गृरितरारघट्टघटिका मुक्तांबुधाराशतैर्या पीतं घटयोनिनापि हसतीवा-भोनिधि लक्ष्यते ३१ शशि
- ३५ भृषणदेवस्य चेडिकां सिन्निधिरियतां यो नवीनां पुनश्चके स्वश्रेयोराधिलिप्सया ३२ सूर्याचंद्रमसोग्रेहे प्रतिपर्दे येनाश्रिताः साधवः सर्वज्ञाः प
- ३६ रिपूजिता दिजवरा दानै: समस्तैरिप तद्दर्यचसु पर्वसु क्षितितरुख्यातैश्च दानकमैर्येन क्ष्मा परितोषिता गुणानिधि: क (स्तरसमोन्य: पुमान् ३३)
- ३७ भक्तिः स्मरिद्रिपि रतिः परमात्मदृष्टी श्रदा श्रुती व्यमनिता च परोपकारे क्षांती भतिः सुचरितेषु कृतिश्च यस्य विश्वभरेऽपि च नुतिः सुतरां सुखाय ३४
- ३८ एतस्यामवर्षिदुसुंदरमुखी पत्नी प्रसिद्धान्वया गीरीव त्रिपुरद्विषो विजयिनी लक्ष्मीर्मुरारेरिव श्रीगंगव सरस्वतीव यमुनेवेहाप्रकोत्त्वा गिरा कांत्या
- ३९ सोढलसंभवा मूर्वि महादेवीति या विश्वता ३५ लावण्यं नवचंपकोद्गतिरयो बाहु: शिरीषावली हािं: कौंच"
- ४० नहासः कुंदममदरोधकुसुमान्युचा कपोलस्थला यस्या मन्मथाशिल्पिना विरीचतं सर्वर्तुलक्ष्म्या वपुः ३६ · · ·
- ४२ (न्यः) सोमेश्वर इति कृती भास्करश्चापरोभ्देते रामादिभिरूपमिताः सत्यसौभ्रात्रयुक्ताः निः
- ४३ द्रविबिनिहिता बाहवः श्रीमुरारेः ३८ घन्या सा जननी नूनं स पिता विश्वशेखरं यावरुजी · · · · · · · ·
- ४४ दुळोपरि लुठत्पानीयर्विद्वपमा लक्ष्मीः संभृतवाजिचामरगजाविद्युदिलासस्य आ
- ४६ युधिष्ठिरः क्षितिपतिः कि वा वहु ब्र्महे इत्येतेऽभिषया बृहस्पतितया सर्वेषिः
- ४७ कुमारपालस्य मागिनेयो महायलः ४२ प्रेमलुदेन्यास्तनयो भोजःशीसोम
- ५० (हरी) असी मारेश्वरतामाणि ५० सम्पर्धन करण गण

- ५३ (५१) लक्ष्मीधरसुतेनेयं लिखिता इद्रमुरिणा
- ५४ वलमीयवर्त ८५० आधा

TRANSLATION.

- 1. Bow to Siva. May Sankara the beloved of Bhavâni protect you, who when thus addressed by his consort with anger. "Because I allow the presence of Gangâ in your Jatâ, you O cheat! cause her to play on your ears and by degrees you have brought her into your lap," said oh! best of women! this the fame of Guru Ganda, is only as an ornament of my eyebrows.
- 2. May Vighnarâja (i. e. Ganapati) be victorious, I bow to you; may you Sarasvati favour me with the power of fresh diction that my tongue may flow on—as long as I work at the eulogy of the virtues of the good Ganda.
- 3. May the moon be victorious, who has been purified by Sankara, the consumer of the body of Kâmadeva: and who at the command of that God who bears her (the moon) on his crest having herself propagated this creed, gave it to the intelligent followers of the Pasupata doctrine who had disappeared in the Satyuga by the curse of Pârvati.
- 4. When some part of the Kaliyuga had elapsed Sankara seeing the temple in a delapidated state ordered Naudisvara to repair it.
- 5. The omniscient Nandiśvara took birth by the order of Siva in the house of the best of Brâhmanas in the city of Vârânasi in the beautiful country of Kânyakubja where the gods reside and which is famous for its being the abode of *Dharma* (religion) and *Moksha* (final emencipation) and observed the vow of Pasupati.
- 6. He the treasure of penances, set out to make pilgrimages, to intiate kings and to protect the places (of Pasupati).
- 7. Bhâva Brihaspati, who was very learned, who was worshipped by the whole world, who had attained the title of being the *Upamana* (model, standard) of those who make various pilgrimages; whose body was like Nakuliśa, who was worshipped by ascetics, who was like Kâmadeva, and who was as it were all the *Sâstras* put together elucidating his own *Âgama*,—he who was such went to Dhârâpuri.
- 8. The intellect of Bhâva Brihaspati appears most brilliant in all the three worlds by the austerities he performed in the countries of Mâlvâ and Kânyakubja, and at Ujena, by his making the Paramârs his disciples and well preserving the *Mathas* and by his acquiring the brotherly regard of Jayasimhadevarâjâ much pleased with him.
- 9. The day on which Bhâva Brihaspati, the holy-minded, being reminded by Sambhu of the reason of his taking birth in this world, thought of repairing the temple, Siddharâja gave him the greatest honour as a preceptor with folded hands and performed his service with great devotion.

- 10. When that king went to heaven, Kumárapálarájá, splendid on account of his peculiar valour, ascended the throne,—he who was of unimaginable prowess, who was the lord of Balláladesa and Dháránagari, and who was a lion prowling on the heads of elephant-like kings of the wealthy city of Jángala.
- 11. When the fortunate Kumarapalaraja, who was like a Kalpa-tree in the three worlds, was thus constantly reigning on the beautiful and successful throne, Ganda Bhava Brihaspati seeing the temple of Siva in a ruined state said to the king to repair the temple of the god.
- 12. That Kumarapala made the fortunate Bhava Brihaspati—who caused to be built the great temple by the order of Sankara, who was respected by the four *Varnas* (castes), who was steady-minded and who was born in the 6argeya family—famous on the face of the earth as Gandesvara, lord of all, on account of his being of the best Gotramandala.
- 13. He (Kumårapåla) adorned him with ornaments with his own hands, put a necklace of pearls on his neck, besmeared his two feet with *Chandana*, bowed down his head before him with reverence, gave him his own ring setting aside his greatness and made a gift of the place where the good old creed was followed and where food was daily distributed.
- 14. The king was much delighted to see the temple of Sankara made like the Mount Kailasa and said thus to the most intelligent blessed Gauda' I now bestow this appellation of Ganda on you with your sons and grandsons till the moon, the stars and the sun endure.'
- 15. The temple of Ganda, the lord of all and the treasure of virtues, was caused to be made of gold by Somarâja, of silver by Krishna equal in valour to Râvana, and of large fine stones with numbers of gems set in them by Sri Bhimadeva; the same being dilapidated by time was repaired and called Meru by the best and most glorious of kings.
- 16. Afterwards the king of Gujaratadesa, who was greatly satisfied, gave a village by name Brahmapuri, with its trees and water and all, in the presence of the whole assembly, with an order inscribed on three copper-plates, to be enjoyed without any disturbance by the sons, grandsons, and descendants of his family.
- 17. Because this Ganda, who is like Brihaspati rebuilt the temple by the support (management) of Soma, (it is clear) there has not been ever such a man, nor will there be in future.
- 18. This building which was destroyed by the bad ministers of kings, who were Ganda (mad) with evil genius, and were blind with avarice, is now repaired

by Guru Ganda, in mere sport, as if to vie with the great Boar (i. e. Vishuu in the incarnation of Varaha) who uplifted the earth on its tusks.

- 19. By him the powerful, what opponents were left unconquered in presence of the king? Whose faces were left unsullied? Whose pride was not humbled? Whose position was not forcibly shaken, by planting his foot on their heads and what opponents were not turned beggars?
- 20. If this small pot of the Universe, had not been well pressed on the out-side by his good merits, it would have surely burst from within through his great glory contained in it.
- 21. Verily, Indra desiring to see his beauty assumes one thousand eyes; Brahmâ is obliged to bear four mouths being intent upon praising his immeasurable virtues; the earth being shaken by the weight of his greatness is kept in position by mountains and, in sooth, the three worlds seem to be created to hold his fame which the earth could not contain.
- 22. He desirous of acquiring glory renovated the four outward and four inward duties of the four Varnas and allotted one to each.
- 23. For the proper repair of the temple, having fixed a limit, he worshipped five hundred and five good men.
- 24. He extended the town by building a strong fortress on the north and the south of the god (temple).
- 25. He placed gold-pinnacles (lit. jars) on the (temple of) Gaüri, Bhime-śvara, Kapardi (Śiva), Siddheśvara and other divinities.
- 26. He made a court-room for the kings to assemble. For getting pure water for kitchen and bath he made a Vâpi of Sarasvati.
- 27. He made a room in front of the (temple of) Sankara supported on beautiful strong pillars and a seat of Siva in the form of a frog having a silver water-course.
- 28. He repaired the temple of the god Papamochana, erected three statues of men* (?) there, and caused to be built a flight of steps in the river.
- 29. He built very large houses for Bråhmanas and helped up the worship of Vishnu.
- 30. In the new town on the way to Somanatha he made two Vapis and there established another Chandika.
- 31. This Vapi, which was caused to be made by Ganda is pure, is of large dimensions, has sweet water and is named Amrita. This Vapi, whose water is

[•] Can it be, equal in height to three men?

being drunk by hundreds of brass-buckets, which make pleasant rippling sound, seems to laugh at the ocean though its water was drunk by the sage Agastya, born from a *Kumbha* (an earthen water jar).

- 32 He desirous as he was of acquiring religious merits, renewed the Chaudika near the God Siva, who is adorned by the moon.
- 33. What person can rival this treasure of virtues, who on (the days of) the Solar and lunar eclipses worshipped at every step-learned and meritorious Bråhmanas who came to him, after giving them all (kinds of) gifts, and who pleased also the earth by making regular gifts, well-known on the surface of the earth, on the five holidays.
- 34. He is devoted to the enemy of Kâmadeva (Sankara), takes delight in the knowledge of *Bramha*, has faith in the *Śrutis*, is very fond of charity, is of a forbearing nature, conducts (himself) properly and prays to Sankara for eternal bliss.
- 35. His wife, well-known in this world by the name of Mahadevi, had her face beautiful like the moon, was of a well-known family, was like Pârvati to Saṇkara the enemy of the demon Tripura, and glorious Lakshmi to Vishuu and was born of Sodhal, equalling in fame, speech and beauty the Ganges,* Sarasvati and Yamuna respectively.
- 36. Her form was like the flower of Champá; her arms were like a chariot of Love; her eyes were like a row of Śirish flowers; * * * * * * her smile was like the flower of Mográ and her temples were like the full blown flowers of Lodhra; so (it appeared that) her body was made by the artist, Kâmadeva, with beauties of all seasons.
- 37-38. He, who was like Daśaratha * * * * * * * * * had for his sons four Siddhas (adepts) like his (Daśaratha's) four sons; the first of whom was called Aparâditya; next (to him) was Ratnâditya; * * * * * the third was called Someśvara who was well-versed in all things; and the fourth was Bhâskara. They were as true and fraternally devoted to one another as Râma, &c. * * * * * * the hands of (Vishnu) Śri Murâri dipped in juice * * * * * *
- 39.40. Fortunate indeed is the mother and also the father who is like a pinnacle of the world; he till the end of his life and * * * * * * * Lakshmi (wealth), which is like drops of water rolling on leaves and which abounds in horses, chauries, and clephants * * * of the flash of lightening * * * * * he, who was meritorious, acquired great fame.

[•] i. c. Her fame was bright like the Ganges, &c.

41-42. Now he was the king Sibi or the sage Dadhichi in the quality of goodness and was like Râvana in issuing strict orders * * was like king Yudhishthira, what more can we say? He was like Brihaspati. All of them......the sister's son of Kumarapala, very strong ‡ 43-45. Bhoja, son of Premalladevi * as Gandarâja officiated at the worship of Somanatha at the time of the eclipse of the moon, he was highly pleased * * respectively. 46-47. Ganda near Pâpamochana on the bank of the river Hiranya gave him. who was in advance of all the great lords, the kings. 48-50. He who gave a village by a deed of gift with order.....to be enjoyed by sons, grandsons, and women born in the family as long as the sun and the moon (endure)...... The Shighrakavi composed this eulogy of Ganda's qualifications. 51.Rudrasuri son of Lakshmidhara wrote Ashâ (dha) V.

Copper-plate grant of Rájá Bhimadeva I of Anahilapura. Dated Vikrama Samvat 1086.

There are two plates of this grant as it is generally to be found in Valabhi grants, measuring 8½ in. by 6 in. They were received from Rådhanapur, the principal place of a small Mahomedan principality of the same name in the Palanpur Agency to the north-west of Ahmedabad. The plates are written on one side only having twelve and ten lines and a half of Sanskrit prose in Devanagari characters. They are in a good state of preservation. They mention the grant of a village named Masur situated in the Kutch district to a Bråhmana named Bhattarka Âjapâla son of Âchârya Mangala Siva by king Bhimadeva Solanki of Gujarât on the sacred day of the full-moon day of the month of Kârtika in the year Samvat 1086, A. D. 1029. It mentions the boundaries of the village as well as the religious merits of such a grant and the demerits of depriving any person of it.

i Mahabala may be the name of the sister's son of king Kumarapala.

L. 25,

TRANSLITERATION.

PLATE 1.

- १ निक्रम संयत् १०८६ कार्तिक शुदि १४ अदोह श्रीमदणहिल
- २ पाटके समस्तराजावलीविराजितमहाराजाधिराजशीभी
- **३ मदेव:** स्वभुज्यमानक**्छमंडलांत:पातिघडहडिकाद्वाद**श
- 😮 के मसुरमामे समस्तराजपुरुषान् ब्राह्मणोत्तरांस्तविज्ञा
- ५ सिजनपदांश्च बोधयत्यस्तु वः संविदितं यथा अद्यकार्ति-
- ६ कीपवेणि भगवंतं भवानीपतिमभ्यच्ये कच्छमंडलमध्यव-
- तिनवणीसकस्थानिवानिर्गताय आचार्यमंगलाशिवसुता
- ८ य भट्टारकआजपालाय सिंहरण्यभागः सदंबदसा(शा)पराधः
- ९ सर्वोदायसमेत उपरिक्रिखितमसुरप्रामः शासनेनोद—
- १० कपूर्वमस्मामिः √दत्तो यस्य पूर्वस्यां दिशिघड्रहङिकाम्रा—
- १६ मो दाक्षेणस्य पंकायकात्रामः पश्चिमायां धरवडिकात्राम---
- १२ उत्तरस्यां डाऊरिकाम्राम इति चतुराघाटोप---

PLATE (III

- १ लक्षितं मसुरप्रामं मत्वा तन्निनासिर्भियया दीय
- २ मानभागभोगादि सर्वे सर्वदा आज्ञाअवण
- ३ विधेयैर्भूत्वा(भू)त्वाऽस्मै आजपालाय समुपनेतन्यं सामा
- ४ न्यं चैतत्पुण्यफलं बुध्वाऽस्मद्वंशकैरापि भाविमो
- ५ क(कृ)भिरस्म(त्)पदत्तधर्मीदायोयमनुमतन्यः पाल
- ६ नीयश्र उक्तंच भगवता व्यासेन षष्टि(ष्टी)वर्पसहस्राणि
- ७ स्वर्ग्जे(रगें) तिष्टति भूमिदः आच्छेता चानुमंता च तात्येत
- ८ व नरकं बसेत् लिखितमिदं कायस्छ(स्थ)कांचनसुते(न)
- ९ बटेश्वरेण दूतकोऽत्र महासान्धिविग्राहिकश्रीचेड---
- १० शम्मा इति मंगलं महाश्री: श्रीमीमदेवस्यु(स्व भीम)दे(वे)
- **११ स्वरकीस्थापी(पि)तः**

TRANSLATION.

To-day on the 14th of Kârtika Suklapaksha in the year of Vikrama Samvat 1086 Mahârâjâdhirâja Śrî Bhîmadeva, adorned with the attendance of all the kings at the beautiful Aṇahilapâtaṇa, orders all his subjects and royal personages together with the Brâhmaṇas, at the village of Masura, one of the twelve villages of Gadabadi, &c., situated in his own territory of Kachchha Maṇdala, that they should bear in mind that the above-mentioned village of Masura with its cash revenues, fines and revenues arising from the commission of ten kinds of crimes has been granted by me with a right of perpetual enjoyment and with due Sankalpa after worshipping god Śiva on this day, the full moon day of

(TIRST PLATE)









Kartika to Bhattarka Ájapála son of Acharya Mangalasiva, who has immigrated from the place called Navanisaka in Kachehhamandala. The four well-known boundaries of the village of Masura arc the villages of Gadahadi to ithe east, Pankaiji to the south, Dharavadi to the west, and Dahuri to the north. Accordingly the inhabitants of the place should promptly obey the orders of Ajapála and always send him the usual portion and enjoyments, &c. Our descendants and future landholders shall observe and maintain this religions grant believing it to be equally beneficial to all. Bhagaván Vyása says "a person making a grant of land enjoys heaven for sixty thousand years; (while) he who resumes such land or supports such resumption lives in Navaka (hell) for the same period."

Composed by Vatesvara son of Kâyastha Kânchana. The instructor of this grant is Śri Chanda, the negotiator. Thus may there be blessings and great wealth. Sri Bhimadeva's (grant).

VI.

Stone-Inscription at the Moth Durvhja or the grand gate at Prabhasapatana, of the time of King Bhimadeou II. Dated Samvat 1273.

Prabhàsapâtaṇa is a small town under the Junagadh State on the south-west coast of Saürâshṭra, where there is the celebrated temple of Somanâtha. In the town-wall of this place and near the gate this stone is found. It has a square surface measuring 26 in. by 26 in. and contains forty-seven lines of Sanskrit verse in Devanâgari character. It mentions the building of two temples at Pâtaṇa dedicated to gods Vishuu and Siva respectively by Sridhara, a minister of Râjâ Bhimadeva of Gujarât,—whose geneology it gives together with that of his minister,—for the religious merits of his mother Rohiui and his father Valla who was a great favourite of king Kumârapalâ. The date of the inscription is Vikrama Saṃvat 1273; A. D. 1217.

Transliteration.

- १ (र्जनमः) शिवाय मनोमत्यादि रूप्येत तत्वमालावलंबनं । उपास्महे परं तत्वं पंचकृत्यैककारणम् ॥ १ वियद्वायुर्वेन्हिर्जलमवनिरिदुर्विनकरश्चिदाधारश्चेति त्रिभुवनिमदं यन्मयमभुत् । स वः श्रेयो देशा
- २ (त्परमसु)रनाथः सुरनदीं सरुपां विश्वाणः शिरसि गिरिजाक्षेपविषयं ॥ २ पृष्णातु स्पुरदभविश्वमभृतः कृष्मस्य वक्षस्थळे प्रेंसत्कीस्तुभक्षांतिभिः कविचता लक्ष्मीकटाक्षावाळः या संभोगभरालसा तनुत—
- ३ (टे सी) जन्यविनासभुदाँरिद्यदुमदावपावकशिखाकारानिशं वः श्रियं ॥३॥ श्रीसोमनाथायतनस्य रेखा भुमेरियाद्वीगृतिरत्र भाति । अनन्यसाधारणशोभमेतत् पूरं पुरारोरित सूचयंती ॥ ४ महाबदनपंकजं भवन

- ४ (व्वास) मुजाविधिनिधिः सकलसंपदां त्रिपुरवैरिणः संमतं । तदेतदातेदुःसहश्चयिनगशस्त्रकौः पुरा शक्यांक-रचितं पुरं जयाते वारिधेः सन्निधौ ॥ ५ आस्त स्वस्तिमदंबुजासननिमैरप्यासितं यज्ज्ञीभर्ध्मस्यामलिता
- ५ (च) छात्ररतलं स्थानं त्रयीकेलिभूः अत्यर्थ्ये द्विजपुंगवाद्यगराभित्यद्वेंदुचुडामणिः प्रादादष्टकुलान्वयापरचतुः षण्ड्ये स्वक्रकीर्त्या तुष्ट्ये च यत् ॥ ६ साडिस्याख्योदप्रवंशाप्रकेतु गीत्रं ख्यातं नाम वस्नाकुलं यत् ऊपा
- ६ (व) ये देवयुस्तत्र जहे दैवकलं यस्य सान्वर्थमासीत् ॥ ७ यदीयाधिवर्धिरमरपतिकार्पण्यवनकं भुनिकि स्मा(स्वा)यतीनहतरिपुराज्यं चिरतरं(नं)। निहत्य स्मापालानणहिलपुरे मूलन्यतिः प्रभुत्वं तत्युत्रेष्वकृत सुकृतार्थव्यवसितं । ८ गंगाप्रवाह
- प्रतिमा बभुवुस्तस्थात्मजा माघवलुल्सामाः तेमुल्राजेन पुरस्कृताश्च भगीरथेनेव यशेवितंसाः ॥ ९
 वापीकुपतडागकुद्दिममठप्रासादसत्रालयान् सौवर्णथ्वजतारणापणपुरमामप्रपामंडपान् ॥ किस्तिश्रीसुकृत-प्रदानरप
- ८ ति: श्रीमुळराजिक्सिमिस्तेरम्रासिनभैर्व्यधापयदयं चौलुक्यचूडामणि: ॥१० यदात्रासु तुरंगमोद्धुरखुरखुज्र(ण्ण) क्षमामंडळक्षीदच्छन्नदिगतमवरमभूदेकातपत्राकृति आज्ञाकूंजरकर्णकोटरतटीरप्यु
- भगंडोपलान् मिदानः पटहप्यनिः भितिभरश्रेणीषु बम्राम च ॥११ तस्मिन् मूमुजि नाकनायकसमामध्यासिते
 मूपातः प्रत्यार्थिक्षितपालदौलकुलिशश्चामुंडराजोमवत् ।भीत्या प्रामवरं ददौ निजिपतुर्मित्रा
- १० य कन्देश्वरं यः श्रीमाधवनामधेयकृतिने तस्मै महामंत्रिणे ॥ १२ यस्योत्तृंगतुरंगतांडवमवः पांशूत्करः सैनिकःस्वःसीमासु मरुद्रणाभयमहावप्रकारोऽभवत् । शकेणासुरगोष्टिकप्रश्नमनं दृष्ट्राऽतितुष्टा
- ११ त्मना निः संकं निद्धे सचीकुचतटे चेतिश्चरेण ध्रुवं ॥ १३ तस्यात्मजस्तदनुद्रस्रभराजनामा यस्यारिराज-मकरध्वजशैकराख्या । पृथ्वीं वमार परिपंथिशिरःकिरीटरक्षधृतिसुरितशोणितभद्रपीठः ॥ १४ तदनु तदनु
- १२ जोऽभूद्रछ्मो भूर्भुवःस्विश्वितयपठितकीर्तिमृतिमिद्रिकमश्रीः। यदरिनृपपुरेषु स्थूलमक्ताफलांका मृगपतिपदपं क्तिर्रुक्ष्यते चत्वरेषु ॥ १५ क्षोम्मीचकैकशकेमृत *** चद्रकांते ***** णे । *** प्रेंखस्प्रतापप्र-तिहर्तान
- १३ खिलारातिराजन्यसैन्यः । तस्मिन्देवांगनानां निविज्ञतरपरीरंभभाजि ।क्षतीशे कर्णःकीर्णा(कर्णोनित्या)भिया-तिर्भुवसभृतभुजे भोगिभृन्यस्(त्स)रेण ॥ १६ तस्मिन्नसद्धाभुवनानि जयः

 रभ्जवयसिंहदेवः । यस्य क्षपाक
- १४ रक(र)प्रतिमह्यपूर्तिः कीर्तिज्जंगत्सु निर्मितिनगंगनेव ॥ १७ पाणौ कृत्य जयश्रियं क्षितिमुजामप्र समग्रां महीमेकछत्रपरिछदां विद्धता वीरेण विस्मा(स्ता)रितः । वेनारातिनृपा · · · · · · · रिण · · · कृदािमभूष्यं संधुस्य क्षु
- १५ भितौर्वसंत्रिभसमुरक्षेपः प्रतापानलः ॥ १८ तस्मिन्नुपेद्रत्वमनुष्रकृते नैलोक्यरक्षाक्षमिनकमांकः । लोकप(केवृ) णैरात्मगुणैरलंध्यः कुमारपालः प्रवभूव भूपः॥ १९ यदरिनृषपुरेषु व्याधिवज्ञासवातप्रसम्पर्युकी
- १६ लालीदिकः प्रतापः क्रथयाते धनकेनस्कारकल्लाललालं जलनिधिजलमद्याप्युत्पतिष्णु प्रकामं ॥ २० आसं-दलप्राकृणिक च तरिमन्भुवं बभाराऽजयदेवभूषः । उच्छारयम् भूपतस्प्रकांडान्नुवापयो
- १७ नैगमधर्मवृक्षान् ॥ २१ यस्त्रद्रधाराजलमग्ननामानृपेद्रविकांतियशप्रशस्तिः । वञ्चाज तस्पुष्करमालिकेव श्रीमूलराजस्तदनृदियाय ॥ २२ तस्यानुजन्माजयति क्षितीशः श्रीभीमदेवः प्राथितप्रतापः । अ
- १८ कारि सोमेश्वरमंडपोऽयं येनात्रमेवध्वनिनामधेयः ॥ २३ लुलात्मनः समजानेष्ट विशिष्टमान्यो माभार्यया-सुभटभीमनृपस्य मित्रं | लुलाख(स्य)्या तु भवजीवनपूर्णकुमः श्रीभीमभूपतिसमार्णवपूर्णचंद्रः ॥
- १९ ॥ २४ तस्याऽभवद्भुवनमंडलमंडनाय शोभाभिषः प्रियसुद्धकायसिंहनामः । अस्यात्मवः सचिवतामिशगम्य बृह्यः सन्मानयामास कुमारपालं ॥ २५ अयोपयेमे दिवती च रोहिणीमुमामिवैद्यः कम

- २० लामिनाच्युतः । अजायतास्यां कुलकैरवाकरमशेषकः भीधरनामचद्रमाः ॥ २६ श्रीरोदप्रपरिपांबुरप्(पु)

 ण्यकीर्तिनीर्येग एष पुष्पायुषमातनोति भूपालराजपरिनृतनमंत्रशक्तिः भीभीमभू
- २१ पतिनियोगिजनैकमान्यः ॥ २७ आशीःपरंपरा सेर्यं याभूयते(नव्याभूदिव दृष्यते) । चीकुक्यवस्राकुरुयोरा-कर्रियोत्तिरक्षता ॥ २८ कांत्या चंद्रतितेजसा '''''''''''''''''' मुक्त्यान्तानपदात्मञ्जलाख
- २२ लसंपत्या धनाध्यक्षति वृत्या सागरतिप्रभावविभिना नित्यं विरीचत्यसौ कीर्त्या रामित रूपसुंदरतया संदर्णित श्रीधरः॥२९ निःसीमसंपदुदयैकनिधानहेदुराकस्पमानजनतागुरुभिर्निवदः सौजन्यनी
- २३ रनिधिरुवतसस्वसीमा जार्गीत चास्य हृदये पुरुषः पुराणः ॥३० भीषरोऽपि न वैकुंठः सर्वश्रोऽपि ननास्तिः ः वित् ।ईश्वरोऽपि न कामारिरिद्रोऽपि न च इत्रहा ॥३१ तस्याऽनिशं विशुधपादपकामधेनुमुख्याः स
- २४ मस्तजननांक्रितदा भवंतु । कित्वस्य संत्यभयदानवशंवदत्वविस्मेरवक्कविनयप्रमुखा विश्वेषाः॥३२ चंबालस्तुः ि विनायते पिकततिः श्रीराज्ञहंसायते कार्लिदी जलदायते हरगलः श्रीरोदवेला
- २५ यते । शौरिः सीरषरायतेंजनगिरिः प्रास्त्रेयशैलायते यत्कीत्यां सुपयस्यते क्षिति गर्दा राहुः शशांकायते ॥३३-निर्मालयं चंद्रदेवो रघुपतिरचितः सेतुवंधः प्रणाकी क्षीरोदः पादशौचाम्
- २६ तमचलपतिर्देहसंबाहपंकः ।उन्छिष्टं पांचजन्यः सुरसारिदमलस्बेदतोयोदयश्रीरित्येवं यस्य कीर्ति स्वयमकृत नुर्ति सोमनाथेऽतिश्रद्धः ॥३४ (यत्कीर्तिनाशु) द्वयसी (सि) त्रिलोकीमालोक्य
- २७ संकीर्णनिवासमस्याः । वेधा विलब्धरतुतिमाततान तत्वास्ति नान्या सदृशीति नूनं ॥ ३५असौ वीरो दांतः सुचरितपरिस्पदसुमगःपरिणविगरां कोपि सुकृती ॥ अमुं पूर्वे अ
- २८ न्मन्यखिलगुणविस्तारमधुरं । नुनाव स्वछंदं विमलमिव वास्मीकिरसकृत् ॥३६ यदीमगुणवर्णनभवणकौतुकी-च्छेदयाःःःकमलःःःवाशीःःःःश्वयताःःमिगमान् । मनः किमिव रज्यतेऽ
- २९ नुचितवेदिमिर्वेश्वसत्तदस्य कविमानिमिर्न च चरित्रमुधोत(स्य)ते । ३७दिग्दंतावलकर्णतालविलसत्तत्कुं भरं गांगणे यत्कीतिम्मदमत्त(वारवनितातुक्यं पदा)तृत्यति रोदःकंदरपूरण
- मणियनी निःशंकमात्मंभिर्मिदंती तमसां कुलं कलिमलप्रव्यंसबद्धोत्सवा ॥ ३८ क्रोक्कालोकालवाला चलनि-थिसलिला सिक्तमुक्ता वहंती शंभोर्मृद्धावरंत्रभीन्यितस्य समित्रे
- ११ एंक्करैः कीर्तिवहीः । यस्याः प्रालयमानुप्रविकचकुसुमोदारतारापरागैर्दिक्चकं व्यापयती क्रवति कणिपतिमां सुमूला वगत्यां ॥३९ (तस्यपत्त्यस्तु) सावित्रीलक्ष्मीसौभाग्यदेव्याख्याः
- ३२ इच्छाझानिकयाख्येया यद्वदीशस्य शक्तयः ॥४० तामिर्भुवनवंद्याभिः संप्याभिरिववासरः। श्रीकरः शोभते सञ्चल्लोकव्याप्येकदीपकः ॥ ४१ उत्तानमाळवतमाळवनायमानसेनागच
- १३ प्रकरमंगुरितांबुदं यः । सूर्य स्थिरां(रं) सपदि मंत्रवलन कृत्वा श्रीदेवपत्तनमपालयदात्मशक्त्या ॥ ४२ प्रलय जलिवेलोलोलकलोललोल चरणधरणमात्रापातसंपिष्टशैल दिलतघरणि
- २४ चर्क वीरहम्मीरचकं बहुतृणमकरोद्यः श्रीधरो दुर्गदर्णः•॥ ४३ मातुः कैवस्यहेतोर्म्भुरिरपुमवनं रीहिणी-स्वामीनाम्ना नुनंः·······मितो मॉदरं केशवाद्यः नाम्ना ता
- ३६ सूनुनात्मालियम्यं ॥ येनेदं(नायं) श्रीधरीयो इरनगरपदे वाजितस्त(तं त)स्य नामना प्रासादः श्रीधरेणाप्यय-मवनिजयः कारितः शंकरस्य ॥ ४५......पहत्वक्षनस्तोमाश्रमत्कारिणः
- ३७ किचिच्यीनृपनायिकाभिराभितः क्रीय कुद्यांतरायीयौणाधिपचापस्यस्य स्वत्यस्य प्रत्यक्योतियां। नैते मेदमहीवरः शशिहशासाकार : : ।। ४६ ॥ दिचीयमो भूद्दिबनृद्धिभावः ।

•
३८ समानदीर्घाः स्गुणाः । । । । । । । । । । । । । । । । । । ।
आद्योदया।।कापे मुधा वैद्योपिका इन ॥
३९ ॥ ४८ चित्तवृतिनगः
विभवाः गर्भाः गर्भाः गर्भाः गर्भाः गर्भाः भर्भाः भर्भावर्गाः सततिविद्यित
४० धूपोद्भृतधाराञ्चः । । ।देते ॥ ५० एणां सुसिद्धाय
कथाश्रयाय मठं विधाय स्वपदेन वक्ता। ******* । **** । ********
∙∙गः प्रज्जुचेतः । ५१ अथ क
४१ थमपि दैवादागतः श्री (निवासी) '''''' ''''
••••••भीधरेण । प्रतिनृपतिमतं यः पंडितमन्य ••••भवजल्लिधि•••••। ५२
मुपाल कुलसङ्ख
४२ रः। जीमूतबाहन । । । । । ५३
दिधिपरि⁺⁺⁺''''''''''''' सचित्रः सुधिः सद्रिद्या''''''''''''''''''''''''''''''''''''
पायनोयतिपति
४३ र्यस्याद्भि(भि)पूजाविभिः
·····। •••। ५४· दलद्रदूरे वसरपीरणते ····। । ···। •
·····। ·····थाणिकमतमहान्याल
YY संरमसिंधुः। ·····ातदा
दिर्विमलक्षिवमुनिरम ्भ ननीयो नवेंदुः ॥ ५५ *********************************
•••••••विस्थचपादप
४५ द्वो अंगीकृताप्रभूतिः शेषपाषिकमृ-
णालपंड: भक्त्यास्य तुष्टः प्रतिपन्नदर्पौ प्रशस्तिमेतामयमुद्दधार ॥ ५६ याव
४६ द्विष्णोरेररिवस्यमस्त्रिलं गेड
र्यतीयमस्य ।। ५ ४ एते∵ःःःःःः वनप्रासादाः
४७ सूत्रिताः शुभाः । छिखिः गणाणाणा । गणाणाणाणा । गणाणाणाणाणाणाणाणाणाणाणाणाणाणाणाणाणाणाणा
ः ॥ ५९ श्रीमद्विक्रमनुपसंवत् १९७३वर्षे वैद्याखश्चि ४शुक्रेनि:पादितमिति ॥ शिवमस्तु ॥ छ ॥ मंगलं महाश्री ॥

TRANSLATION.

Bow to Siva. I worship that great essence which through mind and intelligence is the support of the series of Tateas, and which is the one cause of the five effects.

May Sankara the great lord of the gods be for your welfare; who inheres in the three worlds consisting of ether, air, fire, water, the moon, the sun, and the source of consciousness (soul) and who bears on his head the Ganges, the cause of Pârvati's slight.

May the oblique glances of the Goddess Lakshmi mixed as they are with the lustre of the Kaustubha Jewel shining on the breast of Krishna who bears the

beauty of a bright cloud, ever nourish your Lakshmi (wealth)—glances which are sluggish owing to the heaviness caused by enjoyment, which give a peculiar beauty to the body and which are as it were the flames of great conflagrations to the forest of the trees of poverty.

The temple of Somanatha here is like a finger of the earth raised up to point out as it were that this city, the like of which does not exist, belongs to Sankara.

... This city, the lotus on the face of the earth, the ornament of the cities of the world, the treasure house of all kinds of wealth, the favourite (place) of Siva stands above all near the sea, being created by the moon in former ages, to free herself as it were from the insufferable pain of consumption.

This beneficent place is inhabited by Brahmâ-like men who perform sacrifices with due ceremonies, has the earth and the sky about it dark with smoke constantly issuing (from sacrifices) and is the play-ground of the three Vedas. God Siva, who has the half-moon on his crest thinking that the invaluable city is for the best of Brâhmans, gave it to sixty-four best Brâhmans of eight families for his own satisfaction.

The Vastrakula Gotra, which is the best and is like the flag (of all the gotras) of the Sandilya family, is well-known. There was one Devayu of this Gotra, spotless as cotton, who was significantly called a Daivajūa (as he knew the past and future).

He by whose blessings Mularaja enjoyed for a long time his kingdom of Anahilapura void of all foes, putting to slight even the reign of Indra—he after killing the Kings gave the sovereignty with all good deeds to their sons.

His three sons Mâdhava, Lūla, and Bhâbhâ were like the three streams of the Ganges. They, who were adorned with fame, were placed in front by Mularâja as (the streams) by Bhagiratha.

King Mularaja, who was the head jewel of the Chaillukyas, caused to be made, through these three who were like Agrasa (?), vapis, wells, ponds, kotadis, monastries, temples, Sadavritas (places where alms are daily given,) golden flags, arches, shops, towns, villages, and Parabas (places where water is freely given,) thus acquiring fame, wealth, and virtue.

When he marched, the canopy of the heaven (on the head) became one uniform umbrella being covered to its ends in all directions, with dust raised from the earth reduced to powder by the hoofs of his horses, and the sound of the beating of his drums piercing even the cave-like ears of the elephants of the quarters, as also their rock-like temples, pierced through the row of famous (mountains and kings).

When the king entered into the council of Indra, he was succeeded by Châmunda who was like a Vajra (thunder-bolt) to the mountain-like hostile kings.

He made gift of the village of Kandesvara to Madhava, his father's friend and great minister.

The dust raised by the prancing of the big horses of his army went up as far as the limits of heaven and served as a rampart which relieved the gods of their fear. Indra seeing that the demons are destroyed by this king confidently turned his mind, after a long time, with great delight to the breasts of Indrani.

He was succeeded by his son Durlabharaja, who was such a great enemy of Kamadeva that he was styled Sankara.

He whose foot-stool was reddened by the diamonds fixed in the crowns on the heads of his enemies, protected the earth.

He was succeeded by his younger brother Vallabha, whose fame was sung in the three worlds *Bhur*, *Bhuvar* and *svara*; and who was a personification of the god of heroism. The streets of the cities of his royal foes are marked with the lines of the foot-steps of lions, strewn with pearls.

When this king, who was like an Indra on the face of the earth * * * * * * * ind who was as beautiful as the moon * * * * * went to receive the warm embraces of the Devânganâs, he was succeeded by Karua, who by his continued bravery destroying the armies of all his enemies bore the earth in his hand, as if in rivalry of the great Ścia.

When the king went to heaven he was succeeded by Jayasimhadeva whose fame resembling the rays of the moon was dancing ever on the earth like a rope-dancer female.

He who got possession of the fortunes of victory over all the kings had brought the earth under one *Chhatra* and who was a brave king, extended the fire of his prowess resembling the flash of the great Vadavânala by * *

When he became the friend of Indra, he was succeeded by Raja Kumarapala, possessed of valour, able to protect the three worlds, and intransgressible by his virtues, which were satisfactory to the people.

The fire of his valour emblazoned by the wind of the roar of tigers in the cities of his royal enemies spreading in all directions still causes the ocean to boil, whose waters are moving and foaming with waves, being desirous as it were of coming out again.

When the king went to the court of Indra, Ajayadevaraja assumed the throne, who rooted out the tree-like kings, his enemies, and planted the trees to the Vedas.

The praises of the brave deeds of many kings submerged in the water-like edge of his sword, looked as beautiful as a garland of lotuses on his breast. He was succeeded by Śri Mularaja.

His younger brother Srî Bhimadeva, whose prowess was well-known and who was the greatest of all, caused to be made this *Mandapa* of Someśvara called Meghadhvani.

Lula's son was Bhabha honoured by the good and the friend of the brave Bhimadeva. By the name of Lula he was the moon to the ocean-like court of king Bhimadeva, being as it were a pot full of the nectar reviving the whole world.

He had a son Sobha, who adorned the face of the earth and who was a great friend of Raja Jayasinha. His son Valla became a minister of Kumarapala and did him great honour.

Valla then married Rohini as Sankara did Parvati and Vishau did Lakhsmi. By that wife he had a moon-like son Sridhara that expanded the water-lily of his family.

He, whose life was prolonged to the full-age of one hundred years, whose brilliant fame was as white as the flow of the Kshîrasâgara, who was free from all diseases and who possessed various powers befitting an adviser, was respected by all the servants of Srî Bhimarâja.

By him who made the attachment between the families of Chaülukya and Vastrâ indissoluble till the end of the Kalpa has been put forth a new line of blessings.

In respect of splendour Sridhara is like the moon; in brilliancy * *

* * * * * * *; in point of attaining eternal bliss he is like
the son of Uttânapâda (Dhruva); in respect of all kinds of wealth he is like
Kubera, the lord of wealth; in point of the depth of his heart he is like the
ocean; in respect of prowess he is like Brahmâ; in point of fame he is like
Râma and in respect of the beauty of form he is like Kâmadeva.

He was like a treasure of unlimited wealth and prosperity. He remains attended for a *Kalpa* by honour, by people in general and by great men. He was an ocean of goodness, and he was like the boundary of great strength. In his heart lived waking the Eternal Being.

Though Srîdhara (1, a proper name and (2) the lord of Lakshmi-wealth), he is not Vishuu; though Sarvajua (1 Omniscient and (2), Budha), he is not a believer in Sunyavâda; though Iśvara (1 a king and (2) Siva—the supreme), he is not the enemy of Kâma; though Indra (1 the master and (2) a God of that name), he is not the destroyer of Vritrâsura (a demon destroyed by Indra).

L. 26.

Let the Kaipa-Taru (the tree of Gods) and the Kamadhenu fulfil the desires of all men; but he is still superior to these two as he possesses in addition (to the quality of fulfiling the desires of all men) the virtue of giving fearless shelter, mastery over senses and smiling face, modesty and other virtues.

By his fame the moss appears like snow, the cuckoos like swans, the (black-watered) Jamunâ like (white) clouds; the (blue) throat of Sankara like the shores of the Kshîrasâgara; Srî Krishna like Balabhadra; the mountain of soot like the Himâlayas; the earth-cow like a cow giving fine milk and the Râhu like Chandra.

He (Śridhara) with great faith in Somanatha prayed to the God with such praises as the following:—the moon is made of offerings made to him and taken away; the Setubandha made by Ramachandra is his water-course; the Kshira-sagara is the water with which his feet were washed; the lord of the mountains is the dirt washed off his body when cleaned; the conch-shell Panchajanya is his rejected food; the Suranadi (the Ganges) is the beautiful and pure perspiration coming out (of him).

Brahmâ seeing his glory purify the three worlds, and seeing that it had made its habitation in all places, praised her by saying that there was no other like her.

It appears that Vâlmika Rishi was often praising him in his previous birth as being a hero, as one who kept his senses under restraint, as one who was fortunate with his good acts wide spread, as one who * * * * in new speech, as one who was meritorious, as one who was fine by the great number of his virtues, and as one who was self-dependent and pure.

By the description of whose virtues, the mind * * * how can that of Brahma be pleased by the words of those believing themselves poets and using improper language, or how can the great fame of (this man) be described by them?

His fame—which fills with affection the caves of the earth and the sky, nourishes itself fearlessly, pierces the large quantity of darkness, and is energetic in destroying the impurities of the *Kali-yuga*—proudly dances (like a dancing girl intoxicated by liquor) on the court-like temples of elephants with the fanlike ears beating time.

The creeper of his fame grows victorious in the world, which has for its bed the Lokâloka mountains, which is watered by the waters of the ocean that bears pearls in it, which has spread on the head of Sankara with all its sprouts in the form of virtues and which having, as it has, a stem as big as the lord of snakes is spreading in all quarters with its pollens in the form of snow, sun (light), blooming flowers and brilliant stars.

(His wives) named Såvitri, Lakshmi, and Saiibhågyadevi are like the three powers Will, Knowledge and Action of God.

Sridhara, who is like a light pervading the whole world, appears beautiful with his wives worthy of respect, as does the day with the three Sandhyds.

He (Sridhara) the sun protected by his might the city of the Gods by at once keeping it stable by the power of his *Mantras*, the city where the clouds were broken by the herd of elephants in his army which were as tall as the Tamala trees in Malawa.

He proud of his forts, turned the country of Hammira Raja into a meadow—the country, which trembled as it were under the waves of the sea at the time of the general deluge, the mountains in which were trodden down by the mere falling of his footsteps, and the earth of which was pounded (to dust).

Valla became the *Dwdrapūla* (one who guards the gate) * * * * * Sridhariya was made in his name in the site in the city of Sankara; and he also caused to be made a temple to Sankara called Avanijaya.

The dancing girls of the king * * * who seized a portion of the wealth, and who was wonderful, * * * like the brightness of large jewels which shone like the bow of Indra * * * * mount Meru, whose sight was like the moon * * * * * *.

He was the best of the Brâhmanas and possessed greatness and qualities of one who encourages the Brâhmanas; * * * * * * * * and equal to the grammar of Mâheśvara, had chiefly risen * * * * * * Like some of the Vaiśeshikas.

Whose bent of mind * * * like the Munis.

Splendour * * * * * clouds produced by the constant flow of incessantly burnt incense, * * * * * * *.

* * Valla caused to be built a Matha for hearing Kathas giving spiritual benefit there * * * *.

Then Sri Nivasi who happened to arrive there * * * * by Sridhara * * the so-called learned men who followed the opinions of the rival king * * near the sea.

Meghavâhana * * * the good preceptor of the royal family * . * * * * *.

- * * * Minister who had good intelligence and was a good learned man and whose feet were worshipped by the lord of holy Sannyasis* * *.
- * * Who was like a sea of anger towards the great snake of the Kshayika Vâda * * * * *.
- * * From that time he like the new moon was respected by the Saiva sages.

This eulogy has been composed by one who has destroyed the collection of threads of lotus like hereticisms * * who is pleased with his (king's) devotion, and who has subdued pride.

So long as Vishnu * * so long as speech plays in the circle of the face of the moon * * * *.

These * * fine places were built * * *.

In the year 1273 of the splendid king Vikrama, on Friday the 4th of Vai-sakha Sudi (bright-half) this was done.

May be happy, prosperous, and wealthy.

VII.

Stone-Inscription at Bhardad under Idmanagar of the time of Bhimadeva II.

Dated Samvat 1275.

Bharana is a small village near Khambhalia, a sea-port town in the gulf of Cutch under Jamanagar in Kathiavad. To the west of the village there is a Bava's Matha or monastery wherein there is a small open verandah with the picture of Ganapati on its side. In this side this inscription-stone is built up, having also a cow's figure on it. It measures 15 in. by 8 in. and contains nine lines of which the last two and a few letters in the first and fourth lines have become quite indistinct. It mentions the name of Sri Samatasimha, then governor of Saürashtra sent by Raja Bhimadeva who ruled at Anahilapura. By the order of the governor a Vdo was caused to be made and some part of the transit duties of the village of Bharana was assigned for its maintenance. It is written in Devanagari character, the composition being Sauskrit prose. It gives the year Samvat 1275, A. D. 1219.

TRANSLITERATION.

१	श्रीविकमात् संवत् १२(७)५वर्षे भाद्रपदशुदि · · · · अयेह श्रीमदणहि
२	लपाटकाचिष्टितसमस्तराजावलीसमलकृतमद्वारा—
ą	जाविराजश्रीमद्दीमद(दे)वकल्याणविजयराज्ये श्रीसौ
¥	॰॰॰देशाभियुक्तमहंशी॰॰॰लवः श्रीसाम्बंतसी(सिं)इ
ų	। कस्यादेशेन च विनियुक्तमहं(महान्)श्रीअरिसी(सि)हट.श्रीज
Ę	यसीहाम्यां श्रीमातरादेवीवापिकायाः पत्रशासनं का
હ	रितं ।। तथा स्थानीयेपि पूजार्थं भद्राणकमेडपिकार्याः
	••••••हि•••••देवप्रति••••••।शीपि
٩	***************************************

TRANSLATION.

To-day on the......of the bright half of Bhâdarvâ of the Vikrama Samvata 1275, this inscription was engraved by Mahan Srî Arasimha and Thakar Jayasimha in connection with the Mâtarâ Devi Vâpi, who were appointed to conduct business by the order of Srî Samatsimha Deva, who was appointed in Sorathadesa during the beneficent and victorious reign of Mahârâjâdhirâjâ Srimat Bhimadeva whose court was adorned with a line of all the kings and lived at the splendid Anahilapûrapâṭaṇa. It is to the effect that for the (expenses of) worship of this place from the transit duties of Bharânâ. * * * * *

VIII.

Stone-Inscription at Ratanapura under Jodhapur of the time of Kumarapala.

Ratanapura is a dependency of the Native State of Jodhapur in Mârvâd, west of Rajaputânâ. To the west and outside the town is an old Siva-temple; in the done of which this stone is placed facing inside. It measures 4 ft. -by 1 ft. and contains ten lines of Sayskrit prose in Devanâgari characters. The stone has crumbled down in several parts and thus the first and the seventh lines have become almost illegible. The inscription mentions the publication of a notification by Sri Punapâksha-deva, the holder of the Ratanapura Chowrasi (Chowrasi means a group of eighty-four villages), ordering his subjects to refrain from killing any animal on the amâvâsiâ, i.e. the last day of each of the months and on other special holy days. There is no precise date mentioned in this inscription except that it was composed when Kumârapâla, whose reign extended from A. D. 1443 to 1174, was ruling over the country.

TRANSLITERATION.

१ उँ नमः शिवाय भूभेवःस्वश्चरं देवं बंदे पीठं पिनाकिनं स्मरित श्रेयसे यस्तं ''''''' ······ वर्षाः वर्षाः प्राप्ताः वर्षाः वर्षाः वर्षाः वर्षाः वर्षाः वर्षाः वर्षाः वर्षाः वर्षाः समस्तराजाः । २ विलिविराजितमहाराजाधिराजपरमभट्टारकपरमेश्वरनिवमुजविकम्(म)रणांगणविनिर्विजत '''''' पार्वतीपतिवरलब्धप्रीढप्रतापश्रीकुमारपालदेवकस्याणविजयराज्ये ३ स्वे स्वे वर्त्तमाने श्रीराभुष्रसादावातस्वच्छपुरस्नपुरचतुराशिकायां महाराजभूपालश्रीरायपालदेवान्महासन प्राप्तश्रीपुनपाक्षदेवश्रीमहाराची श्रीगिरिजादेवी संसारस्यासारतां ४ -विचित्य प्राणिनामभयदानं महादानं मत्वा अत्र नगरनिवासी(सि)समस्तस्थाना(न)पीतब्राझणान् समस्ताचा र्योन् समस्तमहाजनान् तांबोलिकान् मकृती(ति)किकृती(ति)नः संबोध्य संविदितं शासनं संप्रयुंजाति यथा अद्यअ ५ माबास्यापर्वणि प्राणिनामभयदानशासनं प्रदत्तं स्या(स्ना)त्वा देवपितृमनुष्यान् —केन संतर्ष्य वारावारः 😶 पूर्देवतां प्रस्व(सा)य ऐहिकपारत्रिकपलमंगीकृत्य प्रेत्य यशोभिवृद्धये जीवस्य अमारिदानं ६ मासे मासे एकादस्यां चतुर्दस्यां अमावास्या(यां) उभयो(:)पश्चे(पक्षयोः)श्रेष्ठतियौ भूसहायशासनोदकपूर्व स्वित्यरंपराभिः प्रदत्तं अस्पदीयभुवि भोक्ता महामात्यः सांधिविप्रहिकप्रतीतस्वपुरोहितप्रभृति ७ समस्तठकुराणां तथासर्वान् संबोधयत्यस्तुवः संविदितं ८ महाजनानां प्रणेन लिख्यते राज्ञा सभयं निप्रहणीयः श्रुत्सा शासनमिदमाचंद्राके यावत् पालनीयं उक्तं च यथा व्यासेन बहुमिर्वसुधा भुक्ता राजिभः सगरादिभिः यस्य यस्य यदा भूमी तस्य तस्य तदा फलं सर्वानित्यं भाविनः ९ पार्थिवेद्रान् भूयो भूयो याचते रामचंद्रः सामान्योयं धर्म्म(से) तुर्दृपाणां काले काले पालनीयो भवद्रिः अस्मद्रांशसमुत्यन्ने। धन्यः कोपि भाविष्यति तस्याहं करसंलग्नो न लोप्यं मम शासनं अमावास्यां पु-ण्यतिथि भांडपजा(ज्वा)लनं च (पौर्विकै:) कुंभकारैश्र नी कार्य १० तासु तिथिष्ववज्ञाविभयः प्राणिवर्धं कुरुते तस्य शिक्षापनांदिश्च द्रश्चत्वारि नड्रुरुपुरवासी प्राग्वाटवंशजः शुभंकराभिभानः सुश्रावंकः सामुधार्मकः तत्सुतौ इह हि योनौ जातौ पृतिगसालिगौ तै(ताभ्यां) कृपा (पया)प्राणिनामर्थे विद्यप्य शासनं ११ 🗀०० स्वहस्तः श्रीपूनपाक्षदेवस्य लिखितमिदं पारि०लक्ष्मीघरसुतठ०जसपालेन प्रमाणमिति॥

TRANSLATION.

Hail! Bow to Siva, who is (called) Pithapinâke, and who moves in the three worlds (called) Bhur, Bhuvar, and Svar, and is remembered by people for welfare * * * * * * * * During the beneficent and successful reign of Râjâ Sri Kumârpâladeva, who looked splendid being surrounded by all the kings, who is the lord of great lords, who is the greatest of all warriors, who is the most powerful, who has been victorious in battles by his own arms * * * * * * * * * and who is very illustrious by the favour of Saṇkara, lord of Pârvati, Sri Punapâkshadeva, who had acquired through the favour of Mahârâjâ Bhûpâl Sri Râyapaladeva a throne in the territory of Ratna-

pura Chowrâsi obtained by the favour of God Śiva, and Mahârâṇi Śri Girijâdevi seeing that there was no good (to be derived) in this world and that to give abhayadâna (immunity from being killed) is the greatest gift, notified throughout the Ratanpura Chorâsi, after informing all the Bhrâhmana inhabitants, the Âchâryas, the Mahâjanas, the Tambolis and those who were in the habit of doing mean deeds, that from this day the holy day of Amâvâsyâ all the animals are ordered to be exempted from being killed.

Having bathed and performed the Tarpana to (satisfy) the Devas, the Manes (ancestors) and the men with X and for the (presiding) gods of the town *; with a desire to gain the good fruits of this world and of others and to increase fame after death, is passed this order, supported as it is by a grant of land, to make a gift of life to animals on the 11th, 14th and 15th days of both the fortnights of each month and on other sacred days. The chief minister who enjoys land from us and our preceptor who is a maker of peace and war and in whom we have trust, and all the Thakores and others are hereby informed that they should be aware of what we this is enforced on the solemn declare to-day; that affirmation of the Mahajanas that the king shall cause (people) to fear by fining (them). This our order shall be obeyed from the day of its being made public till the sun and moon endure. No one shall break (it). It is said in the Mahâbhârata, that Sagara and many other kings enjoyed the earth; whose is the earth for the time being, his is the fruit. Râmachandra often requests all the would-be kings that to act according to (their) religion is the common duty of all the kings, so all of you in your own times should act accordingly. I am connected with those who are my good descendants, so they shall not disobey my order. On the sacred day of Amavasya, not even the potters of this city shall burn their pots. He who will kill any animal on those days disregarding any fear, shall have to pay four Drammas. A citizen of Nådolapûra and of the Prågvåta family, named Subhakara, who was religious and a good Sråvaka, had two sons, Putiga and Saliga. This order favourable to the animals is made public through them. (This sign) is in Punapakshadeva's own hand. This is written by Pâri: (Pârekha) Lakshmidhara's son Tha: (Thâkore) Jasapâla, (and) is witnessed (by him) thus.

IX.

Stone-Inscription in the rains of a Siva temple at Hathamo in Marvad.

The temple of Siva in which this inscription was found is entirely delapidated being situated in the ruins of a village called Kerâdu near Hâthamo under Bâdamer in Mârvad. The stone is built in a pillar but it has crumbled down from the middle and has left a very small portion in a readable condition. No date is found nor is there any thing to show the object of writting the inscription. The only thing worth knowing is the name of king Bhimadeva. The stone measures 17 in. by 4 in. with four lines of Sanskrit in Devanâgari character. The date of this inscription cannot be fixed as there were two kings of the same name, who ruled at an interval of nearly one hundred and fifty years.

TRANSLITERATION.

ę	सराजावळीविरा
ą.	जित्रपूर **********************************
	(प्रौ) ढप्रतापश्रीमद्भीम
₹	देवकत्या '''
	••••• श्रीकरणादिमुद्राव्या
Y	पारान् पारान् महाराजाधिराज
	ैं। प्राप्त के प्राप्त के अपने कि स्वारी जाधिराज्य

This inscription can not be fully made out; the only thing worthy of our notice is the name of Råjå Bhimadeva of Gujaråt.

X.

Stone-Inscription at Verdval under Jundgadh of Bhimadeva II.

Veraval is a small sea-port town on the south-west coast of Kathiavad in the Junagadh territory. In the fouzdar's or Chief Police officer's lodging this stone is lying loose. Its superficial measurement is 21 in. by 17 in. which contains forty-five lines of Sanskrit verse in Devanagari characters. It has lost some of its lower portion, as well as a few letters here and there in other parts. It mentions the names of some kings of Chaulukya dynasty, the last of which mentioned in this inscription is Bhimadeva II, son of Mularaja also called Bala Mularaja, who caused a temple to be built to Somanatha and called it Meghanada. As there is no precise date to be found in it, it can only be said that it must have been written between A. D. 1179 and A. D. 1243, when Bhimadeva II was on the throne of Auahilapura.

TRANSLITERATION.

- १ उँ स्वरित जयोभ्युदयश्च ॥ देयाद्वः कल्किकालकस्पविष्टपी कल्याण्यलीलासुखप्रागरम्यांबुानेथेः सुधांशुरमरी-कारैक
- २ हेतुः शिवः । यस्येच्छापरिणामतस्त्रिजगती जागति निद्राति च प्रालेयांशुवपूरसायनमसौ श्रेयांसि सोमेश्वरः ।।१।। वि

- श्वत्क्वेशांघकारमकरपरिभवा योद्यतान[मिवेंदुश्रेणीनां लालयंत: श्रियमाखिलभवश्रांतिचिच्छित्तये व:। आरक्ता-ग्रांगुलीनामण्णरः
- ४ चिचयोचात्रचश्रीमिरुचैर्मास्वद्धामंडळानां पदनखकिरणाः संतु विश्वेश्वरस्य ॥२॥ मातः सरस्वति मदी-यमुदारकोतिपंकेरुद्धप्रतिममास्यम्लं
- ५ कुरुष्य विश्वेदागंडचरितोपनिषाद्वेत्तानमञ्जेव यावद्यमर्पणमातनोमि ॥३॥ कलौ युगे छुक्षितिपालसुप्तां धर्मस्थिति वीक्ष्य पिनाकपाणि
- ६ : ॥ विचष्ट संकेतवशादिश्वस्यस्थानकोद्धाराधिया निजांशे॥४०। श्रीकान्यकुब्जेद्विजपुंगवानां त्रेताहुताशाधारिता-शुभानां मीमांसया शांतश्
- चां गृहेत्रु निन्येऽवतारं जगतां शिवाय ॥५॥ युग्मं ॥ विद्यादशादौचतुरुक्तराः संक्रमानपेक्षं शिशुरस्य चासीत्
 । पृर्वेण संस्कारवशेन तस्मादेशा
- ८ दर्वती तपसे जगाम ॥६॥ श्रीवीश्वनायवैश्यो बभूव तपसां निधिः स विप्रेद्रः तत्पुरुषराशिशिष्यो मटेमहा-कालदेवस्य ॥७॥ दरमुकुलितनेत्रद्यो
- ९ तिस्चैर्विचिन्वन् किमपि स निरपायं तत्वतादात्त्यमुक्तं (गरिम)गुर्णावलासं श्रीमहानंदरूपं कतिपयदिवसान्वा वत्सरानप्यनेषीत् ॥८॥ ततश्च ॥ यं यं
- १० मंदरमध्यमानविलुळत्प्रत्यार्थपृथ्वीपातिधीरोदार्णवतः संगामा भवंडो ८ परो ८ जायत । यत्राहर्मिदामुक्ते निजवळश्मापाळसीमतिनीवक्ता(क्रा)
- ११ मोजकदम्बकानि कति न व्याकोशलक्ष्मी द्षुः॥९॥तःपालंडविलंडितं परिमृहांश्रंद्रार्द्वच्डामणिस्नातुं श्रीमद-वंतिलंडितेलको देवः स्वकी
- १२ वं पुरं दत्वाः तस्य कुमारपाळनृपतेः सत्योपदेशं मग(ता)िषष्टातारमः । । । । । प्राप्ते ।। पर्पायवरियौरिव शिशावि
- १३ कला पश्चिनीवार्कदीना कदर्पोत्सारीतांगी रतिरिव कमलेवातीरः ''तांगी । जीमूनापालितेव ''''''' पुत्री प्रियस्य मा
- १४ र्गती मार्गमस्मान्त्रिदशगुरुगृहे ऽपत्यतां प्राप्य नित्यं ॥११॥ समस्तसींदर्यविवेकभूमि:प्रतापदेवी गुरुगंडपुत्री।
- १५ गर्चभवेव सीता ॥१२॥ किं लावण्यमहासरःकमिलनी कि कामिनी श्रीपतेः कि वा बालसरस्वती स्मरारिपोः
 पुनः इस्थं वा कविषु
- १६ गवैरहरहः श्राच्यान्वया तर्क्यते कल्याणप्रकरैकसंगमग्रहं सा नंदना भूतळे ॥१३॥ ये चत्वारः सुरपतिगुरोः सूनवः प्रावभूवन् पारावारा इव
- १७ वसुमतीमंडनं श्रीनिधानं । आद्यस्तेषामभवदपरादिखनामा ततो ऽभूद्धम्मादिखो रिपुजनमनोराज्यदुर्दैवसिद्धः ।।१४॥ ततश्च सोमेश्वरदे
- १८ वनामा धर्माध्वनीतो दूरितानुषास्यः।तस्यानुजन्माजित भास्कराख्यः कंदर्प्यदर्प्यापहरूपमाप॥१५॥श्रीकासी-श्वरमालविक्षातिप्रतिश्रासिद्ध
- १९ राजादिभिर्मृपालैरिह धर्मवंधुरिति यःसंपृजितः श्रद्धया।श्रीमद्भाषवृहस्पतिः स जगतीवेद्यां हुताशप्रभः पुत्रै-वेदसमैश्रतुभिरमवद्वय
- २० : स्वयंभूरिव ||१६||देवानांत्रितयं चक्रे त्रिगुणात्मकमेवयः। विदयेवापि सोपानं गात्रोत्सर्गस्य रोधसि।।१७|। अशंसरे त्रिजगतीतिरुका
 - L. 27.

- २१ यमानो देव: स्वयं स तपसानिधिमादिदेश । श्रीसोमनाय इति तं रजनीविरामे स्वप्नेषु विश्वेश्वरराशिसंशं ।।१८॥ तात त्वमस्माकमि
- २२ हावतीर्णस्त्रातुं निजं स्थानकमुग्रतेजाः । अंशस्तदस्मिन्वियपरीतवृत्ताविग्राहितारः प्रभुणा त्वया ते ॥१९॥ युग्मे॥ संचितयन् इत्तमिदं नि
- २३ शाया प्रातःपुनरतत्पतिनाधितः सन् । उद्धर्तुमिच्छन्नमृतांभुसंस्थामायौ वभूयाथ सहस्ररहिमः ॥२०॥ ज्योसना-कलाबानिव चंद्रमौलिः
- २४ शक्ति त्रयीमकंड्नोरुतेजाः । अनन्यरूपप्रतिमानमूर्तिः प्रतापदेवीं दयीतामुवाह ॥२१॥ संजदना द्वासिनभाजि तस्मिन् याते दिवं
- २५ वीरकुमारपाले भ्रुमंगमात्रेण जितारिचक्री अभूव राजा जयपालदेवः ॥२२॥ श्रीसोमेश्वरलोकजीवितमहासुद्रा-पनाय स्थितिः प्रोडू
- २६ त्याजयपालदेवनृपते: प्रौढावचस्तत्वत:। श्रीसोमस्थितिच्छुता प्रमुरिप प्राह्नेन येनेति तं योग्यं गंडपदे चकार नृपति: श्रीगंड
- २७ तिर्थेश्वरं ॥२३॥ श्रीमचतुर्ज्जातकहारवलीविराजितो नायकता प्रपद्य । रेजे पिनाकीव वृषासनस्थः पुरंदरावैः समुपास्यमानः ॥२४॥ त
- २८ स्मिन्नेशमध्यास्य कळावेशांगसंभवे।संहृत्य धर्माविद्विपा(धा)न् राज्ञि याते निजं पदं ॥२५॥ तस्सूनुरभवद्राजाः मूळराजः प्रतापवान् ॥ सोपि
- २९ ॥ • • चौः पूजितं समपूजयत् ॥२६॥ चौछुक्यराजान्वयपूजितस्य यस्यानुभावादवलापि संख्ये । हम्भीर-राजं तरसा जिगाय तस्मान्नकेपासनतः
- ३० •••••(२७)स यया पिनृवात्तस्यादिवीत्किकिविव शिशुः ततःश्रीभीमदेवीभूद्राज्यलक्ष्मीस्वयंवरः॥२८॥ श्रितीशप्रस्तोलमुकुटमणिदीप्रयु
- ३१ ःःःःःःःअपरिचरणनीराजितपदः । प्रतापञ्चालाभिः प्रतिरिपुपुरं दावदहनः प्रफुलुज्यापाराश्रियमृ-दुवहबोऽज्ञुतमहाः ॥
- ३२ *********अगदेव इति प्रसिदः। योबालपोतैःसहितं प्रयताच्छ्रीभीमदेवं समवर्द्धयच॥३०॥यहाहुचंद-द्यमायते
- ३३ · · · · · · ग्यासीत् प्रथिराजरादीराजीविानिश्रीवितशीतरोचिः ॥३१॥ तेनापि जगतीज-श्रुविश्रुपूजाप्रयंचवान् । मुक्ता · · · · · ·
- ३४ ''''''ताय यः ॥३३॥ कृत्वा च मं(ङ)''''''
- ३५ ''''''' । १४ । आदौताबदवाप्य राज्यपदवीं यः कृत्य विताभज्यप्रोप्नि प्र ''''''''''
- ३६ ः । यतिनाविद्यतिस्कृ रित्यादाय सत्यादरात्पुच्य प्र । यतिनाविद्यतिस्क श्रीगंडवि(श्व) । । ।
- ३९ ''''' (परं) परानिरिवेशं वत्पादपंकेरुद्धश्रद्धार्वधुरराज्यलाभव'''''
- ४० ''''' लगेव बंभुरिक्षलाः के के म नीतिदुद्यः ॥३६॥ चौडपृ '''''''' ४१ '''''' (सा)दप्रतिष्ठाम् । साम्ये विख्यातसंवित्सकलसचि ''''''''''

४२	····· प्रियो इतिपर्तेः सींदर्यमिदोमहालं कृ(ति) · · · · · · · · · · · · · · · · · · ·
₹ 8	••••••••••••• छुमाच्चयाभिध इति श्रीगंडिबिः••••••
	······ जीव । नीविग्रहस्यादा·····
¥५	राष्ट्रापारायाच्याच्याच्या । ल विधा पारायाच्याच्याच्याच्याच्याच्याच्याच्याच्याच

- 1. May Somesvara bless you, who is like a Kalpa tree in the Kali-yuga, who is like the moon to the ocean of the excess of happiness consisting of supreme bliss, who is the sole cause of immortality; by whose volition the three worlds awake and sleep and who is the rasdyana (clixir) to (preserve) the body of the moon.
- 2. May the rays of the nails of the reddish fingers, effulgent with high lustre and beauty, of the feet of Viśveśvara, appearing as if tossing about the beauty of a line of moons rising to destroy the deep darkness of the miseries of the world, destroy the whole of your delusion of his world.
- 3. O, mother Sarasvati! adorn this face of mine which is beautiful like a full-blown lotus, as long as I describe the Upanishad of the life of Ganda, the lord of the universe, which destroys all sine.
- 4-5. The Trident-holder (Pinåkapāni Saukara) seeing that religion was disappearing under bad kings in this Kaliyuga, thought of reincarnating a part of himself as was arranged with the desire of repairing his abode, and took birth for the welfare of the world in the house of the best of Bråhmanas in the beautiful country of Kanya Kubja, who had destroyed his sins by offering oblations to the three sacred fires, and whose sorrows were ended by the reflection of the Vedic texts or by the Vedānta.
- 6-7. This Brahmana, who was descended from Sri Visvanatha, who was a treasure of *Tapas* (austerities), who when a child had mastered the fourteen *Vidyds* without teaching by virtue of the residua of former births, and who was a disciple of the devotees in the Matha (Monastry) of the god Mahakaladeva, went to Avanti to practise religious austerities.
- 8. This Brâhmana, passed many days or rather years in meditating hard, with his eyes closed a little, on his identity with the supreme imperishable principle which is the cause of the Gunas in the form of the world, and which is eternal bliss.
- 9. Then from the hostile king-like milky ocean which was agitated when being churned by mount Mandarachala * * became second Chanda. Which of the numerous lotus-like faces of the wives of kings in his army did not bear the beauty of full-blown lotuses when he was shining day and night.

- 10. Sankara, the bearer of the crescent moon on His head, the ornament of Avanti, thinking of the havoc caused by his false doctrines gave correct instructions to king Kumarapala, with the desire of protecting his own city and to the ruler of the Matha * * * *.
- 11-12-13. A daughter by name Pratâpadevi was born in the house of this preceptor of the gods, who was ever in search of her beloved who * * in the (sva) yamvara was like the heavens without the moon, the lotus without the sun, Rati deserted by Kâmadeva, the Kamalâ (Lakshmi), the * * * preserved by the clouds. She the daughter of Guru Ganda, the abode of all beauties and politeness * * * was like Sîtâ, who came forth from the ground of sacrifice, whom of a worthy family and the abode of all blessings centered in one place, the best of poets imagine variously to be a lotus-stalk in the lake of gracefulness, the wife of Sripati (Vishpu)? infant Sarasvati? and * * of Smararipu (Sankara).
- 14. The four sons of the preceptor of the Surapati were like oceans the ornament of the earth and the abode of all wealth and fame. The eldest of them was Aparaditya and from him was Dharmaditya, a great misfortune to the desires of his foes.
- 15. His (sou) was called Someśvaradeva, who well-followed the path of religion and was untouched by sins. His younger brother was called Bhâskara, whose beauty humbled the pride of Kâmadeva.
- 16. The lord of Sri Kasi, the king of Malavadesa, Sri Siddharaja and other kings worshipped him with faith believing him to be the Champion of religion on earth. Sri Bhava Brihaspati, who was on this Vedi-like earth as bright and beautiful as fire, became with his four Veda-like sons a fit object of veneration as Brahma.
- 17. Bhâva Brihaspati established the gods (Brahmâ, Vishnu, and Rudra) having three qualities or properties (Satva, Rajas and Tamas) and caused to be made a flight of steps at (that part of) the bank of the Dehotsarga.
- 18. In the meantime that Sri Somanatha, the ornament of the three worlds, ordered an ascetic named Viśveśvararaśi in a dream at the break of day.
- 19. O child! you, mightily illustrious as you are, are a part of me born here to preserve your own abode, so you—who are powerful enough—will punish those who are hostile or whose conduct is against religion.
- 20. Meditating on what had happened at night, and being prayed to in the morning by the lord of the abode, he, who was desirous of resuscitating this abode of the (god with the) moon shone like the thousand rayed sun.

- 21. He, (Viśveśvararåsi), who had like God Siva lustre and Kalå, who was as brilliant as the sun, and whose body was incomparably beautiful, took for his beloved wife Pratâpadevi who was like the three Śaktis (Prabhâva, Mantra and Utsâha.)
- 22. When Kumarapala, the hero, went to heaven and enjoyed half the seat of Indra, Jayapala, the mere raising of whose eyebrows was sufficient to destroy his enemics, became king.
- 23. (This Sloka [verse] is not quite clear, but the gist appears to be that) as he improved the state of Sri-Soma to please the people of the place at the bold speech of king Jayapála, he was established by the king in the seat of Ganda as Gandatirthesvara.
- 24. He, beautiful with the creeper-like neck-lace of the fine *Chaturjâtaka*, on obtaining the leadership looked as fine as Pinâki (Saukara) seated on his bull and worshipped by Indra and other gods.
- 25-26. When this king who was born from a small part of the Kalâ (of Sankara), who destroyed all difficulties by constantly worshipping Nandiśa (Siva) attained the eternal station (Nijapada), his son king Mularâja, who knew religion and was famous, succeeded him. He also worshipped * * * who was worshipped by * * * *.
- 27. By his prowess,—he, who was worshipped by the family of Chaülukya, even a woman easily conquered king Hamira in a battle, who * * *.
- 28. He (Mularaja) went to heaven even in youth as if he were desirous of (meeting) his father there. Then Bhimadeva became the self-elected husband of Royalty.
- 29. He, who was like the crest-jewel in the diadems of kings, whose feet were adorned by the splendour of * * * who by the flames of his provess was like a forest-conflagration to the cities of his enemies, who was very active and of wonderful power, bore the yoke of royalty.
- 30. * * known as Jagadeva * * who carefully assisted Bhimadeva with his boy-friends.
- 31. His two rod-like hands * * (he) proved a moon to the lotus like queen of Prithirâja (?).
- 32. By him also * * * the conqueror of the world (= was Indra on this earth) spread the worship of Vishnu.
- 33. He, who was wealthy caused to be built a temple to Somanatha called Meghanada * * * * *.

34. Having built a Man(dapa) * * * *

35. Though just after attaining the royal seat he was busily engaged in thinking about the state-affairs * * * often worshipped Sri Ganda Viśveśvara with great respect, who was the ornament of the Brahmanas and who was worthy of being worshipped * * * *

(The eight lines following are totally defaced and they cannot be read.)

XI.

Stone-Inscription at Cambay in Gujarat.

This inscription is found in the temple of Kuntnåtha at Khambhåta, better known as Cambay, the principal place of a small Mahomedan principality of the same name under Khedå collectorate in Gujaråt. It is engraved in a white marble slab built up in the wall on the right side of the entrance. The novel feature of this inscription is that it has been left unfinished. It measures 31 in. by 16 in. with nineteen lines of Sanskrit verse in Devanâgari character giving the names of four personages of the Wâghelâ branch of the Solanki dynasty. The last person named therein is Visaladeva, who was the first Wâghelâ king of Gujarât. As it is incomplete it is impossible to say the date or the probable time of the inscription.

TRANSLITERATION.

- १ ॥६०॥ अर्डे॥ श्रेयांसि मतनोतु वः प्रतिदिनं श्रीनाभिजन्मा जिनो यस्यांकस्थलसीम्नि केशपटलीभिनेद्रनी-लप्रमा ॥ सोत्कंड्र्यपरिरमसंभ्रमजुषः साम्राज्यलक्ष्म्या ••••••• विटं
- २ कंकणकिणश्रेणीय संभाव्यते ॥१॥ द्वेतिव्यात्पार्श्वविभुनैती फणीपतेः सप्तास्यच्डामणिसंकांतः किल योऽष्टमूर्ति-रजनि स्पष्टाष्टकर्मछिदे ॥ यद्भक्तं देशदिगुजनद्वजमभित्रातुं तथा
- ३ सेवितुं यं यत्पादनखाविशाचनुरभूदेकादशांगोऽपि सः ॥२॥ त्रैलोक्यालयसप्तनिर्भयभयप्रप्वसलीलाजयस्त भादुस्तरसप्तदुर्गतिपुरद्वारावरोधांगलाः ॥ प्रीतिप्रोक्षितस
- ४ सतत्वविटिपप्रोद्धृतन्लांकुराः शीर्षे सप्तमुबंगपुंगवफणाः पार्श्वप्रमोः पांतु वः ॥३॥ लोकालोकलसदिचार-विदुरा विस्पष्ट निःश्रेयसद्वारः सारगुणालयिक्तमुवनस्तुलांक्रिपंकेकहः ॥ श
- ५ श्रद्धिश्वजनीनधर्म्मविभवो विस्तीर्णकल्याणमा आद्योन्योऽपि मुदं जनस्य ददतां श्रीतीर्थराजः सदा ॥४॥ दैल्योरिनियतावतारानिरतस्तत्रापि कालंमितं त्राताकेंदुभवान्ववाय
- ृृृृृृृह पुरुषास्तेषि त्रुटरपोरुषाः ॥ कः कर्ता दितिसूनुसूदनामिति ध्यातुर्विधातुः पुरा संध्यांमश्रुलुकाद्धटोभवदिस देल्येः सम कंपयन् ॥५॥ चौलुक्यादमृतः समुद्ररसनोद्धौरकधारयतादुद्ध
 - ७ र्षादुदभुदूरचदभयश्रीलुक्यनामान्वयः ॥ जातास्तत्र न के जगन्न्यजयप्रारंभनिर्दभदोस्तभस्तभिताविश्वविक्रम-चमत्कारोष्ट्रिजता भूभुजः ॥६॥ तेषामुद्दामधाग्नामसमतममदः संपदा ।
- ं ८ सप्रदायैवीरश्रीदर्णणानां दिवसपतिरिव बोतकोऽभूत्।। राजाणीराजनामा रणरुघिरनदीशोणमणीधिमरणो भारैद्विरुक्लैणसाद्रांजननयनभवेः स्वामतामानयद्यः

- ९ ॥७॥ यस्यासिः समरांवरं नुधरवद्वाराप्रपातैरिपुस्त्रीगंडस्तनीमित्तिचित्ररचनाः स्मर्तेव्यमात्राः स्कन् तेनेकामापे तां मतापतिङ्कतं यस्यायुतिर्धोतेतेयापि स्थाणुळळाळळोचनदिनस्वाम्यौर्धवन्दिच्छ ।
- १० लात् ॥८॥ अंगचगीमतरंगितरंगा रंगदुल्वणांगुणप्रगुणश्रीः ॥ राजनीतिरिय यस्य नरेदीर्वलुभाज्जनि सळक्षणदेवी ॥९॥ तस्मिन्निदुकलोपदंशकसुधाकल्पदुदक्तासवस्वादेभ्यो युवधृजनाधरर
- ११ सं संबुध्यमानेऽधिकं ॥ तलुत्रोलवणाव्धितीरविळसद्वीरप्रणादो जयपासादो लवणप्रसादन्द्रपतिः पृथ्याः प्रयोदे पतिः ॥१०॥ रणप्रणुत्रारिमनः प्रसादः सधर्मकर्म्मारिधवपसादः
- १२ दानप्रतानश्चतित्रसादः कस्यानमस्यो लवणप्रसादः ॥११॥ खेदौ चेदीश्वरीभृदुरभयतरलः कृंतलः कामरूपः काम निष्कामरूपः कलदकलहयञ्जेदशीणी दशाणः ॥ कांबोजस्तु
- १३ ढादोज:स्थितिरतिसरलः केरलः सूरसेनस्वामी निःश्र्रसेनः प्रसरित परितो यत्र दिग्जैत्रयात्रे ॥१२॥
 रम्यसर्वविषयाद्गृतलक्ष्मीकाननाशिखरिजातिमनोन्या(का) ॥ प्रेयसी मदनदेवीरमंदं त
- १४ स्य संमद्मदत्त महीव ॥१३॥ किंनोऽस्यप्तत्याथ निःर्जरतया मृत्युंजयत्वेन वा नित्यं दैत्यजयोद्यमेन नयतः प्राणप्रियाकेस्ययः ॥ इत्यत्ति सुसदारणैर्त्नुजनुर्निर्दोरणैद्दरणैर्द्धपत्यत्र
- १५ सुतोऽस्य वीरधवलो मारं त्रभार क्षितेः ॥१४॥ श्रीदेच्या नव्यन्तीलोत्पलदलपटलीकस्पिताकोलिशस्यास्कु-क्लंद्वाहष्मवन्होर्निखिलारिपुवनप्रोषिणो धूमपंक्तिः वीरत्वे दृष्टिदोषोङ्ग्
- १६ विकलयक्ती कव्जलस्यांकलेषा(खा) पाणौ कृष्टारिलक्ष्याः क्षयतरकवरी यस्य रेजेसियष्टिः ॥१५॥
 भृषस्यास्य प्रतापं भूवनमभिभविष्यंतमत्यंततापं जाने क्वानेन मत्वा पृथुदवयुभिया पूर्वमेव प्रतेने ॥
- १७ विन्हिवेदमोग्रभाले शशिकरीशशिरस्वर्धुनीसंज्ञिधाने वार्द्धांवीर्थे निवासं पुनरिह मिहिरो मज्जनोन्मज्जनानि ॥१६॥ गौरीमृतमूजगमक्विरा रुचिपीतकालकृष्टघटा ॥ अकलंकितविष्ठुत्यविधुर्यत्की
- १८ त्तिर्जयित शिवम् तिः ॥१७॥ बहुविष्रहसंगरिवतमहसा धनपरमहेलया श्रितया । जयलश्रम्येव सदेव्या वयजलदेव्या दिदेव नरदेव(:) ॥१८॥ तरिमन् शंभूसभासदां विद्धित श्रीद्रप्रमाद्रप्रभाषाग्भारैः परमेश
- १९ दर्शनपरानंदरपृशां विस्मयं ॥ तज्जन्मा जगतीपतिविजयते विश्वत्रयीविश्रुतः ॥ श्रीमान् विश्वलदेव इत्य-रिवलस्वतिषु शस्यं क्षिपन् ॥ १९ ॥ यं युद्धसज्जिमिव चापघरं निरीक्ष्य स्वप्ने विपक्षनृपतिः प्रति (अशुरं) ॥

- 1. Bow to the sages (Arhantas). May (Risabhadeva) Jina, born of the navel always be for your welfare; the curls of hair, rivalling or mixed with the lustre of Indranila jewel falling on whose shoulders, appear as if they were marks caused by the natural wristlers on the wrists of Paramount Royalty who is in the habit of embracing (him) with great eagerness.
- 2. May Parsvanatha protect you, who as it were assumed eight forms for destroying the eight sins when his form was reflected in the seven crest-jewels on the heads of the Seshanaga who came to bow to him: Seshanaga also in his turn assumed as it were eleven forms, being reflected in the nails (of his feet), to protect the groups of devotees residing in all the ten directions.
- 3. May the seven hoods of Seshanaga, spread over the head of Sri Parsvanatha, protect you,—hoods which are like so many pillars of conquest made in

sport, as it were, to allay all fears by ensuring the safety of the inhabitants of the three worlds, which are like so many bolts to secure the seven gates of the way to hell difficult to go through, and which are like so many buds of the tree of the seven elements* watered by love.

- 4. After him, may the first Tirtharâja ever give joy to men:—Tirtharâja who knows all that passes between the two mountains Loka and Aloka (i. e. the world), who is an open door to final beatitude, who is the (store) house of good qualities, whose lotus-like feet are worshipped by the three worlds, who is always full of merits resulting from religious duties common to all men, and who appears beautiful on account of the wide spread lustre of his beneficence.
- 5. Vishuu the enemy of the *Daityas* assumes certain incarnations which also come to an end in short time. The kings of the solar and lunar races, who can protect, lose their manliness. Who, then, will destroy the son of Diti?—Once upon a time when Brahmā was thus thinking a warrior suddenly came out of the Chuluka (water he held in his hand) while performing *Sandhyā*, shaking his sword with the *Daityas*.
- 6. From Chaülukya, who was all full of over-flowing valour and who saved the ocean and earth, descended the fearless race of the Chaülukyas. What kings of this race were not well-known by the way in which they held the whole world in surprise with their pillar-like hands ever setting about the conquest of the three worlds and yet remaining without any pride?
- 7. In this line of glorious fame flourished king Arnorâja, who like the sun gave light by his brilliant manners to the mirror-like splendour of brave men whose bravery was of the highest kind. He changed the waters of the sea into black, they being formerly red by the flowing into it of the rivers of blood shed in battlefields, by mixing with it the thick soot which flowed down (with tears) from the eyes of the wives of his enemies.
- 8. Whose sword, with its incessant sharp falls like those of rain from a cloud, making the paintings on the forehead and ibreasts of the wives of his enemies a thing of the past, has spread such a brilliant lightening that its brilliancy can still be seen in the form of the eye of Siva on his forehead, of the sun, and of the Vadavânala (the great fire in water.)
- The king had for his wife Salakshuadevi, who like Rajaniti (policy of a king) is full of pure parts, and the glory of whose great virtues is immense.
- 10. When he (Arnoraja) preferred the taste of the nectar on the lips of the heavenly nymphs to the taste of the nectar of the moon-beams and of the juice extracted from the Kalpa tree, his son Lavanaprasada, whose cry of valour

[·] The सहपदार्थोंs are what are popularly included in the सहमंगी or साद्वाद.

resounded on the coast of the Lavana Samudra, and who was like a palace of victory, became king.

- 1i. Who will not consider Lavanaprasåda worthy of respects—Lavanaprasåda who put an end to the joys of bis foes in battle-fields, who gained the favour of Siva by religiousness and good deeds, and who destroyed the difficulties of the Brâhmanas by his far extending gifts.
- 12. When he (Lavanaprasada) set out for conquest in all directions, the king of Chedi took fright, the king of Kuntala began to roll in great fear, the king of Kamarupa became devoid of Kamarupa (all beauty), the lord of Dasarna was, as it were, torn up by the hoofs of the horses of battle (?), the strength of the king of Kamboja was broken, the king of Kerala became pliant, and the lord of Surasena was left with his army devoid of all valour.
- 13. Lavanaprasada was proud of his dear wife Madanadevi as well as of his dear land; the former was in every way beautiful, and had a wonderfully beautiful face, and would please his mind like Pârvati. The latter also had beautiful countries on it, had wonderfully beautiful forests, and different kinds of beautiful mountains.
- 14. What even if we are not obliged to sleep! what even if we do not get old! and what even if we have conquered death! when we are unable to enjoy our dear wives on account of being always engaged in conquering the demons. When he (Lavanaprasada) went to the gods to overcome these their difficulties by fighting fierce battles, in which the demons were killed, his son Viradhavala began to bear the burden of this world.
- 15. His sword shone, like a bed for the sporting of Sridevi made of the newly blossomed blue lotus-flowers, like a line of smoke issuing from the strong fire of the warmth of the arms moving on all sides to burn the forests in the form of hordes of (his) foes, like a line of soot made to keep off the influence of the evil eye, and like the loosened braid of hair of the Lakshmi of his enemies dragged with his hands by the hair.
- 16. I believe (the writer says) that it is on knowing by intuition that the provess of this king is of great heat, overpowering the world and fearing of the possible burning, that the fire found out from the first a resting place in the forehead of Siva near the moon and the cool Ganga, that the Vadavanala went to live into the ocean and that the sun began to dive and redive into the ocean.
- 17. His fame is like the body of Siva; because the body looks beautiful with Gaüri (wife of Siva), the Bhutas (spirits) and the serpents and with the lustre of the Kdlakula poison drunk off with pleasure and with the spotless L. 28.

(new) moon. So his fame appears beautiful with the serpents made all white, with having destroyed all darkness and with having made even the moon spotless.

- 18. He (Viradhavala) appeared beautiful with his wife Vayajaladevi, who was like the goddess of victory, as the goddess is served by the brilliancy acquired from a large number of battles and by all the best kinds of sports, (while) she (Vayajaladevi) is served by many best women whose beauty is enhanced by their beautiful limbs.
- 19. When he (Viradhavala) went to astonish by his great heroism the members of Siva's assembly, who enjoyed the greatest pleasure of seeing the Parameśvara (great god), his son Visaladeva, whose power was known in the three worlds and who darted a thorn in the hearts of his enemies, became the lord of the earth.
- 20. Seeing him in their dreams with his bow ready for a battle, the hostile kings * * *

XII.

Stone-Inscription at Delavață on Mount Âbu of Viradhaval.

Dated Samvat 1287.

The temple of Adinatha at Delavada on Mount Abu contains this inscription cut into a white marble slab measuring 36 in. by 22 in. It is built up in the southern wall of the temple and has thirty-three lines of Sanskrit in Devanagari character. It mentions the building of a Jain temple to Neminatha by the celebrated Jains Vastupala and Tejapala, ministers to Waghela Rana Viradhavala whose father Lavanaprasada was a tributary king and minister of Bhimadeva II. Lavanaprasada also had for his contemporary Somasimhadeva, chief of Sirahatti probably Sirohi, who appears to have made the grant of a village named Havani in his territory for the maintenance of the temple. The date of the inscription is Samvat 1287, A. D. 1231, the time when the power of the Solanki kings at Anahilapur was moving and other branches of the family were coming into power, of whom the Waghela at last got the upper hand.

TRANSLITERATION.

- १ दं ॥ जैनमः प्राप्त प्राप्त १२८७ वर्षे छोकिक फाल्गुनवंदि ३ रबौ अबोह श्रीम-दणहिलपादके चौलुक्यकुलकमलराजहंससमस्तराजावलीसमलंकृतमहाराजाधिराजशीस प्राप्त श्रीस
- २ विजयिगं पार्याप्य प्राथिति । श्रीविश्व विजयिगं पार्याप्य प्राथित । श्रीविश्व विजयिगं पार्याप्य प्राथित । श्रीविश्व विजयिगं । श्रीविश्व विजयिगं प्राथित । श्रीविश्व विजयिगं । श्रीविश्व विष्य विष्य । श्रीविश्व विष्य विष्य विष्य विष्य । श्रीविश्व विष्य विष्य विष्य विष्य । श्रीविश्व विष्य विष्य विष्य विष्य विष्य विष्य । श्रीविष्य विष्य विष्य विष्य विष्य विष्य विष्य । श्रीविष्य विष्य । श्रीविष्य विष्य वि

- ४ चंडप्रसादात्मजमहं० श्रीसोमतनुज ठ०आसराजभार्या ठ०श्रीकुमारदेच्या: पुत्रमहं श्रीमछुदेव संघपतिम हं श्रीवस्तुपालयोरनुजसहोदरअ्ञातृमहं०श्रीतेजःपालेन स्वकीयभार्यामहं०श्रीअनुपमदेच्यास्तत्कुक्षिसं
- ५ मवितृपुत्रमहर्वशील्णसिंहस्य च पुण्ययशोभिवृद्धये श्रीमदर्वृदाचलोपरि देउलवांडांश्रामे समस्तदेवकुलि कालंकुतविशालहिस्तशालोपशोभितं श्रीलृणसिंहवसंहिकाभिधानं श्रीनेमिनायदेवचैत्यमिदं कारितं
- ६ प्रतिष्ठितं श्रीनागेंद्रगळे श्रीमरेंद्रसूरिसंताने श्रीद्यांतिसूरिक्षिष्यश्रीआणदसूरिश्रीअमरचंद्रसूरिपद्वालंकरण प्रमुश्रीहरिमद्रसुरिक्षिप्यैः श्रीविजयसेनसूरिभिः ॥द॥ अत्र च धर्मस्थाने कृतश्रावकगोष्टिकानां नाम
- ७ तद्यया मर्हे श्रीमलुदेवमहं श्रीवस्तुपालमहं श्रीतेजपालप्रभृतिभातृत्रयसंतानपरंपरया तथामहे श्रील्ण-सिंहसक्तमातृकुलपक्षे श्रीचंद्रावतीवास्तन्यमाग्याटहातीयठ०श्रीसांवदेवसुतठ०श्रीसालिगतन्जठ०
- ८ श्रीनागरतन्यठ०श्रीगांगापुत्रठ०श्रीधरणिगभ्रातृमहं०श्रीराणिगमहं०श्रीळीला तथाठ०श्रीधरणिगभायामहं०श्री विहुलदेविकुक्षिसंम्तमहं० श्रीअनुपदेविसहोदरभ्रातृठ०श्रीलीम्बसिंहठ०श्रीलाम्बसिंहठ०श्रीकहरू
- पार्योगहं ० श्रीलीलासुतमहंश्रील्णसिहतथा भ्रातृष्ठ ० जगसिहठ ० रत्नसिहानांसमस्तकुटुम्वेन एतदीयसंततिपरं
 परयाच एतिहमन् धर्मस्थाने सकलमिरनप्नपूजासारादिकं सदैयकरणीयं निर्वाहणीयं च ॥ तथा ॥ १०
- १० श्रीचंद्रावत्याः सत्कसमस्तमहाजनसक्रजाजनैत्रत्योष्टिकप्रभृतिश्रावकसमुदायः तथा उवरणीकीसरउलीशा-मीयप्राप्वाटका०श्रेरासलउ०आसधरतथा ज्ञा०माणिमद्रउश्रे०आवहाणतथा ज्ञा०श्रे०देव्हणट०सीम्बसि
- ११ हघक्केटबातीयक्षे०नेहाउसाल्हा तया बा०धउछिगउ० आसचंद्र तथा बा० श्रेवहुदेवउ०सीमप्राग्वाटबातीयपुनाउ०सा सावडउ०श्रीपाल तथा बा० श्रेजींदाउ०पाल्हणधक्कटबा०श्रेपासऊ०सादाप्राग्वाटबातीयपुनाउ०सा
- १२ स्हा तथा श्रीमालज्ञा ०पूनाऊ ०साल्हाप्रभृतिगोष्टिका अमीभि: श्रीनेमीनाधदेवप्रतिष्ठावर्षश्रीध: यात्राष्ट्राही कार्या देवकीयचैत्रवर्दी ३ चृतीयादिने स्तपनपुचाद्युत्सवः कार्यः ॥ तथा कासद्रदश्रामीयउएसवालज्ञा
- १३ तीयभेऽसौहियउ०पाल्हण तथा झा०थे०सलखणउवालणप्राग्वाटझा०थे०सांतुयऊदेल्हुय तथा झा०थे०गो-सलट ितथा झा०थे०कोला ऊ०आम्याबा तथा झा०थेपानचंद्र उ०पुनचंद्र तथा झा०थे० जसधीर उ०ज
- १४ गा तथा ज्ञा॰ब्रहादेव उ॰राव्हा श्रीमालज्ञाकहुडुयराउकुलधरप्रभृतिगोष्टिका अमीभिस्तथा ४चतुर्थादिने श्रीनेमीनाथदेवस्य द्वितीयाष्टदीकामहोत्सवः कार्यः ॥ तथा ब्रह्माणवास्तव्यप्राग्वावाटकातीयमहाजनी
- १५ आभिग उ॰पनड ऊएसवालङा०महा०भाधा ऊ०सागर तथा ज्ञा०महा०साहा उ०वामदेव प्राग्वाटणा० महा० पाल्हण उ०उदयपाल इसवालञ्चा०महा०आवोधन उ०अगसिंह श्रीमालञ्चा०उ०महावीसल उ०पासदेव प्रा
- १६ ग्वाटज्ञा०महावीरदेव उ०अराँसह तथा ब्राश्रेधणचंद्र उ०रामचंद्रप्रभृतिगोष्टिका ॥ अमीभिस्तथा ५ पंच-मीदीने श्रीनेमीनाथदेवस्य तृतियाष्टाहीकाममहोत्सवः कार्यः, तथा वउलीव्रामीयप्राग्वाटज्ञातीयश्रेसा
- १७ जणउपासवीर तथा बा॰श्रेवोहडीउपुना तथा बा०श्रेजसङ्घयउजेगण तथा बातीयश्रेऽसाजणऊसीला तथा बापासीलउपुनुय तथा बाश्रेराजुयउसावदेव तथा बादुगसरणउ०साहणीयउइसवाल ९
- १८ श्रेसंधीरणउगुणचंद्रपाव्हा तथा श्रेसोहीउआम्बेसर तथा श्रेसेनाउ०खासणसथा ता०श्रे०सलखणउ०महंकोगा तथा त्राश्रे०देवसुयारउ०आसदेवप्रभृतिगोष्टिका अमीभिस्तथा ६ पष्टीदीने श्रीनेमीनाथदेवस्य चहुर्योष्टा-हिकामहोत्सवः कार्यः ॥ तयामुडस्थलमहातीर्थवास्तव्यप्राग्वाटक्वातीय
- १९ श्रेसंधीरणउ०गुणचंद्रपाल्हा तथा श्रेसोहीउआम्बेसर तथा श्रेजेजा उ०खाखण तथा फीळीग्रामवास्तव्यश्री मालकाव्वापळगाजणप्रमुखगोष्टिका: । अमीमिस्तथा ७सप्तमीदीने — श्रीनेमीनाथदेवस्य पंचमा-ष्टाहिकाम

- २० होत्सनः कार्यः॥तथाहंडाउयप्रामनेडवाणीग्रामवास्तव्यश्रीमालज्ञातीयश्रेःआम्बयउ०जसरात्या ज्ञा०श्रे०लखम-मणउ०आसु तथा ज्ञा०श्रेआसलउ०जगदेव तथा ज्ञा०श्रेसमीगउ०घणदेव तथा ज्ञा०श्रे०जिणदेवउजाला
- २१ प्राग्याटकाः श्रे॰आसलउसादाश्रीमालकाश्रेदेदाउ०विसल तथा ज्ञा०श्रे०आसघरउ०आसल तथा का०श्रे० थिरदेत्रउ०वीडुय तथा ज्ञा०श्रे०हरीआउ हेसाप्राग्याटज्ञा०श्रे०लखमण
- २२ उ०कडुयाप्रभृतिगोधीकाः । अमीभिस्तथा ८अधर्मीदिने श्रीनेमीनाधदेवस्य पष्टाहिकामदोत्सवः कार्यः ॥ तथा मडाइडवास्तव्यप्राग्वाटक्वातीयश्रे०देसऌउ०ब्रह्मसरणु तथा ज्ञाजसकरउ० श्रे०धणीया तथा ज्ञा०श्रे०
- २३ वेब्हणउ०आव्हा तथा ला० बालाउ०पद्मांतह तथा ला०भेआयुगउ०वोहडी तथा ला०भे०केशरीउ० पुनदेव तथा लाभे०बीहुयउसाजण तथा ला०भे०पाऊयउ०जिणदेवप्रभृतिगो ष्टीकाः अमीभिस्तथा नवर्मादीने
- २४ श्रीनेमीनाथदेवस्य सहस्यष्टाहिकामहोत्सवः कार्यः ॥ तथासाहिलवाडावास्तव्यउइसवालद्वातीयश्रे०देव्हाउ० पाव्हणश्रे०नागदेवउ०आस्वदेवश्रेकाव्हणउ०आसलश्रे०वोहीथउ०लाखणश्रे०वसदेवउ०वाह्यश्रे०
- २५ सीव्हण्ड व्देव्हण्श्रेव बहुदाश्रेव नहभाराउव भणपालश्रेव पुनीगडव्याघाश्रेवपोमलउव्यहदाप्रभृतिगोष्टिका अमीमिस्तया १०दशमीदिने श्रीनेमिनाथदेवस्य अष्टमाष्टाहिकामहोत्स्यः कार्यः तथा श्रीअर्युदीपरि देलवाडी
- २६ वास्तव्यसमस्तश्रावकैः श्रीनेमिनाथदेवस्य पंचापिकल्याणीकानि यथा नित्यं म(वेयुस्तथा) प्रतिवर्षं कर्त्तस्यानि एवमियव्यवस्था श्रीचंद्रावर्तापतिराजकुलश्रीसोमासहदेवेन तथातस्पुत्रराज०श्रीन्हडदेवप्रमुखकुमारैः स-मराजलोकैस्त
- २७ था श्रीचंद्रावतीयस्थानपतिमद्वारकप्रभृतिकविलासत्याग्गुलीबाह्मणसमस्तमहाजनगोष्टिकेश्च तथा अर्युदाचलो-परि श्रीअचलेश्वरशीवशिष्ट तथा संनिहितबामदेउलबाडाबामशीश्रीमातामहबुब्रामआयुयाबामनरासा-ष्रामउ०
- २८ मरङ्ग्रामेसीहरग्रामसालग्रामहेठउजीग्रामआखीग्रामश्रीधांध्रक्षेथ्यरदेवीयकोटडीग्रमृतिद्वादश्रग्रामेषु संतिष्ठमा-नस्थानपतितपोधनगूर्गालेब्राझणरावीयधभृतिसमस्तलोकैस्तथा भालीसाडाप्रभृतिग्रामे संतिष्ठमानश्री-प्रतिहा
- २९ रविंशीयसर्वराजपुत्रेश्च आत्मीयात्मीयस्वेछया श्रीतेमिनाथदेवस्य 'मंडपे समुपविश्योपविश्य' महंश्रीतेजःपाल-पार्श्वावस्थीयस्वीयप्रमोदपूर्वकं श्रील्यासिहवहिकाभिधानस्यास्य धर्म्मस्थानस्य सर्वोपि रश्लोपचारः स्वी-कृतः ॥ तदेवदा
- २० त्मीयवचनं प्रमाणीकुर्वद्भिरेतैः सर्वेरिष तथा एतदीयसंतानपरंपरया च धर्मस्थानमिदमाचंद्राके यावत्परि-रक्षणीयं ॥ यतः किमिहकपालकमंड लुबल्कलसितरक्तपटजटापटलैः वृतमिदमुब्ब्बलमुन्नतमास्यं प्रति-पन्नं निर्वणं(निर्वहणीयं)
- ॅ३१ तथा मद्दाराजकुलश्रीसोमसिंधदेवेन अस्यां श्रील्णासिंहबहिकायां श्रीनेमिनाथदेवस्य पूजोपचारार्थे वाचिरह-ट्यां हवाणीग्रामः शासनेन प्रदत्तः ॥ पंचश्रीसोमसिंहदेवाभ्यर्थनया प्रमारान्वयिमिराचंद्राक्कं यावत् प्रातेपाल्यं
- ३२ क्षेत्रंजैनमितिप्रसिद्धं महिमाश्रीशुद्धसिद्धोगिरिः श्रामान् रैवतकोपि वित्रविद्वितक्षेत्रं विमुक्तेरिति तद्वत् क्षेत्र-मिट द्वयोरिप तथाः श्रीअबुंदस्तत्मसुसंजाते कथमन्यथा समसीमे श्रीआदिनेमिस्वयसंसाः
- ३३ मः प्रजीतेशदृष्टावि वायने मयने तवास्मिनपूर्वपरंचवीदृष्टि प्राः प्रिक्षिवश्रीव्रव्यवृद्सुरारीणासु ० (सिंदराज) विश्वपित्र विष्यपित्र विष्यपित्र विष्यपित्र विष्यपित्र विष्यपित्र विष्य

Bow To-day on Sunday the 3rd of Falguna Vadi (darkhalf) of the (Laükika) popular Samvat 1287, during the victorious reign of Raja of splendid Agahilapurapattaga, who was like a swan in the lotus-like family of the Chaülukyas and who was adorned by lines of all other kings and was the great lord of them all, During the victorious reign of the great Mandalesvara Rajakula Sri Somasinhadeva born in the family of Sri Dhûmarâja who came out of the fire of the sacrificial Kuṇda of Sri Vasishtha Rishi; by the favour of his great lord Sri Bhimadeva When the charge of the seal of the Maha Mandalesvara king Viradhavala, the son of the Maha-Mandalesvara king Lavanaprasada born in the family of the Chaülukyas, was in the hands of Thakara Sri Chanda of the Pragyata caste, an inhabitant of Anahilapura Mahan (Mehtâ) Tejapâl the half brother of the two brothers Malladeva and Vastupâla the sons of Kumâradevi the wife of Thakara Sri Ásarâja son of Mahan (Mehta) Soma, son of Chandaprasada, caused for the increase of merits and fame of his wife Anupamadevi and her son Lunasinha to be built this temple of Sri Neminatha Deva in the town of Deulayâdâ on the beautiful mount \hat{A} bu adorned with the lines of all the families of gods and (also) with a large stable for elephants called Sri Lunasioha Vasanhika. It was established by Sri Vijayasenasuri, a disciple of the god-like Sri Haribhadrasuri an ornament to the seat of Sri Anandasuri and Sri Amarachandrasuri the disciples of Sri Santisuri, descended from Sri Mahendrasuri of Sri Nêgendragachha.

The names of the Śrâvaka Coshtikas (Shethias or Mahajanas) of this temple, are as follow: -- Mahan Śri Malladeva, Mahan Śri Vastupāla descendants of the three brothers Mahan Sri Tejapâla and others; Mahan Sri Lugasinha's relatives on the mother's side, Mahan Sri Râniga and Mahan Sri Lilâ brothers of Thakar Sri Dharaniga son of Thakar Sri Gângâ son of Thakar Sri Nâgara son of Thakar Sri Såliga son of Thakar Sri Såmvadeva of the Prågvåta caste (and) an inhabitant of Śri Chandravati; also Thakar Śri Khimvasinha had Thakar Śri Amvasinha brothers of Mahan Sri Anupamadevi being born of Mahan Sri Vihuladevi wife of Thakar Sri Dharaniga; the whole family and descendants of Mahan Sri Lunasiyha the son of Mahan Sri Lilâ, the wife of Udala, and (his or her) brothers Thakar Sri Jagasinha and Thakar Ratnasinha. All these should bathe and worship (the idols) and maintain this religious institution. And all the Mahajanas of Sri Chandravati and all the Goshtikas of the Jain temples and the Srâvaka community of Sri Chandrávati as well as Setha Râsala and Ásadhara of the Prâgvâta caste inhabitants of Uvarani and Kisaruli, and Jpâti Manibhadra Setha Alhana, Juáti Setha Delhana, Khimvasinha, Setha Nehâ and Sâlhâ of the Dharkvata caste, Juâti Dhaüliga, Asachandra, Juâti Setha Vahudeva and Soma,

Setha Såvada and Sripåla of the Prågvåta caste, Jnåti Setha Jindå and Pålhana, Setha Påsu and Sådå of the Dhakvata caste, Punå and Sålhå of the Prågvåtå caste and Punå and Sålhå of the Srimåla caste, and other Goshtikas, &c., should perform the yatras on the anniversary day being the first day of the week of the establishment of Sri Neminåtha, i. e. on the 3rd of Chaitra Vadi (darkhalf) by bathing, worshipping and making festivities.

In the same way the second day of the week being the 4th (of Chaitra Vadi) should be kept as a great holiday by Sohi and Palhana the Sethas of the Osvala caste and inhabitants of Kasadrada, the Jnati Setha Salakhana and Valana, Setha Santuya of the Pragvata caste, Udelhuya, Jnati Setha Goshala and Alha, Jnati Setha Kola and Amva Jnati Setha Panachandra and Punachandra, Jnati Setha Jasadhira and Jaga, Jnati Setha Brahmadeva and Ralha, Kahudu, Yara and Kuladhara of Srimala caste &c., and other Goshtikas.

The third day of the week being the 5th (of Chaitra Vadi) should also be observed in the same way by Âmiga and Punada, the Mahâjanas of the Prâgvâta caste and inhabitants of Brahmâṇa, Mahajana Dhâdhâ and Sâgara of the Osvâla caste, Jṇâti Mahâjanas Sâdhâ and Vâmadeva, Mahajana Pâlhaṇa and Udayapâla of the Prâgvâta caste, Mahâjana Âvodhana and Jagasinha of the Osvâla caste, Mahâjana Visala and Pâsadeva of the Srimâla caste, Mahâjana Viradeva and Arasinha of the Prâgvâta caste, Jṇâti Setha Dhanachandra and Râmachandra, &c., and other Goshtikas.

The fourth day of the week being the 6th (of Chaitra Vadi) beginning with the birth-day of Sri Neminâthaji shall be observed in the same way as a day of great festival by Setha Sâjaṇa and Pâsavira of the Prâgvâta caste, Jnâti Setha Vohadi and Punâ, Jnâti Setha Jasduya and Jegaṇa, Jnâti Setha Sâjaṇa and Solâ, Jnâti Pâsila and Punaya, Jnâti Setha Râjuya and Sâvadeva, Jnâti Dugasaraṇa and Sâhaṇiya, Setha Salakhaṇa and Mahan Jogâ of the Osvâla caste, Jnâti Setha Devakuyara and Âsadeva and other Goshtikas inhabitants of the town of Dhaüli.

The fifth day of Sri Neminâtha being the 7th (of Chaitra Vadi) should be in the same way observed as a great festival by Setha Saudhirana and Gunachandra of the Pragvâta caste, Setha Sohi and Amesvara, Setha Jejâ and Khâkhana, inhabitants of Mundasthala, a place of great pilgrimage; and by Setha Bâpala and Gâjana of the Srimâla caste and other Goshtikas, inhabitants of Filigrâma.

The sixth day of Sri Neminâthaji being the 8th (of Chaitra Vadi) should also be observed as a day of great festival by Setha Âmvaya and Jasarâ of the Srimâla caste Jņâti Setha Lakhamana and Âsu, Jņâti Setha Âsala and Jagadeva, Jņâti Setha Suniga and Dhanadeva, Jņâthi Setha Jinadeva and Jâlâ, Setha Âsala and Sâdâ of the Prâgvâța caste, Setha Dedà and Visala of the Srimâla caste, Jņâti

Setha Asadhara and Asala, Jnåti Setha Thiradeva and Viduya, Jnåti Setha Gunachandra and Devadhara, Jnåti Setha Haria and Hesa, Setha Lakhamana and Kaduya of the Pragvata caste and other Goshtikas, inhabitants of the towns of Hadaüda and Davani.

The seventh day of Sri Neminâthaji being the 9th (of Chaitra Vadi) should also be observed in the same way as a day of great festival by Setha Desala and Brahmasaranu of the Prâgvâta caste inhabitants of Madâhada. Juâti Jasakara and Setha Dhaniâ, Jnâți Setha Velahana and Âlhâ, Jnâți Setha Vâlâ and Padamasimha, Juati setha Avuya and Vohadi, Juati setha Kesari and Punadeva, Jņāţi Śetha Viduya and Sājana, Jnāti Setha Pāhnya and Jinadeva and other Goshţikas. The eigth day of Śri Neminaţhaji being the 10th (of Chaitra Vadi) should also be observed in the same way as a day of great festival by Setha Delhâ and Pâlhana of the Osvâla caste inhabitants of the Sâhilavada, setha Nâgadeva and Âmvadeva, šetha Kâlhana and Âsala, šetha Volátha and Lakhana, šetha Jasadeva and Vâhada, šetha Silhana and Delhana, Setha Bahudâ, šetha Nahadhara and Dhanapala, Setha Puniga, and Vagha, Setha Somala and Vahada and other Goshtikas inhabitants of Sähilaváda. All the Sravakas residing in Delavada on mount Abu should annually observe the beneficent five (Niyamas) regulated observances of Sri Neminathadova as usual. This arrangement to follow all the observances connected with this place of religious worship named sri Lunâsimha Vasahikâ has been agreed to, of their own pleasure, by Râjakula śri Somasimhadeva, king of Chandravati, his sons Prince Kanhadadeva and others, all the inhabitants, (Sthanapati?) Bhattarka and other Kavilasa and Gugali Brâhmanas residing at Chandravati, all the Mahajana Goshtikas; by the Tapodhana and Gugali Brâhmanas, Raviyas and other people residing in the twelve villages of Šri Achalesvara on mount Âbu, Śri Vasishtha, Deulavada near it, śri Mâtâmahavu, Âbuyâ, Narâsâ, Marachha, Sibara, Sâla, Hethaunji, Âkhi, and Kotadi of king Dhandhlesvara; by the royal princes or Rajaputras of the śri Parihara dynasty residing in Bhilisâdâ and other villages who were sitting in the Mandapa of śri Neminathji with Mahan śri Tejapala. All these, true as they are to their word, and their descendants should protect this place of religious worship as long as the sun and the moon endure. Of what avail are the Kamandalu made of skulls, the clothes made of the bark of trees, red and white clothes and the collection of braided hair in this world? They should observe as agreed to, this pure and great monthly sacred day. The descendants of the Parmar family should allow the enjoyment of the village of Havâni situated in Sri Chirahatti Sthâna, which is given by the order of Mahârâjakula sri Somasinhadeva, for the expenses of worship of Sri Neminathadeva of Sri Lunasipha Vahika. famous, splendid and pure Siddhagari (Setrunjo) is known as a sacred place of the Jainas; and the magnificent Raivatachala (Giranara) is a wonderful sacred

place giving emancipation (Mukti). This mount Âbu has become a sacred place also giving the (fruits) advantages of both those places. If it were not so, how would Sri Âdineminâtha will enter himself there?

(Some lines after this cannot be deciphered.)

XIII.

Stone-Inscription in the temple of Harasidhi at Verdval.

Dated Samvat 1320.

Though this inscription-stone is found built up in a wall of the temple of Harasiddhi mātā (goddess), it does not in any way relate to it. This temple is at Verâval, a small sca-port town on the south-west coast of Kāṭhiāvāḍ and is in the territory of the Nawāb of Junāgaḍ. The stone is built up in the wall to the right of the entrance-door and measures 31 in. by 17 in. There are forty-two lines closely cut into it in Devanāgari character, mentioning the building of a musjid (mosque) by Khojā Nur-ud-din Firoz, a great sea-faring man, who was an inhabitant of the island of Ormuz in the Persian gulf. He appears to have acquired a great deal of influence over the leading inhabitants of the town as they have agreed not only to set apart a piece of land for the purpose but also to make provision for its maintenance. It is also very useful in one respect, viz that it gives the years 1320, 945, 151, and 662 of four different eras:—the Vikrama, the Valabhi, the Simha and the Hijari respectively, when Arjunadeva of the Wāghelā branch was king of Gujarāt.

TRANSLITERATION.

- १ डैनमः श्रीविश्वनाथाय 🏿 नमस्ते विश्वनाथाय विश्वरूप नमोस्तु ते 🗓 नमस्ते सृ/भू)न्यरूपाय
- २ लक्षा(श्या)लक्ष(श्य) नमोस्त ते ॥१॥ श्रीविश्वनाथप्रतिबद्धती जनानां वोधकरसुलमहंमदस्वत्६६२त
- था श्रीनृपविक्रमसंवत्१३२०तथा श्रीमद्रलुभीसं९४५तथा श्रीसिंहसंवत्१५१वर्षे आधादचदि १३र
- ४ वावयेह श्रीमदणहिलुपाटकाधिष्ठितसमस्तराजावालिसमलंकृतएरमेश्वरपरमभट्टारक
- ५ श्रीउमापतिवरलब्धप्रौडप्रतापानै:शंकमऌअरिराय(ब)हृदयशल्यश्रीचीलुक्यचक्षवितम
- ६ हाराजाधिराजश्रीमत्अर्ज्जुनदेवप्रवर्द्धमानकस्याणविजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीविनि
- ७ महामात्यराणकश्रीमालदेवे श्रीश्रीकरणादिसमस्तमुद्राव्यापाराम् परिपंश्यतीत्येवं का
- ८ ले प्रवर्तमाने इह श्रीसोमनात्त(थ)देवपत्तने प्रमपाशुपताचार्यमहापांडेतमहत्तरधर्मभूति
- ९ गंदशीपरवीरमद्रपारि॰महं॰श्रीअभ(य)तिहप्रभृतिपंचकुलप्रतिपत्तौ तथाहुर्मुजवेला
- १० कुले अमीरश्रीहकनदीनराज्ये परिपंथयति सति कार्यवत(तया) श्रीसोमनाथदेवनगरस
- ११ मायातहुर्मुजदेशीयखोजानी०अभ्वाहिमसुतनाखूदनोरदीनिपरोजेन श्री
- १२ सोमनायदेवद्रोणीप्रतियद्धमद्यायणां(जनां)तःपातिप्रत्ययवृद्धत्पुचपठ०श्रीरामदेवबृहत्पुचपठ०श्रीपलुगिदेव

- १३ बृहत्पुरुषराणकश्रीसोमेश्वरदेवबृहत्पुरुषठ०श्रीरामदेवबृहत्पुरुषठ०श्रीमीम
- १४ सिंहबृहत्पुरुषराज ० श्रीछाडाप्रभृतिसमस्तमहण्लोक (मह्लुोक)प्रत्यक्षं तथा समस्तजमाः*
- १५ थ(त)प्रत्यश्चं च राज्ञ०श्चीनानासिंहसुतवृह्द०राज०श्रीछाङाप्रमृतीनां पार्श्वात् श्रीसोमनाथ
- १६ देवनगरवाह्ये सीकोत्तर्यो महायण(जन)पाल्यां संतिष्टमानभूषं(खं)डनवनिधानसहि
- १७ तयथेष्टकामकरणीयत्वेन स्पर्शनन्यायेन समुपात्तं ॥ ततःनाखु०पीरोजे
- १८ न स्वधरमेशास्त्राभिप्रायेणः परमधार्मिमकेण भूत्वा आचद्राकस्यायिनीकीत्तिम
- १९ सिद्धयर्थ आत्मनः श्रेयोर्थे उपयोपितमृलंडस्य स्थाने पूर्वामिमख(मुल) मिजिगिति
- २० धर्म्मस्थानं वृह्द०राजश्रीछाडासस्वायत्वेन धर्म्मबांधवेन कारितं ॥ नाखू०पीरोजेन
- २१ अस्य मिजिगितिधर्मास्थानस्य वर्त्तापनार्थे प्रतिदिनं पूजादीपतैलपानीयतथामा
- २२ लिममोदिनमासपाठक तथा नौविक्तकानां समाचारेण बरातिरातिखतमराति
- २३ विशेषमहोत्सवकारापनार्थे तथा अतिवर्षे छोह्। चनामग्नविशीर्णसमारच
- २४ नार्ये च श्रीसबघणेश्वरदेवीयस्थानपतिश्रीपरत्रिपुरातक तथा विनायकभद्दारक
- २५ पररतनेश्वरप्रभृतीनां पार्श्वात् अग्रेह श्रीसोमनायदेवनगरमध्ये श्रीघडलेश्वर
- २६ देवीयसम्बप्रहाडिकानानामुखतृगछाचकवेलुकाछादितग्रहेरुपेता तथा उत्त
- २७ राभिमुखद्विभौमसमेता परं अस्यामध्ये सूत्र०कान्हैआसक्तपूर्वाभिमुखग्रहै---
- २८ कवाह्यं चतुराघाटेषु अध्यम्राहिकारोपेता उत्तराभिमुखप्रतोलीपवेशानिर्गमोपे
- २९ ता यथायस्थितचतुराघाटनविशुद्धा यथाप्रसिद्धपरिभोगा तथा घणी १ सक्तदानपुरु
- ३० तथा अस्यामिजिगिति अग्रतः प्रत्ययनिर्माल्यछडासोढलसुतकल्हणदेव तथा ४०
- ३१ सोहणसुत कूणसींहधरणिसूपा तथा बल्बर्थकरणाधिष्टितराण व्यासवरमभृ
- ३२ तीनां पार्श्वात् स्पर्शनेनोपासहदृद्धयं एवमेतत् उदकेन प्रदत्तं ॥ अनेन आयपदेन आचद्रव्रह्सारकं यावत् नौपीरोजसक्तमिजिपितिधर्मस्थानमिदं नौध्यीरो
- ३३ जन्नेयोर्थ प्रीतपालनीयं वर्त्तापनीयं (वर्त्तनीयं) भग्नवीशीर्णं समारचनीयं च ॥ अनेन आय
- ३४ पदेन धर्मस्थानीमदं वर्त्तापयतां प्रतिपालयतां तथा विशेषमहोत्सवं पर्वव्यये
- ३५ कुर्वतां च यात्किचिद्द्रव्यमुद्रिरति तत्सर्वद्रव्यं मणामदीनाधम्मेस्थाने प्रस्थापं
- रै६ नीयं ॥ अस्यधर्मस्थानस्य आयण्दं सदैव जमाय(त)मध्ये नाखुयाने।रिकजमाथ(त)त
- ३७ या खतीवसहितसमस्तआहङसक्तभंचिकानां जमाय(त)तथाचुणकरजमाय(त)तथापा
- ३८ त्रप्रमृतीनां मध्ये मुसलमानजमाय(त)प्रभृतिभिः समस्तैरपि मिलित्वा आयपदिम
- ३९ दं पालनीयं धर्म्मस्थानमिदं वर्त्तापनियं (वर्त्तनियं) ॥ दाता च प्रेरकश्चैव ये धर्म्मप्रति
- ४० पालकाः ॥ ते सर्वे पुण्यकर्माणो नियतं स्वर्गगामिनः ॥ यष्कोऽ(यः को)पि धर्मस्थानीम
- ४१ दं तथा आयपदं च लोपपति लोपापयति(लुप्यति-लोपयति) स पपात्मा पंचमहापातकदोषेण लिप्यते नरकगामी भवति ॥

Bow to Sri Viśvanatha, Bow to you Sri Viśvanatha, whose form is the universe or who has all forms, who is Sunya (cipher) itself, and who is visible and

^{*} जमाय(त) is an Arabic word meaning "community"

[ो] डोह a prakrita word meaning Chunam,

L. 29.

invisible. To-day on Sunday the 13th of Ashadha Vadi of the year 662 of Rasulla Mahomed who preached to the people in Sri Visvanatha Nagari; 1320 of king Sri Vikrama Samvata; 945 of the splendid Valabhi Samvata, and 151 of Sri Simha Samvata, during the increasing, beneficent and victorious reign of Chakravarti Mahârâjâdhirâja Sri Arjunadeva of the Solanki race, who lived at the beautiful Anahilapurapâtana, who was the most powerful king being adorned with lines of all the kings, who was the greatest Bhattarka being an undoubted warrior and endowed with immense prowess by the favour of the lord of Sri Pârvati, and who was a shaft in the hearts of his enemies—during his reign when his chief minister Rânâ Śri Mâladeva, who was maintained by his lotus-like feet, was in charge of the signet and the seal, and when the great Paśupatâchârya, the greatest of the Panditas and the most religious Gauda Sri Seshta Virabhadra, and Parekha Mahan Sri Abhayasimha and other five families lived at Deva Pâtana Somanâtha, Nacoda Nuruddin Piroz son of Abu Ibrahim a Khojâ navigator who came there for business from Hurmza (Ormuz) which was (then) under the rule of Amira Sri Ruknnuddin, took formal possession with nine Nidhanas (?) by what is called the Sparshana Nyaya of a piece of land situated in Sicotri out-side the city of Somanatha and under the possession of Mahajana, to use it as suited his desire, in the presence of the great men Thakar Sri Palugideva, Rana Śri Someśvaradeva, Thakar Śri Ramadeva, Thakar Sri Bhimasinha, Rajaśri Chhada and others who had faith in the Devadroni at Somanatha, as also in the presence of the whole Jamdta (Mehomedan community). Then being a great religious man according to his faith, being devoted to his religion Piroz Nacoda for perpetuating his fame till the sun and the moon endure and for his (own) welfare, built a Masjida as a place for worship on the site with an eastern gate through his friend the great man Râja Sri Chhâdâ. For the maintenance of this Masjida, and for the expenses of daily worship, oil required for lamps, water, Mâlim, Modin (?), monthly reciters and preachers, and for special festivity to be celebrated as is usual with navigators on the Barâti (?) and Khâtama (?) nights and for the annual repair, the plastering and white-washing, he (Piroza) bought to-day in the City of Somanathadevanagar from the great Sri Tripurantaka master of the sacred place of Sri Savaghaneśvara, Vinâyaka and Ratneśvara and others, all the sheds with the out-houses thatched with straw and sand together with two-storied houses, facing the north, and belonging to Sri Dhavalesvara. In this is not to be included the house of Sutradhara Kanhada having an eastern entrance. Thus surrounded and having a northern entrance, with all its boundaries duly defined, and whose all rights of enjoyment it now possesses is this land given. He also obtained grant of one pali (about an ounce) of oil from each of the cilmills. He also took two shops for the maintenance of this Masjida by the said Sparshana Nyâya from Kalhanadeva, son of Chhâdâ Sodhala,

Lunasinha son of Thakar Sohana, Dharaniga Supa, Rana Asadhara who was entitled to perform sacrifices and others. All these were given by him as title. From this income this Masjida of the Navigator Piroz should be maintained and managed for the welfare of the same till the moon, constellations and stars endure, and any damage or breakage should be repaired, and those who manage the income of this place of religious worship, and those who maintain it, and those who spend at the great festivals and holy days should send any balance, that may remain, to the places of religious worship at Mecca and Medina. This income should be jointly managed by the communities (Jamatas) of the Nacodas, sailors, writers, oilpressers, Ahada, weavers, mussalman potters &c.; thus this place of religious worship should be maintained. Those who are donors and their instigators, and those who are the followers of their religion, always go to heaven being meritorious. He who (stops) cancels or causes to be cancelled this place of religious worship and the income, being a man of sinful mind, is stained with the five great sins and finds his way to hell.

XIV.

Stone-Inscription of Chintûmani Pârsvanûtha at Cambay.

Dated Samvat 1352.

The Jain temple of Chintâmani Pârsvanâtha where this inscription-stone is to be seen was built by a Modha Vâniâ named Khalla at Khambhât, commonly called Cambay, the chief town of a small Mahomedan principality in the Khedâ collectorate in Gujarât. The town is situated at the head of a gulf called after the town, The gulf of Cambay. The temple was built in the time of Râmadeo, son of Arjunadeo of the Wâghelâ tribe in the year Samvat 1352, A. D. 1296. The inscription is cut into a block of hard black stone and is in a good state of preservation except a small portion of the upper left-hand corner, where a small piece has been chopped off. The surface measures 32 in. by 19 in. and contains twenty-nine lines of Sanskrit in Devanâgari character.

₹	₹∦	
		🕶 🕙 दिनोदयं स चक्रे गुस्तगगनाभ्युदितः सहस्रकार्चिः ॥४॥ संवत् ११६५ वर्षे ज्येष्टवदि ७ सोमे
		सजय(ति)
¥	•	• • • • • • • • • • • • • • • • • • •
		दिन्ये गुर्ज्रसमंडलेऽतिविपुले वंशोऽतिदीप्तसुतिश्रीलुम्यो विदितः परैरकलितः श्रेतातपत्रोज्वलः ॥ श्रमा
لر	٠	· · · · · · · · · · · · · · · · · · पागतोनिजभुजो
		पार्ज्यो च राज्यश्चिय ॥ ६ ॥ श्रीमान् लृणिगुद्धेत एव विजयी श्रीपुप्रसादीदितस्तस्माद्वीररसैकवीरधवलः
		पुत्रः प्रजापालकः
Ł	٠	जयी येनाधी शमुदस्य कंदिमिय
		तं कींचें: पुना रोपितं ॥ ७ ॥ रिपुमह्द्रप्रमर्दी यः प्रतापमछ ईडिसः ॥ तस्सूनुरर्ज्जुनो राजा राज्येऽ-
		जन्यज्ज्ञ्नो परः ॥८॥ क
હ	٠	· · · · · · · · · · किविजयी परेषां ॥ तन्नंदनोऽनिंदितकीार्त्तरित
		च्येडोऽपि रामः किमु कामदेव: ॥९॥ उभौ धुरं घारयतः प्रजानां पितुः पदस्यास्य च धुर्यकल्पौ ॥
		कस्पद्रमौ
ć		• • • • • • • • • णौ भुवि रामकृष्णौ ॥१०॥ श्रीस्तंमतीर्थे तिलकं पुरा-
•		णां स्तमं जवश्रोमहितं महद्भिः ॥ आस्ते पुरं श्रौडिममोडवंशे सुमृषिते भूपविवर्णनीये ॥११॥ निदर्शनं
		साधुसुसत्यसंधी वं
٩		कीर्त्तरामः ॥ खलाख्यया यो बिदितो महर्द्धिर्वृद्धि गतो धर्म्भधनी विनी-
•		तः ॥१२॥ रूपळक्षणसीभाग्यधर्मदाननिदर्शनं जाताया प्रीडनारीषु सातोऽस्य बादडाः
		\$ \$4
१०		* • देशात्साध्वी सकार्षावजीनपार्श्वचैत्यं यन्मंडलं नागपतेः फणात्ररत्नं नु कि पुण्यममूर्त्तमस्याः
• -		॥१४॥ अविकलगुणलक्ष्मीवींकल: सुनुराज: समभवदिह पुण्यः शीलसत्यास
११		' ' ' लमुदयस्यं ह्येतयोर्चेन चके रविश्वि भुवनं यो मानितः सर्वेलोकैः १५ सवि
` .		तृचैत्यस्य पुरः सुमंडपं योऽकारयत््यसुधम्ममंडनं ॥ स्वसा च तस्याजनि रत्नसंधिका सुरत्नसूर्य्या धन
		हिस्पेहिनी .
• =	0 h	भोमडनास्हणकाकलव्यवललोमङगुणिमाद्याः तयोर्वसूनुस्तनया निजनंद्योद्धरणधौरेयाः १७ पितृव्यक-
``	١, ٩,	भुतैः सार्द्धे बशोवीरो यशोधनः । पालयस्ति पुण्यातमा होवं धर्मा जिनस्यच
4.5	१८	आस्वडपुत्री : 'मुमदनपालाभिधौ धन्यो दृत्तानंदितलेको मीर श्रा रामलक्ष्मणसदक्षी(शौ)। १९ जाया
		जाल्हणदेवीति स्वजनकैरवकीमुदी तस्य पुत्री तथा प्रसूती शब्दाधीविव भारतीदेव्या २० थे(से)तसः
		क्षितिपति
१४	र्मुणि	गण्यो योच्छलस्कलियुगं सुविवेकात् सिंह्याववदभीविजयादिसिंहविश्रुत इलेंदुरवं कि २१ दिवं गते
		भातरि तस्य सूनौ लालाभिधे धर्मभुराणमुख्ये श्रेयोऽर्थमस्यैन जिनेद्रचैत्ये येनह जी
१५	र्णोड	द्ररणं कृतं तु २२ जयताद्विजविसिद्दः केल्किकुमैकविदारणैककृतयत्नः निजकुरुमंडनभानुर्गृणिदीमोद्धरणक-
		रपतरः २३ सद्गृचविमलकीर्त्तिस्तस्यार्भुद्धिणवराभूः पुण्यपटोदैयक्ष्मामृत्यटपः "
१६	षदी	ाधिती २४ अनूपमा नाम सुकृततोष्ट्रि क्षियादिदेवीत्युभये तु जाये पुरोगवंधोरभवच तस्य कांता वरा सूहवी
		धर्मशीला २५ देवासिंहः सुतोऽप्यस्य मध्यन्महिमास्पदं दीपवद् बौतितं येन कुलं चार्थीयमाः

- १७ २६ गुरुपट्टे बुधैर्वण्यों यद्यःकीर्तिर्यशोनिधिः तद्वोजादर्दतः पूजां यः करोलि।त्रिकास्त्रजां २७ दुंकारवंद्यजमहर्ष-मणीयमानः श्रीसांगणः प्रगुणपुण्यकृतावतारः तारेशसिक्तमयशोजिनशा
 - १८ समाहों निःशेषकरमधिनाशनभव्यवर्णः २८ सिंहपुरवंशजन्मा अयताख्यो विजितएतसः पक्षः ॥ शुमधम्मै-मार्गचारी जिनभूमौ ननु च करपतसः २९ प्रवहादनो महाभव्यो जिनपूजापरायणः॥ पात्रदानामृतेनैव क्षालितं वसुधात
 - १९ छं ३ःअपरं च अत्राऽगमन्मालवदेशतोऽमी सपादलक्षादय चित्रकृटात् आभानुन्नेनैव समंहि साधुर्यः सामदेवो विदितोऽय जैनः ३१ घांधुर्वृषः साधुर्वेह्हः प्रवृद्धो धन्यों धरिन्यां धरणीषरोऽपि श्रीसंघम
 - २० मुनिमानसाधुर्दाहरूत्वया राहड इष्टदशी ३२ साधूर्यजपतिर्मान्यो भूपवेश्मसु सर्वदा राजकार्यविधी दक्षी जिनश्रीरकंषधारकः ३३ नरवेषण धम्मोयं धामानामा स्वयं मृति सुतोत्तमो विनीतोऽस्य जिनाचिताम-णिप्रभः
 - २१ ३४ नाम्ना नभोपतिरिद्दाधिपमानर्नायः साधुः सुभक्तः सुद्धदः प्रसिद्धः नोड्कितः साधुमदात्कदापियोदानशौ-डः शुभसौं (शौं) डनामा ३५ घेद्दडोऽपि सुधर्मस्यः साधुः सोमश्च सौम्यधीः दानमंडनसौभाग्यः
 - २२ कः सतां मतः ३६ अजयदेव इह प्रकटो जने तदनुस्तेतहरिः कुशको अयी अनुजपूनहरिर्हरिविक्रमः सुज-ननामहहापि परिश्रुतः ३७ सक्तुक्षणो बापणनामधेयो देदो विदां श्रेयतरश्च साधुः सना
 - २२ पुरेंद्रो जिनपूजनोद्यतो रत्नोपि रत्नत्रयभावनारतः ३८ छाजुः सुधीः पंडितमानमर्द्नः साधुः सदा दानरतश्च जैनः एते जिनाम्यर्जनपात्रभक्ताः श्रीपार्श्वनाथस्य विकोक्यपूजां ३९ संभूय सर्वैविधिवत्सु
 - २४ भन्यपूर्णाविधानाय विवेकदक्षैः श्रीषम्मृंदृद्धः प्रभवाय शश्चत्क्षीत्तिस्थितिः सुस्थितकं महाद्विः ४० । वस्र संदत्तथाकुष्टमुक्तमासीसटकणाचमैरगाचसद्रव्यमलत्यादृष्यमं प्रति ४१ एको द्रम्मस्तथा
 - २५ मालतीलपुवस्तुतः गुडकंबलतेलायतंगडादिवृषं प्रति ४२ श्रीपार्श्वनाथचैत्येऽस्मिन् द्रमार्द्धः स्थितके कृतं भव्यलोकस्य कामानां चिंतामणिफलप्रदे ४३ संवतः १३५२ वर्षे श्रीविक्रमसमतीतवर्षेषु
 - २६ त्रिशता समं द्विपंचाशद्विनेरेवं कालेऽस्मिन् रोपितं धुवं ४४ यावत्तिष्ठति सर्वश्नाः शाश्वतप्रतिमामयाः तात-त्रंचादिमे भव्याः स्थितकं वात्र मंगलं ४५ श्रीमान् सारंगदेवः पुरवरमहितः स्तंबतीर्थं सुतीर्थे नं
 - २७ दाचैत्यं जिनानामनवगुरुकुळं आवकादानघन्याः नानातेजाधनाद्याः सुकृतपथपुषो मोषनामाहराव्हदेवो राजादिदेवो जिनभवनविधौ मुख्यतां ये गतास्ते ॥ ४६ भाषाद्योभावभूपस्व
 - २८ जनपरिवृतो भोजदेवोपि दाता जैने धम्में ऽनुरक्ताः श्रुतिगुणसिंदताः साल्दरत्नौ वदान्यौ अन्येकेऽपि संतः स्थितकिमह सदा पालयंत्यत्र वृद्धि पुष्णतस्तेषु पार्श्वौ विद्यत् विपुलां " " " "
 - २९ तीं तामहाश्री: ४७ छ ६४ प्रशस्तिरियं लिखिता ठ०सोमेनउस्कीर्णा सूत्र०पाल्हा तेन 😎 🗞

- 1. * * * produced from * * *
 the god that destroys obstacles.
- 2. Let go from a pile of stones, by the destroyer of rogues * * * of the fire of Vajra * * * wealth to you.
- 3. I bow to Pârsvanâtha Jina, the eternal Elivate (who is) praised by the God of Love, and who conquered hordes of enemies, simply by indifference.

- 4. He risen in the sky-like gurû, with thousand fold fame, did * day.
- 5. On Monday the 7th of Jeshtha Vadi (dark-half) of the year Samvat 1165

 * * he shines * * * in the world.
- 6. In the beautiful and extensive (Gujarât) Gurjara Mandala there is the Chaülukya dynasty of brilliant glory, inscrutable by ethers, and white with white (umbrella) Chhatras; the earth * * * * was * * * * by royal fortune acquired with the strength of his own arms.
- 7. Splendid Lunigadeva, risen by the grace of Siva, was a brave conqueror. His son was Viradhavala, who was incomparable in heroism and who was a protector of (his) subjects. * * * * the conqueror * * who removing the king like a stalk of fame reinstalled him (?).
- 8. Then came Pratapamalla, the destroyer of his brave enemies; his son was Arjuna, who, in the kingdom, was like second Arjuna (one of the Pandava brothers).
- 9. * * * * the conqueror of his foes * * * his son was Râma of spotless fame, who though the cldest looked as if he were Kâmadeva.
- 10. Both of them were able to bear the yoke of the subjects. These who were the chief occupants of (their) father's throne and who were like Kalpa tree * * * * (they) were (like) Râma and Krishna on (this) earth.
- 11-12. There is a famous city called Sri Stambhatirtha (Cambay) which is foremost of all cities being as it were the pillar of all, praised by the great on account of its splendour. There lived one known by the name of Khelâ, who was an example to other good men, who was true to his word * * * * * * who was like Râma in his glory, whose great fortune, was his religious merit, who was prosperous, who had acquired great wealth, and was polite. He was of the Modha family, which was considered high, splendid, and fit to be praised even by kings.
- 13. His wife was Bâdadâ, an example among her sex of beauty, good conduct, duty to her husband, and charity.
- 14. As desired * * * * the virtuous lady caused to be built a temple to Parsvanatha Jina, which looked like the crest-jewel on the Sesa's hood or like her religious merit not incarnate (?).
- 15. She had a holy son named Vikala, the lustre of whose virtue was spotless and entire, * * * * . He honoured by all the people made his parents' house brilliant as does the all-honoured sun the world.

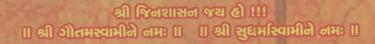
- 16. He caused to be built a *Mandapa* in front of the temple of Sûrya (the sun), an ornament of reverence and religion. His sister was Ratana, wife of Dhanasimha, resembling the wife of the sun with her many jewels.
- 17. These two had Bhimada, Jalhana, Kakala, Vayajala, Khimada, Gunima and other sons, who greatly exhalted their family.
- 18. Yashodhana, the great hero, of a holy mind, followed with his cousins the Shaiva and Jina religions.
- 19-20. Aśvada had two sons * * * * * Madanapâla, who pleased people by their good conduct, and who in mutual affection were like Râma and Lakshmaṇa, from his wife Jahlaṇadevi the moonlight to her lotus-like men, who gave birth to the two like Sarasvati to words and meanings.
- 21. Khetala Raja, the first of the virtuous, outwitted *Kali-yuga* by his good conduct. He known as Vijayasimha, being as dauntless as a lion's cub looked as if he were the moon on earth.
- 22. After the death of his younger brother named Lâlâ, who was a staunch follower of religion he repaired the temple of Jinendra for his welfare.
- 23. May Vijayasinha be victorious who single-handed tried to tear (to pieces) the elephant-like *Kaliyuga*, who was a sun in enlightening his family and who was like the *Kaliya Vriksha* (tree) in helping the virtuous and helpless.
- 24. Fame, spotless by good conduct, was as it were born from or a necessary result of his virtues, hely * * *
- 25. He, whose brother was dead before him, had for his wives Anûpamâ—the incomparable even for her good conduct—and Sriyâdevi, and for his third wife the very pious and holy Sûhavi.
- 26. His son Devasinha attained as much greatness as the Meru; and enlightened his family like a lamp * * * *
- 27. He worships the Arhata thrice a day, being taught (to do so) by Yasahkirti, the treasure of fame, praised by the learned, and acknowledged by him as his religious guide.
- 28. In the Hunkara family there was (one) named Sangana, who was a jewel of matchless value, who was born by his great spiritual merits, whose glory was like that of the moon, who was worthy to follow the Jain religion and who was brilliant on account of all his sins being totaly destroyed.
- 29. There was (one) Jayata, born in the family of Sinhapura, who had subdued the course of sin, who conducted himself virtuously, and who was as it were a Kalpa tree on the land of Jain religion.

- 30. Pralhâdana, who was a very great man, and who was devoted to the worship of Jina, washed the face of the earth with Amrita (ambrosia) of religious gifts to the worthy.
- 31. Moreover, here came from Mâlavadeśa, from Chitra-Kuta with one and a quarter lac (?), this ascetic with the younger brother Âbhâ, who became known as Sâmbhadeva the Jaina.
- 32. There were also the Sadhus Dhandhu the wise, Kalhu the enlightened, Dharanidhara the happy on earth, the * * * * of the community Muni Man, as also Halla and Rahada the seers of the desired.
- 33. (Also) Sådhu Gåjapati, who was always obeyed in kings' palaces, who was versed in politics and who bore the splendour of a Jina.
- 34-35. He by name Dhâmo, was Dharma (virtue) incarnate on this earth. He had a son, the polite lord Jina Chintamani, by name Nabhopati who was worthy of being honoured by kings, was well behaved, religious, friendly and well-known; nor was he ever proud of being all this, was ever devoted to make charitable gifts and was named Shaunda.
- 36. Also Dhehada who was ever on the path of religion, was wise and shining, was intelligent, brilliant with the ornament of charity * * * * and honoured by the good.
- 37-38. And known to the people was Ajayadeva; after him came happy and virtuous Khetahari; his younger brother Pûnahari was as brave as a lion Sujana possessed good name; Bâpana possessed good qualities; Deda was the best of the learned Sâdhus; Purendra was busy in worshipping Jina; and Ratnâ had a liking for the three jewels * * * * * * * * *
- 39-40. Chhaju, who humbled the pride of the learned, was an intelligent Sadhu, a follower of the Jain religion and had always a great liking for making gifts. All these were worthy devotees in worshipping Jina. Seeing the worship of Parsvanatha, all great and polite persons assembled together and made some arrangements for worshipping (the god) with due ceremonies, for spreading the religion, and for establishing (his) fame for ever.
- 41-42-43. This Sri Parsvanatha, who gives like the Chintamani, fulfilling all the desires of good people, will have for this temple one dramma levied on a bullock-load of webs of cloth, kushta, murumansi, tankana, Ohemera, * * and other good articles; and half a dramma on a bullock-load of less valuable articles, treacle, blankets, oils, tayara, &c.
- 44. This was permanently settled in the year 1352 after the time of Sri Vikramarka.

- 45. May the great men and the arrangement made by them be observed and may they be happy as long as all the Jinas remain in the form of idols.
- 46. Stambhatîrtha, a good place of pilgrimage Srimân Sârangadeva, the temple of Jinadeva, the sinless family of the Gûrû, Srâvaka Nâno, Tejo, Dhano, &c., who were ever ready in making gifts, and Mosha, Haradeva, and Râjâdeva who encouvaged (virtuous observances) the doctrine of (their) religion, and those who are chiefly concerned in taking care of the Jain temple, may all these attain prosperity.
- 47. May Pârsvanâtha of great beauty greatly bestow prosperity on Bhâvabhûpati, who has with his family much faith, the great-giver Bhojadeva, all those who are the followers of the Jain religion and who are praised for their merits * * *, the magnanimous Sâlha and Ratna, and all other good men who will preserve and make additions to this arrangement.

This inscription (of eulogy) was composed by Tha: Soma and engraved by Sutra: Palhâ.





જિનશાસનના અણગાર, કલિકાલના શણગાર પૂજ્ય ભગવંતો અને જ્ઞાની પંડિતોએ શ્રુતભક્તિથી પ્રેરાઈને વિવિદ્ય હસ્તલિખિત ગૂંથો પરથી સંશોદ્યન-સંપાદન કરીને અપૂર્વ જહેમતથી ઘણા ગૂંથોનું વર્ષો પૂર્વે સર્જન કરેલ છે અને પોતાની શક્તિ, સમય અને દ્રવ્યનો સદ્વ્યય કરીને પુણ્યાનુબંધી પુણ્ય ઉપાર્જન કરેલ છે. કાળના પ્રભાવે જીઈ અને લુપ્ત થઈ રહેલા અને અલભ્ય બની જતા મુદ્રિત ગૂંથો પૈકી પૂજ્ય ગુરુદેવોની પ્રેરણા અને આશીવદિથી સં.૨૦૬૫માં પજ ગૂંથોનો સેટ નં-૧ તથા સં.૨૦૬૬માં ૩૬ ગૂંથોનો સેટ નં-૧ તથા સં.૨૦૬૬માં ૩૬ ગૂંથોનો સેટ નં-૧ તથા સં.૨૦૬૬માં ૩૬ કરાવી હતી. જેથી આપણો શ્રુતવારસો બીજા અનેક વર્ષો સુધી ટકી રહે અને અભ્યાસુ મહાત્માઓને ઉપયોગી ગૂંથો સરળતાથી ઉપલબ્ધ થાય.

પૂજ્ય સાધુ-સાધ્વીજી ભગવંતોની પ્રેરણાથી જ્ઞાનખાતાની ઉપજમાંથી તૈયાર કરવામાં આવેલ પુસ્તકોનો સેટ ભિન્ન-ભિન્ન શહેરોમાં આવેલ વિશિષ્ટ ઉત્તમ જ્ઞાનભંડારોને ભેટ મોકલવામાં આવ્યા હતા. આ બધાજ પુસ્તકો પૂજ્ય ગુરુભગવંતોને વિશિષ્ટ અભ્યાસ-સંશોધન માટે ખુબજ જરુરી છે અને પ્રાય: અપ્રાપ્ય છે. અભ્યાસ-સંશોધનાર્થે જરૂરી પુસ્તકો સહેલાઇથી ઉપલબ્ધ બને તેમજ પ્રાચીન મુદ્રિત પુસ્તકોનો શ્રુત વારસો જળવાઈ રહે તે શુભ આશયથી આ ગૂંથોનો જીર્ણોદ્ધાર કરેલ છે. જુદા જુદા વિષયોના વિશિષ્ટ કક્ષાના પુસ્તકોનો જીર્ણોદ્ધાર પૂજ્ય ગુરૂભગવંતોની પ્રેરણા અને આશીવદિથી અમો કરી રહ્યા છીએ. તો અભ્યાસ તથા સંશોધન માટે વધુમાં વધુ ઉપયોગ કરીને શ્રુતભક્તિના કાર્યને પ્રોત્સાહન આપશો.

લी.शाह जाजुबादा सरेमदा लेडावाजानी वंहना

મંદિરો જાર્ણ થતાં આજકાલના સોમપુરા દ્વારા પણ ઊભા કરી શકાશે.....! પણ એકાદ ગ્રંથ નષ્ટ થતા બીજા કલિકાલસર્વજ્ઞ કે મહોપાધ્યાય શ્રી યશોવિજયજી ક્યાંથી લાવીશું...???